डाक-पंजीयन म.प्र./भोपाल/4-472/2024-26
पोस्टिंग दिनांक : प्रतिमाह दिनांक 2 से 3, पृष्ठ सं. 132
प्रकाशन दिनांक : 1 से 1 प्रतिमाह

आर.एन.आई क्र. : 38470/83
आई.एस.एस.एन. क्र. : 2456-7167

अक्षरा

अक्षरा

236

साहित्य की मासिकी

मूल्य 50/-

43 वाँ वर्ष

नवंबर 2024

साधो सबद साधना कीजै
अजित वडनेरकर

स्तंभ
राजेन्द्र परदेसी, रामेश्वर मिश्र पंकज, कुसुमलता केडिया

अनुवाद
विभा खरे

आलेख
उमरावसिंह चौधरी, कृष्णगोपाल मिश्र, अशोक कुमार, वीरेन्द्र 'निर्झर', प्रभात कुमार मिश्र, अवधेश तिवारी, अरुणाभ सौरभ

शोधालेख
योगेश्वर कुमार साहू, भगवन्त सिंह, लेखा. पी., हरिशंकर झाराय, सुनीता तिवारी, लक्ष्मी, सदानंद, रतिराम गढ़ेवाल, रमणी चंद्राकर, शुभम चौहान, किरण कुमारी

रिपोर्ताज
अखिलेश श्रीवास्तव 'दादूभाई'

व्यंग्य
प्रियदर्शी खैरा

ललित निबंध
श्रीराम परिहार

उपन्यास अंश
प्रमोद भार्गव

साक्षात्कार
दयानंद पांडे, जया केतकी

कहानी
स्वाति तिवारी, आत्माराम यादव पीव, रामेश्वर वाढेकर 'संघर्षशील'

कविता
यतीन्द्रनाथ राही, वी.एन. सिंह, सुशांत सुप्रिय, नम्रता सरन 'सोना'

तुलसी का नन्हा-सा पौधा
पत्तों से है हरा भरा,
ऊपर उठी हुई मंजरियाँ
मानो सिर पर मुकुट धरा।
दादी इसमें पानी देती
कहती हैं जल दिया गया,
नमस्कार करती संध्या को
रखती जलता एक दिया।
ऑक्सीज़न का झरना है यह...

– सरोजिनी कुलश्रेष्ठ

अक्षरा अंक-236 मूल्य 50/- रुपये

वरिष्ठ छायाकार
जगदीश कौशल

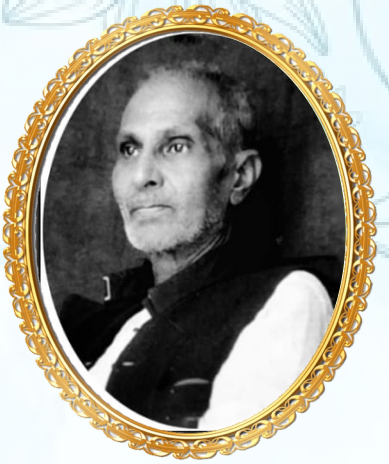

रामानुजलाल श्रीवास्तव 'ऊँट'

जन्म - 1898

प्रयाण - 26 अप्रैल 1976

ऊँट बिल्हरवी के नाम से सुविख्यात श्री रामानुजलाल श्रीवास्तव जी का जन्म जबलपुर के समीप स्थित बिलहरी गाँव में भाद्रपद शुक्ल पक्ष तृतीया (हरतालिका) संवत् 1955 सन् 1898 को हुआ था। मैट्रिक तक शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् उन्होंने क्लर्क, स्टेनो, प्राइवेट सेक्रेटरी जैसे सामान्य पदों पर नौकरी की। अंततः वे इंडियन प्रेस प्रयाग की जबलपुर शाखा के व्यवस्थापक नियुक्त हुए। लंबे समय तक वह इस पद पर कार्यरत रहे। जबलपुर रहते हुए ही उनकी साहित्य साधना प्रारंभ हुई।

उनकी पहली रचना कविता के रूप में वर्ष 1915 में 'गृहलक्ष्मी' नामक मासिक पत्रिका प्रयाग में प्रकाशित हुई थी। बचपन में उनके स्कूल के साथी उन्हें 'लंबू', 'सारस' और ऊँट कहा करते थे क्योंकि उनका कद साढ़े छः फुट था। वह अपनी मित्र मण्डली में सबसे लंबे थे इसलिए उन्होंने अपना साहित्यक नाम रामानुजलाल श्रीवास्तव 'ऊँट' रख लिया। उनके परम प्रिय मित्र और साहित्यकार श्री नर्मदा प्रसाद खरे ने श्रीवास्तव जी के रूपरंग का इस प्रकार वर्णन किया है–'छः फुट ढाई इंच ऊँचाई, गौरवर्ण, इकहरा बदन, सदा से दुबले-पतले, कभी साहिबी लिबास सूट-बूट-टाई, कभी चूड़ीदार पैजामा और हैदराबादी शेरवानी, कभी मात्र धोती कुर्ता, कभी लखनबी चिकन की दुपल्ली टोपी तथा मलमल का कुर्ता, बनारसी सिल्क से लेकर मोटे से मोटा खद्दर के परिधान धारण करने वाले। हास्य कवि होने के नाते उन्होंने स्वयं अपने बारे में लिखा है–

यू तो लागिर हूँ, लचर हूँ, लस्त हूँ, देखकर पर अपना फोटू मस्त हूँ
दोस्तों के कुछ हँसाने के लिए इक तरह का बंदोबस्त हूँ।

अनवरत् साहित्य साधना ही उनका धर्म था। शारीरिक, मानसिक एवं आर्थिक बाधाएँ भी उनकी साहित्य आराधना को रोक नहीं सकीं। उनके प्रकाशित संग्रह इस प्रकार हैं–'उनींदी रातें' काव्य संग्रह 'जज्बाते ऊँट' व्यंग्य कविताएँ 'हम इश्क के बंदे हैं' कहानी संग्रह, 'गालिब की ग़ज़लें, 'टीका' महाकवि अनिस व्याख्या एवं जीवन 'जंगल की सच्ची कहानियाँ' बालोपयोगी संग्रह प्रमुख हैं।

उन्होंने सन् 1931 में 'प्रेमा' नामक पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ किया था। बाद में भी पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी की प्रेरणा से 'प्रेमा पुस्तक माला' का प्रकाशन भी प्रारंभ किया था। 'प्रेमा' के अतिरिक्त रामानुजलाल श्रीवास्तव साप्ताहिक 'सारथी' एवं 'प्रहरी' से भी जुड़े रहे जिनका संपादन एवं संचालन पंडित द्वारिका प्रसाद मिश्र जी करते थे। उनके साहित्यक योगदान का सम्मान करते हुए भारत सरकार के डाकतार विभाग द्वारा जहाँ एक ओर डाकटिकट जारी किया गया, वहीं उनकी पुस्तकों को मध्यप्रदेश और उत्तर प्रदेश की सरकारों ने सम्मानित किया है। हास्य व्यंग्य के क्षेत्र में उनके नाम पर अनेक संस्थाओं द्वारा पुरस्कारों की स्थापना की गई है। यहाँ प्रकाशित श्री रामानुजलाल श्रीवास्तव ऊँट जी का यह फोटो मैंने 3 अक्टूबर 1962 को उनके जबलपुर स्थित आवास पर क्लिक किया था।

अक्षरा

236

यू.जी.सी. द्वारा मान्यता प्राप्त
43 वाँ वर्ष

मनोज श्रीवास्तव
प्रधान सम्पादक

संजय सक्सेना
प्रबंध सम्पादक

जया केतकी
सम्पादन

सुधा बाथम
अक्षर-संयोजन

वार्षिक सदस्यता शुल्क : 500 रुपए
दस वर्षीय सदस्यता शुल्क : 5000 रुपए
एक प्रति 50 रुपये
विदेशों के लिए : एक अंक : 10 डॉलर, वार्षिक : 120 डॉलर
चेक या ड्राफ्ट 'म.प्र. राष्ट्रभाषा प्रचार समिति- 'अक्षरा' के नाम देय
ऑनलाइन पेमेंट के लिये- इंडियन बैंक, हिन्दी भवन शाखा, भोपाल
Ac/ No. 50413818696, IFSC- IDIB000T610

सम्पर्क : म.प्र. राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, हिन्दी भवन, श्यामला हिल्स, भोपाल - 462002 (म.प्र.)
दूरभाष : 0755- 2660909, (लेखाविभाग-2661087)
ई-मेल - **myakshara18@gmail.com**
hindibhawan.2009@rediffmail.com
वेबसाइट - **www.एमपीराष्ट्रभाषा.com**

यरुशलम एक पवित्र नगर है। तीन-तीन पंथों के लिए वह पुण्य-भूमि है। कोई इस इर-हा-को देश (पवित्र शहर) कहता है, कोई इसे बैत अल मकदिस (पवित्रता का घर)। पर सबसे अधिक उसे ही झेलना है जो सबसे पावन है। जिनके लिए है, उन्होंने ही इस शहर पर 52 बार आक्रमण होते देखे हैं। कई बार उस युद्ध का एक पक्ष वे रहे हैं। कभी स्वयं आक्रमणकारी कभी स्वयं आक्रान्ता। ज्यूडाइज्म, ईसाइयत और इस्लाम तीनों की स्पर्धाएँ इस भूमि के लिए रहीं हैं। यह हमारे समय की त्रासदी है कि पवित्रता के लिए लड़ने में भी पवित्र को ही घायल होना है। लड़ाई इस बात की है कि पवित्र होना तो है, पर हमारी तरह से होना है। यह काशी, मथुरा, अयोध्या से भिन्न है जिनमें आक्रमणकारी की कोई श्रद्धा नहीं थी, जो उसकी दृष्टि से दूषित बस्तियाँ थीं। यहाँ यरुशलम में तो स्थिति यह है कि तीनों ही उसे पवित्र मानते हैं और फिर भी तीनों लगे पड़े हैं, उसे रक्तरंजित करने में। यहीं यीशु का सलीब पर रक्त बहाया गया था। उनके उपदेशों से सबक नहीं लिया पर रक्त की उस धारा को निरंतर रखा। इस नगर में सिर्फ़ इन तीन का इतिहास ही नहीं गड़ा है। एक सभ्यता उसके भी पहले थी। वह जिसे ईसाई अनुयायियों ने पैगन नाम दिया पर वह सभ्यता बहुत कुछ हिन्दू थी। पैगनों के लिए जो हीथन शब्द प्रयुक्त होता था, वही हिन्दुओं के लिए 19वीं शती में भी इन पश्चिमी लोगों द्वारा हो रहा था। इसका 'शलम' नाम एक पैगन ईश्वर 'शालेम' पर ही पड़ा है। इसे कन्नानित धर्म से लिया शब्द माना जाता है। उस भाषा में मृत्यु को 'मोत' कहा जाता है। इस धर्म में भी पितर-पूजा है। यहूदी और हिंदू दोनों धर्मांतरण में विश्वास नहीं करते। स्टीवन रोसेन ने एक दिलचस्प बात कही थी कि हिन्दुओं में पुरोहितों (प्रीस्ट) का एक समाज है, यहूदियों में पुरोहितों का एक राज्य है।' लेकिन इसके बावजूद दोनों की धर्मान्तरण में कोई रुचि नहीं रही। जिस तरह से यहूदियों का सोचा-समझा दरिद्रीकरण किया गया, वैसे ही ब्राह्मणों का भी एक सुचिंतित दरिद्रीकरण स्वतंत्र भारत में हुआ। पर यहूदियों ने अपनी कड़ी मेहनत से अपनी प्रतिष्ठा को पुनरुपलब्ध किया। आज फ़ोर्ब्स 400 में से 139 यहूदी हैं। अमेरिका के सौ सबसे धनी लोगों में से तीस यहूदी हैं। इज़राइल की प्रति व्यक्ति GDP दुनिया में तेरहवें नम्बर पर है। प्राकृतिक संसाधनों के बल पर अय्याशी करना और मज़हब के नाम पर दुनिया भर में आतंक का एक तंत्र खड़ा कर देना उन्होंने नहीं सीखा।

हिटलर के पहले ही 1918 का जर्मनी का एक परिपत्र है जिसमें यहूदियों को न केवल खदेड़ने की रणनीति बताई गई थी बल्कि उन्हें ज़्यादा से ज़्यादा ग़रीब बनाकर दूसरे देशों में भेजा जाने को कहा गया था कि वे देश भी उन्हें अपने लिए बोझ समझें और उनके खिलाफ़ रिएक्ट करें।

यह जो pogrom शब्द है यह यहूदियों के विरुद्ध नरसंहारों का नाम था। एक एक वर्ष में उनके आठ-आठ सौ pogroms हुए। ये नरसंहार ब्राह्मणों ने भी खूब झेले हैं लेकिन यहूदियों ने इनमें से एक-एक का दस्तावेज़ीकरण किया और याद रखा। मृत सागर के किनारे की जीवन्तता थी यह। हमने तो देश में हुए आतंकी हमलों का भी सम्पूर्ण विश्वकोश तक नहीं बनाया। हमारे विश्वविद्यालय जाने किन-किन विषयों पर शोध कराते हैं। ये न सूझा कभी। एक 9/11 की वे बरसी मनाते हैं और उस दिन दूर-दूर से चलकर वहाँ कैंडल जलाने पहुँचते हैं।

यह भी मुझे रोचक लगा कि जैसे ध्वनि-साम्य के आधार पर औपनिवेशिक यूरोपीय इतिहासकारों ने आर्यों के बारे में बहुत से कुलाबे मिलाये, वैसे ही जब मैं गोलियाथ और डेविड की कहानी पढ़ रहा था तो उसमें Phillistine Warrior के रूप में गोलियाथ का परिचय दिये जाने पर मेरी आँख अटक गई। डेविड इज़रायली है और जीसस की तरह गड़रिया है। तो यूरोपीय इतिहासकारों से उन्हीं की शैली में यह कहा जाये कि फ़िलिस्तीनी-इज़राइली संघर्ष पैगंबर हज़रत मोहम्मद से भी पुराना है और वह मज़हबी झगड़ा नहीं है बल्कि उसकी जड़ें उससे गहरी हैं। तो उनकी दवा उन्हें पिलाये जाने पर उन्हें कैसा लगे? यह दवा यों भी पिलाई जा सकती है कि यह कथा कोई बहुत ज़्यादा पुरानी नहीं है बल्कि बाइबिल में 1400 वर्ष पहले जोड़ा गया क्षेपक है। डेविड की तरह आज भी इज़राइल बहुत छोटा है। गोलियाथ की तरह आज भी फ़िलिस्तीन अपने समर्थक-वर्ग के हिसाब से बहुत बड़ा तो उसी औपनिवेशिक

तर्क-पद्धति के हिसाब से यह कथा उस दौर से पहले की नहीं हो सकती जब सांख्यिकीय समर्थन की दृष्टि से फिलिस्तीन इज़राइल से उतने गुना बड़ा न हो गया हो जितना गोलियाथ डेविड से बड़ा था। कि यह कथा फ़िलिस्तीन-इज़राइली संघर्ष का मानवीकरण मात्र है। या और भी बदतर। कि इस कथा का होना प्रमाणित करता है कि बाइबिल उस समय से पहले नहीं लिखी गई जब फ़िलिस्तीनियों की ताक़त इसराइलियों की तुलना में उतनी ज़्यादा नहीं हो गई जितना डेविड की तुलना में गोलियाथ की थी। वे कह सकते हैं कि यह सब क़यास है। मैं भी कहता हूँ कि है। क़यास ही नहीं बकवास है। पर तब भारत के इतिहास के बारे में उनके ऐसे ही रुख पर वे क्या कहना चाहेंगे?

इज़राइलियों के परिनिर्वासन (Exodus) से काश्मीरी पंडितों के निर्वासन की तुलना नहीं की जा सकती। तब ईश्वर ने इज़राइल को बचाया था और इजिप्शियनों को डुबाया था। यहाँ काश्मीरी पंडितों के थोक हत्यारों का क्या बिगड़ा? उन बलात्कारियों का क्या बिगड़ा? इज़राइलियों को तो ईश्वर सिनाई पर्वत ले गया था। इन पंडितों को सब प्रकार से ले देकर शरणार्थी कैंप ही नसीब हुआ। ये पर्वतीय अंचल से उतरे।
सिनाई पर्वत ईश्वर के साथ मनुष्यों की अनुबंधना है। काश्मीरी पंडितों का कोई अनुबंध (covenant) ईश्वर छोड़ो, उनके ही देश की सरकारों द्वारा नहीं हुआ।

परिनिर्वासन की ऐतिहासिकता का पता नहीं चलता। पता नहीं किस फराहो के संरक्षण में मूसा बड़े हुए, किस फराहो ने उन्हें मार डालना चाहा, और परिनिर्वासन के समय कौन फराहो था। वह कब हुआ? कौन सा रास्ता था उसका? सिनाई पर्वत कहाँ है? किसी का कुछ पता नहीं। पर अरबों लोग परिनिर्वासन के होने पर विश्वास करते हैं। कथा को तथ्य मानने वाली आस्तिकता। उधर काश्मीरी पंडितों के बारे में सब कुछ ऐतिहासिकता की स्थिति में है। ठीक-ठीक तिथि हैं। फिर भी उस व्यक्ति पर दोषारोपण करके वहाँ के निर्लज्ज राजनीतिज्ञ मुस्कुराते हैं जिसने तब तक वहाँ प्रभार भी नहीं लिया था। और पूछो कि ये कैसे हुआ क्यों हुआ तो कुछ नहीं पता? कुछ तो इन पर ऐसे अविश्वास करते हैं कि जैसे यह हुआ ही नहीं। आज अपनी सुविधा के सोफों पर बैठे लोग उन काश्मीरी पंडितों पर बात करते हैं जिन्हें उनके ही देश में तीन सौ लोगों के ऊपर एक बाथरूम मिला, शिविरों में। और जिनके निष्कासन को आंतरिक परिसंचरण (internal migration) कहने वाली हृदयहीनता मिली। तथ्य को कथा मानने वाली ख़ुदापरस्ती।

इज़राइलियों के पीछे इजिप्शियनों की सेना पड़ी थी। काश्मीरी पंडितों को तो काश्मीर में सेना का संरक्षण भी नहीं मिल पाया था। तब पंडितों के लिए किसी ने नहीं कहा कि "I will take you as my own people and I will be your God." इज़राइलियों को वादा था कि उन्हें पंडितों के राज्य में ले चलूँगा। ये काश्मीरी तो स्वयं पंडित थे। इन्हें इनके राज्य से ही बाहर खदेड़ दिया गया। या कि फ़िक्शन से अलग ही थीं यहूदियों की भी हक़ीक़तें। पंडितों की ही तरह। उन्हें क्रूरतम हिंसाएँ झेलने मिलीं और उनका वह स्वप्न-राज्य उन्हें अमानुषिक हालात की ओर ले गया। वैसी ही परिस्थितियों का प्रहार पंडितों पर हुआ। नालों के किनारे बनाये गये शरणार्थी शिविरों में तो चुनिंदा काश्मीरियों को ही जगह मिली। बाक़ी को तो देश के दूसरे-दूसरे हिस्सों में भेज दिया गया। वे अदृश्य हो गये, वे जिस हद तक दृश्य से ग़ायब हुए, उस हद तक वे असमर्थ भी बना दिये गये। या शायद ऐसे ही भारत के कोने कोने में फैलकर उन्होंने काश्मीर की अलख पूरे देश में जला दी? क्या अब भी इज़राइलियों की तरह उन्हें उनकी वादा-भूमि (promised land) मिलेगी।

हमारे भारत में हम उन्हें मुख्य अतिथि बनाते हैं जिन्हें काश्मीरी पंडितों से कोई हमदर्दी नहीं। नाउन लैपिड को न जानते हुए फ़िल्म फ़ेस्टिवल में मात्र इज़रायली समझकर बुलाने वाले किस ख़ुशफ़हमी में थे? सरदार ख़ुश होगा। क्या आमंत्रण देने वालों ने उनकी फ़िल्में देखी भी थीं? या कि वह एक प्रसिद्ध फ़िल्म फ़ेस्टिवल-पंछी है, तो जान-पहचान में बुला लिया?

वह ख़ुद और उसकी फिल्में भी उसके अपने देश इज़राइली राज्य के विरुद्ध बोलती रही हैं। ख़ुद अपने देश के नागरिकों की आत्मा के अधोपतन को, उस आत्मा के व्याधिग्रस्त होने को वे चित्रित करती रही हैं। यह 'वल्गर' शब्द, यह 'obscene' शब्द आदतन शब्द हैं जो वह और उसके पात्र इज़राइल के खिलाफ

प्रयुक्त करते ही आए हैं। 'अहद तामिमी के घुटने' पर वह एक पूरी फ़िल्म बना लेता है जिसमें इज़राइली राज्य और सेना के विरुद्ध पूरा माहौल खड़ा कर दिया गया है। इज़राइल का सांस्कृतिक पतन और उसकी सेना का ट्रॉमा, सब दिखा है इसमें। एक सत्रह साल की लड़की एक इज़राइली सैनिक को थप्पड़ रसीद कर देती है। संसद का एक डिप्टी स्पीकर बयान देता है कि उस लड़की के घुटने में गोली मार देनी थी। बस इतना काफ़ी था कि लैपिड इस फ़िल्म के साथ अपने ही देश को आक्युपेशन देश के रूप में दिखाने लगे।

और यही मनोवृत्ति काश्मीर में भारत को भी एकदम उन्हीं शब्दों में ऑक्युपेशन फ़ोर्स की तरह देखती है। और उनके इस नैरेटिव को चैलेंज करने वाली कोई भी फिल्म उन्हें प्रोपेगंडा फिल्म ही लगेगी। वल्गर और आब्सीन-उनके प्रिय शब्द।

इसलिए यह नहीं कि उनके श्रीमुख से ये शब्द किसी की इस फ़िल्म में ग़लत ब्रीफ़िंग के चलते निकले। आतंकवाद को समर्थन ऐसी ही उथली उद्भावना से मिलता आया है। लेपिड की भाषा मुझे अक्सर अरुंधती रॉय की अतिशयोक्तिपरक भाषा की याद दिलाती रही है।

उसकी फ़िल्म synonyms भी हालाँकि काफ़ी दिमागी है लेकिन है उसमें भी अपनी राष्ट्रीयता से छूटने की छटपटाहट। उसका नायक भी अपनी मातृभाषा हीब्रू न बोलने की शपथ लेता है। अपनी अस्मिता की क़ैद से बाहर निकलने की कोशिश। वह इस फिल्म की एक पात्र Émile को बताता है कि उसने इज़राइल इसलिए छोड़ दिया क्योंकि वह "nasty, obscene, ignorant, idiotic, sordid, fetid, crude, abominable, odious, lamentable, repugnant, detestable, mean-spirited, mean-hearted." है। यही पर्यायवाची सीखे हैं उसने शब्दकोश से। यही यह निर्देशक जहाँ-तहाँ प्रयुक्त कर देता है सो भारत में आकर भी कर दिये।

हाँ इतनी बुद्धि ज़रूर है कि आतंकवाद को इनमें से एक भी पर्याय से पूरी तरह बख्शो। इस फ़िल्म के मानदंड से देखो तो लगभग सभी बॉलीवुड फिल्में प्रोपेगंडा फ़िल्में ही लगेंगी। लेकिन शिकायत भी तभी तो है कि तब काश्मीर फ़ाइल्स को ही विशेषत: निशाने पर लेने के मायने क्या हैं?

मैं जब कॉलेज में पढ़ता था तो मनोविज्ञान में फ्रेंच मनोवैज्ञानिक बिने का बुद्धि-परीक्षण पढ़ाया जाता था। उसके अनुसार संसार की तीन सबसे ज़्यादा आई क्यू वाली जातियाँ (यहाँ castes के अर्थ में नहीं कहा जा रहा)-यहूदी, भारत के ब्राह्मण और एक अन्य जाति थी जिसका उल्लेख मैं विनम्रतावश नहीं कर रहा हूँ। और ये दोनों ही जातियाँ संसार की सबसे ज़्यादा प्रताड़ित जातियाँ रहीं। किसी पट्टी की स्पर्धा से कहीं ज़्यादा यह बुद्धि से जलन का मामला है। कि वे सब कुछ सह सकते हैं, बस प्रतिभा को नहीं सह सकते। तो उन यहूदियों को कैसे सहें जिन्होंने दुनिया के बीस प्रतिशत नोबेल पुरस्कार हासिल किये हों। जिन्होंने 31प्रतिशत ट्यूरिंग अवार्ड, जिसे कंप्यूटिंग का नोबेल पुरस्कार कहा जाता है, पर क़ब्ज़ा जमाया हो, जिन्होंने 27 प्रतिशत फ़ील्ड्स मैडल प्राप्त किए हुए हों। इन स्पर्धाओं में उनके शत्रु दूर-दूर तक शामिल नहीं होते। वैसे उन शत्रुओं के हमदर्दों की तर्क पद्धति के मान से बहुत नाइंसाफ़ी है यह। इन पुरस्कारों पर भी 'जिसकी जितनी संख्या भारी उसकी उतनी हिस्सेदारी' का सिद्धांत लागू होना चाहिए। पर क्या करें कि ये पुरस्कार विजेता लोग कहते हैं कि स्तनपायियों में यह तर्क तो bandicoots का है जो हर 12.5 दिन में प्रजनन करते हैं। और यह भी क्या कि हमारे समय के निर्माता तीन सबसे प्रभावी लोग-आइंस्टाइन, फ्रॉयड और मार्क्स-यहूदी वंश के हैं। हम उनसे असहमत हो सकते हैं पर उन्हें बौद्धिक चुनौती देना और बात है और उन पर पिशाचों की तरह टूट पड़ना और बात। बात यह है कि कुछ लोगों के यहाँ सब कुछ माफ़ है। पर प्रतिभा! वह नहीं। वह तो अक्षम्य है।

कार्ल मार्क्स यहूदी माता-पिता की संतान था, पर उसकी वैचारिक संतानों की हमदर्दी यहूदियों के क़ातिलों के साथ है।

विडंबना की बात यह है कि जिन्हें आज यहूदियों का दर्द दिखाई नहीं देता, वे हिटलर के समय के यहूदियों के दर्द का उदाहरण दे रहे हैं। पर तब अरब संसार द्वारा यहूदियों के हिटलर द्वारा किये दमन के समर्थन को वो याद नहीं करते। वो कौन थे

जो गलियों में पोस्टर लगाये थे–Allah's in Heaven and Hitler's on earth. जो यहूदियों से एक रूढ़िगत रूप से घृणा अभी तक भी करते हैं, वे हिटलर के समय के यहूदियों से हमदर्दी अब जाकर जता रहे हैं। तब तो अमीन अल हुसैन जैसे यरुशलम के ग्रांड मुफ़्ती हिटलर की इस काम के लिए तारीफ करते न थकते थे। फासीवादियों से तो अरबी प्रेम और गहरा था। और वे वामपंथी कम न थे। उस समय तो स्टालिन और हिटलर के बीच शुरू में बड़ा याराना रहा। आज अमेरिका में यहूदी–विरोधी माहौल तैयार करने वाले भारत में उनके हवाले दे रहे हैं। नागरिकता पर एक विधिवत पारित सेकुलर अधिनियम के प्रावधान के क्रियान्वयन को हिटलर की नाज़ी पार्टी द्वारा यहूदियों की गई ब्रांडिग से तुलना करने वाले समझते हैं कि उनकी बौद्धिक उलटकूद किसी को दिखाई न देगी। पर उसे उलटकूद कहना भी उन्हें इज़्ज़त देना है। वह तर्क की वैश्यावृत्ति है। शैतान भी कभी बाइबिल पढ़ता है?

इस विवाद के परिप्रेक्ष्य में हिन्दी साहित्यकारों को देखना और दिलचस्प है। नामवर सिंह जी का एक व्याख्यान 'संस्कृति का सवाल फासीवाद और भूमंडलीकरण' शीर्षक से था। नामवर सिंह संचयिता में उनका यह व्याख्यान लेख की तरह शामिल किया गया है। मैं उसमें निहित राजनीति की बात नहीं कहूँगा क्योंकि मैं उस पर बात करने का फिलवक्त अधिकारी भी नहीं हूँ और टॉमस मान की तरह मैं यह नहीं मानता कि आज के युग में मानव नियति अपने को राजनीतिक शब्दावली में प्रकट करती है। उनकी इस संस्कृति–चर्चा के व्याख्यान से बस मुझे यह लगा कि इतने बड़े और बूढ़े व्यक्ति भी संस्कृति में निहित मानवता का भी सम्मान नहीं कर पाते थे। अपने इस व्याख्यान में वे दूसरी ही साँस में कहते हैं कि–'वह इज़राइल केवल फिलिस्तीन के ही नहीं बल्कि पूरे एशिया के दिल में छुरे की तरह बना हुआ है।' किसी एक देश के बारे में ऐसा बोलना किस तरह का मूल्यबोध था, किस तरह की मानवता थी? हम पाकिस्तान जैसे दुष्ट राज्य के बारे में भी यह नहीं कहते। लेकिन नामवर सिंह जी उसके मामले में जरूर अपनी विकट मानवता का परिचय देते हुए यह कहते हैं कि 'वसुधा तो दूर रही, संस्कृति के नाम पर पड़ोसी का धर्म भी नहीं निभ पा रहा है।' लेकिन वसुधैव कुटुम्बकम् के सांस्कृतिक आदर्श में यदि हमारा पड़ोसी पाकिस्तान आता है तो मैं पूछना चाहता हूँ कि इज़राइल तब क्यों खटकता है हमारे नामवरों को? क्यों वह उन्हें आँख की किरकिरी लगता है, छुरे की तरह बना हुआ? क्यों हम यहूदियों के जीवन–संघर्ष की अवमानना करते हैं? जिस देश ने अपने इसी 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के आदर्श के तहत एकमात्र अपनी भूमि पर निरापद और अद्वितीय शरण उन्हें दी, वह देश उन्हीं लोगों की मातृभूमि को छुरे की तरह क्यों मानने लगेगा? मैं नहीं कहता कि इज़राइल के तौर–तरीकों से असहमति का अवकाश नहीं है। अवकाश है, आकाश भी है। लेकिन किसी देश की उपस्थिति मात्र को छुरे की तरह कहना मुझे असभ्य और असांस्कृतिक लगता है।

इसलिए संस्कृति के नाम पर इस विभ्रम की बारीकियों को समझने की जरूरत है। इज़राइल की यह बात उनके व्याख्यान में यह व्यंग्य–संदर्भ में आई थी। वे यह कह रहे थे कि 'आज के समय में संस्कृति 'NRI' के द्वारा नष्ट की जा रही है।' कि 'जब कोई आदमी अपने घर से बेघर होता है तो 'घर' के साथ ऐसा ही सलूक करता है।' इस महान सिद्धान्त के प्रतिपादन के बाद उन्होंने इज़राइल का उदाहरण दिया था। घर से बेघर होने वालों के प्रति ऐसा बेदिल और अकरुण वक्तव्य मैंने कभी नहीं सुना। किस मुख से ये 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की दुहाई देते हैं जब अपने ही प्रवासी भारतीयों पर इतना द्वेष बरतते हैं? जब राम घर से बेघर हुए थे तो क्या? उन्होंने संस्कृति को नष्ट किया था? जब कृष्ण घर से बेघर हुए तो क्या उन्होंने संस्कृति को नष्ट किया था? जब बुद्ध घर से बेघर हुए थे तो क्या उन्होंने संस्कृति को नष्ट किया था? क्या महावीर स्वामी जब घर से बेघर हुए थे तो उन्होंने संस्कृति को नष्ट किया था या जब मीरा घर से बेघर हुईं तो उन्होंने संस्कृति को नष्ट किया था? ठीक है कि ये सब घर से बेघर हुए तो अपनी आजीविका के लिए नहीं हुए, NRI हुए हैं। लेकिन तब उतनी सावधानी भी इस तरह के अंधे सामान्यीकरण में नहीं है कि 'जब कोई आदमी अपने घर से बेघर होता है तो 'घर' के साथ ऐसा ही सलूक करता है'। यह भी तर्क की जुर्रत ही है कि प्रवासी भारतीयों को एक ही कंबल में लपेटकर पीट दिया जाए। लगता है काबुलीवाला इनके दिल को कभी छू नहीं गया। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के सिद्धान्त की यह परिणति कि नामवर जी के लिए वे देश से बाहर होते ही

कुटुम्ब से भी बाहर हो गए और संस्कृति में मानवता और मूल्यबोध की बात करते हैं।

असल विश्वबोध तो उन लोगों में था जो यजुर्वेद में कहते थे 'सा प्रथमा संस्कृति विश्ववारा' तो भारत ने अपनी संस्कृति का आरोपण नहीं वरण किया। जिन लोगों ने हमें इतिहास पढ़ाया, शायद वे भी इस फर्क को जानते थे। इसलिए उन्होंने 'वरण' को यहाँ से गायब ही कर दिया और कोलंबस आदि पर भी बस इसी पर रुक गये कि उसने अमेरिका की खोज की। उसके बाद क्या किया? उसके द्वारा क्या अत्याचार स्थानीय निवासियों पर ढाए गए, इस पर पाठ्यक्रमों का एक दीर्घ और विशाल मौन, इसीलिए मैं कहता हूँ कि हमारे बोलने से ही हमारा मूल्यबोध नहीं झलकता, हमारी चुप्पी, भी हमारी मूल्य-प्रणाली को उजागर करती है।

संवेदना कवि का सबसे पहला गुण है। पर संवेदना का चक्र एक गतिमय चक्र है। वह 360 डिग्री घूमना चाहिए। सरहद के इस पार का शिशु और सरहद के उस पार का शिशु दोनों में से आपत्तिजनक कौन है? आपत्तिजनक है सरहद। वे शिशु नहीं। उनमें क्या चुनाव करना? पर हिन्दी कविता में फिलिस्तीन के प्रति जितना प्रेम दिखता है, उतना इज़राइल या यहूदियों के प्रति नहीं दिखता। यह स्थिति भारतीय जनमानस से ठीक उल्टी है। यहूदियों को किसी समय उखड़कर भारत में भी आना पड़ा है और ये निर्वासित यहूदी विश्व के अन्य देशों में प्रताड़ना झेले किन्तु भारत में नहीं। इसलिए उनकी आनुवंशिकी में भारत के प्रति कृतज्ञता का भाव है। भारत के ही जोधपुर लांसर्स और मैसूर लांसर्स ने हाइफ़ा का युद्ध जीता था। मेरठ डिवीज़न और हैदराबाद लांसर्स ने इतनी बड़ी पराजय जर्मनों को दी थी। मेज़र दलपत सिंह ने अपनी जान देकर इस लड़ाई को जीता था। उससे भारत के प्रति इज़राइली स्नेह और भी बढ़ गया। 1962 का चीन से हमारा युद्ध हो या 1971 में पाकिस्तान से, इज़राइल बिना किसी शोर-शराबे के भारत का समर्थन करता रहा। कश्मीर के मुद्दे पर भी वह भारत के साथ रहा।

प्रेम का प्रतिदान प्रेम में होना चाहिए। पर हमने स्वतंत्र हो जाने के बाद क्या इस प्रेम को इकतरफा नहीं बनाया? यह ठुकराये प्रेम का मामला कैसे हो गया? शायद इज़राइल जे एम बैरी की तरह यह मानता रहा हो कि जो प्यार लौटाया नहीं गया, वह भी एक इंद्रधनुष रखता है।

1948 में जब इज़राइल अस्तित्व में आया तो भारत एकमात्र गैर-अरब देश था जिसने इज़राइल निर्माण के विपक्ष में संयुक्त राष्ट्र में वोट किया था। 1974 में भारत पहला गैर-अरब देश था जिसने फिलिस्तीन स्वतंत्रता संगठन (PLO) को फिलिस्तीनियों का एक मात्र वैध प्रतिनिधि माना था। क्या किसी संगठन को कभी किसी देश की जनता के प्रतिनिधित्व का ऐसा एकाधिकार दिया जा सकता है? आज जो लोग हमास और फिलिस्तीन में फ़र्क़ की बारीकियाँ निकाल रहे हैं, कभी इन्हीं ने उस वक्त क्यो न सोचा कि संगठन तो संगठन है, वह अपनी प्रकृति में ही परिमित है, वह एक अंश है-वह पूर्ण कैसे माना जा सकता है। अंश और अंशी की दार्शनिकताएँ तो हमें बहुत सिखाई गई। इस PLO का चार्टर आम फिलिस्तीनी को अधिकार दिलाने की बात ही नहीं कहता था, वह 'इज़राइल राज्य को खत्म करने की बात' भी कहता था। और हमारा हिन्दी कवि लिखता है -

'एटलस पूरा सच नहीं देता है। कुछ कौमों का जीवन / भिंची हुई मुट्ठी हमेशा-सा होता है। कोई नाम साँसों में रचा-बसा होता है। कोई नाम होठो पर / आयतों-सा होता है। इसे कहीं चेचेन्या / कहीं ईराक कहीं अफगानिस्तान कहते हैं। किन्तु इसका मतलब / हर भाषा में/फिलिस्तीन ही होता है?'

अब आप इस कविता की चालाकी देख सकते हैं। इससे लगता है कि सब जगह सिर्फ एक मज़हब के लोग विक्टिम हैं और सिर्फ फिलिस्तीन ही उसका पर्याय है, प्रतीकार्थ है, रूपक है। क्यों भाई? 190 करोड़ लोग जिसके घोषित रूप से साथ हों और 1.5 करोड़ के उस राज्य को नष्ट कर देने के कौल को लेकर साथ आए हों तो विक्टिम किसे कहा जाना चाहिए? एक मुल्क अभी अभी जन्म लेता है और उसके जनमने के 24 घंटे के भीतर छः अरब देश उस पर आक्रमण कर देते हैं। विक्टिम कौन हुआ? और शिशु होने पर भी कोई कार्तिकेय, कोई गणेश, कोई कृष्ण अपने शत्रुओं को हरा देता है तो विजय हासिल करना विक्टिम होना नहीं है?

इन कवि महोदय से कोई पूछे कि जनाब इसका मतलब हर भाषा में काश्मीरी हिन्दू होना क्यों नहीं होता? होता यह है कि

वह एक छोटा-सा देश जब यह जान लेता है कि वह इतने शत्रु देशों से न केवल घिरा है, बल्कि 61 देशों का एक संगठन पूरे साजो-सामान और धन उसके विरोधियों को मुहैया कराता है, दुनिया की दो महाशक्तियाँ भी उसके शत्रुओं को सशस्त्र कर रही हैं और भारत जैसा पारंपरिक मित्र भी अपने आपके पूरे इतिहास और धरोहर को भूलकर उसके विरोधी को शब्दश: गले लगा रहा है तो वह एक कड़वा सच सीखता है कि उसे अपनी रक्षा स्वयं करनी होगी।

उसे उसकी आत्मरक्षा का अधिकार नहीं है-यह कहने से पहले आप अपनी दंड संहिता से धारा 96 से 106 हटा दीजिए और यह स्व-सहायता समूह भी खत्म कीजिए। वो विवेकानन्द जो बार-बार दुर्बलता को सबसे बड़ा पाप कहते थे, वो गीता जो क्लैब्य को पाप कहती थी, उन्हें भी चलता कीजिए। तब इज़राइल का विक्टिमहुड इस बात से खत्म हो जाएगा कि वह पुरुषार्थी है।

होता यह है कि वह एक छोटा-सा देश जब सैन्य संघर्ष में इतने सारे देशों को हरा देता है तो हारे हुओं के मन में एक दुष्ट विचार जन्म लेता है कि सीधे भिड़ने की जगह आतंकवाद के जरिए इसका खून हजारों जगह से बहाओ। ऐसा ही भारत के साथ भी किया गया। याद करें हजारों घाव लगाने की नीति। याद करें भारत का खून निकालने की उनकी साजिश।

आतंक की ताकतों की एक विशेषता निर्दोषों की हत्याएँ हैं। वे उस न्यूटोनियम भौतिकी के खिलाफ विद्रोह करती हैं जो कार्य-कारण के सिद्धांत पर आधारित है। वह एक तरह की झक है जो 'कारण' के अनुशासन को भंग करने के विरुद्ध जिद बाँधे हुए है। उसे स्वैराचार में एक तरह का सशक्तिकरण महसूस होता है। एक घटना (कारण) और दूसरी घटना (कार्य) के बीच आवश्यक व प्रत्यक्ष पारिणामिक रिश्ता न होने पर भी उसे कर गुजरने में आतंकी को लगता है कि वह खुदा हो गया क्योंकि इतनी यदृच्छता तो बस उसी भगवान के लिए संभव है।

उसे यह भी भरम हो जाता है कि वह खुद ही जैसे एक डिवाइन मिशन पर है। रावण खुद को खुदा ही समझने लगा था। इसलिए वह निरपराधियों को मारता रहता है। वाल्मीकि की रामायण की शुरुआत में ही कहा गया कि 'दुष्टजन इस संसार में बहुत से जीवों को बिना किसी अपराध के ही पीड़ा देते हैं।' आतंकी राक्षस यही कर रहे हैं। बाणभट्ट ने कादंबरी में यही तो कहा था--अकारणाविष्कृत-वैरदारुणादसज्जनात् कस्य भयं न जायते' अकारण शत्रुता करने वाले उन भयंकर दुष्टों से कौन नहीं भयभीत होगा? दरअसल कारण के साथ की गई हत्या भी अपराध है, क्रूर है, निंदनीय है लेकिन वह अस्तित्व और सभ्यता के आस्थामूलों को उतने विकट तरीके से नहीं हिलाती, जितनी अकारण की गई हत्याएँ। हमने अपनी सभ्यता को तर्क और कारण की नीवों पर आधारित किया है। आतंकवाद जिस क्षण एक अबोध बच्चे को मारता है, उसे मारता है, जिसे कम से कम उससे निजी तौर पर कोई गिला नहीं था तो वह चीज एक साभ्यतिक (सिविलाइजेशनल) सिहरन पैदा करती है।

तो निर्दोषों को मारने की रणनीति बनाने वाले आज इस बात से अपने शत्रुओं को लज्जित करते हैं कि उनके प्रत्याक्रमण में निर्दोष मारे जा रहे हैं। और वे मारे भी इसलिए जा रहे हैं कि आतंकवाद की रणनीति न केवल निर्दोषों को मारने की है बल्कि उनके बीच छुपने की भी है।

तो हमसे पहले से वह छोटा-सा देश इसी आतंकवाद से जूझ रहा था। आतंकवाद उन्हें मारता है जो सिविलियन्स है, नॉन-कॉम्बेटेन्ट्स हैं, उन्हें मारते हैं और उनके आतंकी समूह उसकी जिम्मेदारी भी लेते हैं, ऐसे कि जैसे बड़ी वीरता का काम किया है। आतंकियों ने इसके पहले भी 139 इज़राइली बच्चों को अपने हमलों में खत्म किया था, जवाबी सैन्य कार्रवाई में इज़राइल ने 2171 फिलिस्तीनी बच्चों को मार गिराया। दोनों पक्षों के जो भी कारण रहे, कीमत तो उन मासूमों ने अदा की। तो आपत्ति मासूम जानों के नुकसान की होनी चाहिए या उसमें भी हिन्दी कवि को सेलेक्टिव होना माँगता? जान तो जान है। फ़िलिस्तीनी मासूमों की जान पर दुखी हिन्दी कवि की देखिए यह कविता -

'आप इस बच्चे की मासूमियत
और औरतों के स्यापे पर हरगिज़ मत जाइए
क़ौम के लिए फिक्रमन्द निज़ामों की नज़र में

यह बच्चा चैनो-अमन के लिए
एक बड़ा ख़तरा साबित हो सकता था
ख़तरा भी खासा बड़ा कि मारना पड़ा
उसे मिसाइल के इस्तेमाल से
और आँख भर दुनिया देखने के पहले
बन्द कर दी गईं उसकी आँखें हमेशा के लिए।

यह जश्न मनाने की ज़मीन है
ऐसे वाक़ये यहाँ रोज़मर्रा के नज़ारे हैं
यहाँ बारूद की शाश्वत गन्ध के बीच
बम और कारतूसों की दिवाली
और सुर्ख़-ताज़ा इनसानी लहू के साथ
होली सा खेल खेलने की रवायत है जैसे

यह एक ऐसा मुल्क है जो चन्द सिरफिरे लोगों के
तसव्वुर और फितूर में है फ़क़त
लेकिन क़ौम के लिए फिक्रमंद निज़ामों के
ज़ेहन और दुनिया के नक्शे पर
तक़रीबन न होने के बराबर है
यह फिलीस्तीन है।'

अब इन कवि महोदय को लगता है कि इस फ़िलिस्तीन का होना दुनिया के शासनों की चिन्ता में नहीं है। यह शर्त बाँधी जा सकती है कि इन कवि महोदय ने The United Nations Relief and Works Agency for Palestine Refugees in the Near East (UNRWA) का नाम भी न सुना होगा। यह 1949 से फिलिस्तीनियों को अंतर्राष्ट्रीय मदद उपलब्ध करा रहा है। 1994 से 2020 तक OECD के आँकड़े ही चालीस बिलियन डॉलर के हैं। दुनिया भर के देश मदद देते हैं। भारत भी मदद करता है।

पर यदि इस सहायता को आतंकवादी हथियारों के लिए दुर्विनियोजित किया जायेगा तब क्या होगा? फिलिस्तीन यदि हमास से अलग है तो उसकी भूमि पर आतंकी लश्कर पलने कौन दे रहा है? इतने टैंक हमास के पास आये कहाँ से? हुआ यह है कि कई संप्रभुताएँ अपने अपने आतंकी समूह को युद्ध की आउटसोर्सिंग कर चुकी हैं। कहीं हिज़बुल्ला हैं कहीं तालिबान हैं कहीं अलक़ायदा हैं कहीं ISIS हैं। इससे आसानी होती है। अंतर्राष्ट्रीय समुदाय के सामने कह लो कि भाई ये तो नॉन-स्टेट एक्टर्स हैं। हजारों की संख्या में टैंक-नॉन स्टेट एक्टर्स के पास! क्या बचा रह गया-अणुबम!

फ़िलिस्तीन पाकिस्तान से सुविधाजनक स्थिति में है। पाकिस्तान को तो अब बार-बार सिद्ध करना पड़ रहा है कि उसने आतंकी संगठनों या व्यक्तियों के विरुद्ध यह या वह कार्रवाई की है पर फिलिस्तीनी राष्ट्रपति से कोई नहीं पूछ रहा कि उन्होंने हमास के विरुद्ध क्या कार्रवाई की। कई बार हम इज़राइल के मुक़ाबले भारतीय कूटनीति की अवगणना करते हैं पर यों देखें तो हमने अपने पत्ते उनसे बेहतर फेंटे हैं। देखिए कि जैसे कश्मीर में जितनी आतंकी घटनाएँ होती थीं, उतनी उनकी केंद्रीय सहायता बढ़ा दी जाती थी। सो एक समय प्रति व्यक्ति मान से भारत के शेष राज्यों की तुलना में जम्मू कश्मीर नौ गुनी केंद्रीय सहायता पा रहा था।

क्या ऐसी वैश्विक नीति आतंकवाद के प्रोत्साहन की नीति नहीं है जिसमें आतंक जितना ज़्यादा गुर्राये उतना ज़्यादा पाये।

हमारा मानवतावाद तुष्टीकरण का पर्याय नहीं बनाया जा सकता। पर जब तक इसे ऐसे ही एक तराजू में बरता जा रहा है तब तक आप एक और हिन्दी कवयित्री की कविता पढ़िये-

'वहाँ जलते हुए धीरज की ताप से गर्म पत्थर
हवा में उड़ते हैं,
पतंगें थकी हुई गौरय्यों की तरह
टूटे घरों के मलबों पर इन्तज़ार करती हैं,
वीरान खेतों में नए क़ब्रिस्तान आबाद होते हैं,
और समन्दर अपने किनारों पर
बच्चों को फुटबॉल खेलने आने से रोकता है।
वहाँ, हर सपने में खून का एक सैलाब आता है
झुलसे और टूटे पंखों, रक्त सनी लावारिस जूतियों,
धरती पर कटे पड़े जैतून के नौजवान पेड़ों के बीच
अमन के सारे गीत
एक वज़नी पत्थर के नीचे दबे सो रहे होते हैं।
फ़िलिस्तीन की धरती जितनी सिकुड़ती जाती है
प्रतिरोध उतना ही सघन होता जाता है।'

इन महोदया से कोई पूछे कि इसमें वह हिस्सा क्यों ग़ायब है कि फ़िलिस्तीन की धरती तब तब सिकुड़ी जब जब उसके और उसके समर्थक अरब मुल्कों की ओर से हमला हुआ। इनसे कोई पूछे कि दो राष्ट्रों के सह-अस्तित्व के सिद्धांत में ऐसी कौन सी मज़हबी अड़चन है कि उसे पाँच बार ठुकराया गया है। प्रतिरोध की सघनता का मूल कारण क्या है?

हिन्दी कविता की भावुकता तथ्यपरक होने से इंकार करे तो करे, तर्कपरक होने से भी इंकार करती है। इसी बौद्धिक दोगलेपन का परिणाम है कि वामपंथियों ने चीन के द्वारा हथियाई ज़मीन को वापस लौटाने का आग्रह उतना न किया जितना इज़राइल से गजा पट्टी लौटाने का। इसे दूरदर्शिता कहते हैं। या दूरदर्शन? होलोकॉस्ट हुआ ही नहीं। कश्मीरी पंडितों का नरसंहार हुआ ही नहीं। इन दोनों चीजों में एक अंतर है। दुनिया के 17 देशों में होलोकॉस्ट हुआ ही नहीं, कहने के विरुद्ध कानूनन प्रतिबंध और सजाएँ हैं। ऑस्ट्रिया, बेल्जियम, फ्रांस, जर्मनी, नीदरलैंड्स, इज़राइल, हंगरी, चेक रिपब्लिक, पौलेंड, पुर्तगाल, रूस, स्लोवाकिया, रोमानिया, लीख्तेंस्तीन, लिथुआनिया, स्विट्ज़रलैंड, लक्जेम्बर्ग सबमें। आस्ट्रिया में एक से लेकर दस साल की सजा है। फ्रांस व जर्मनी में अधिकतम पाँच साल। ध्यान दें कि सजाएँ निषेध पर ही नहीं हैं, उन्हें कम दिखाने पर भी हैं। किसी समय रोमानिया का आधिकारिक मत यही था कि यह उसकी भूमि पर नहीं हुआ। पर उन्होंने वीजल आयोग बिठाया और अंततः माना।

भारत में काश्मीरी पंडितों का नरसंहार हुआ ही नहीं, कहना सांप्रदायिक सौहार्द बनाये रखने की बुद्धिजीविता है और 'हुआ है' कहने वाला आवश्यक तौर पर बहुमतवादी है, आवश्यक तौर पर एक राजनीतिक धारा से सम्बद्ध है। वहाँ राबर्ट फौरीसन, डेविड अर्विंग और गारुड़ी जैसे बुद्धिजीवियों तक को सजा हो गई कि उन्होंने इस त्रासदी को छोटा किया, हमारे यहाँ उसे लांछित करेंगे जिसने इसे दिखाने का साहस दिखाया। और जब स्वयं सरकारें उसे उपेक्षित करें तो उनको कौन हवाल। और यदि क़ानून बनाने की सोचो तो अभिव्यक्ति की आज़ादी के पैरोकार।

होलोकॉस्ट नहीं हुआ कहने वाले यह कहते थे कि यहूदियों को निर्वासन भर किया गया था, मारा नहीं गया था। हमारे यहाँ नरसंहार से इंकार तो है ही, निर्वासन से भी है। क्योंकि निर्वासन तो विदेशियों का होता है, हालाँकि किन्हीं मोहतरमा के लिए काश्मीरी पंडित स्थानीय में नहीं आते थे। वे विदेशी थे। सो वह भी नहीं कह कर पलायन कह दिया जाता है। परिनिर्वासन मूसा के समय भी जब यह हुआ था तब भी इजिप्शियन आक्रामक हथियार लिये पीछा ही कर रहे थे। मूसा के चमत्कार से समुद्र फट गया था। हमारे यहाँ समुद्र छोड़ो, लोगों के हृदय नहीं फटे- अब फिल्म प्रदर्शित हो जाने के बाद भी। कुछ नहीं तो निर्देशक के ही पीछे पड़े हैं। जैसे होलोकॉस्ट के लिए ऐसे लोगों ने कहा कि मारे जाने वालों की वास्तविक संख्या बहुत कम थी, वैसे ही भारत के बुद्धिजीवी कह रहे हैं कि संख्या कम थी। ऐसे सरकारी आँकड़ों पर कभी भरोसा न करने वाले इस आँकड़े पर बहुत फ़िदा हैं। हमारे यहाँ सब कुछ राजनीति है। यदि एक पक्ष किसी चीज़ का समर्थन कर रहा है तो दूसरे को उसका विरोध करना ही करना है। ज़रूरी नहीं कि एक दल का विरोध दूसरा दल ही करे। एक दल को समर्थन करता देख बुद्धिजीवी उस दल का तो क्या, उस फिल्म का भी विरोध करने लग जायेंगे जो किसी दल का नाम नहीं लेती।

होलोकॉस्ट की कॉस्ट (लागत)तो चुकाई ही गई, उसके वर्जन या किसी न किसी बहाने से उसके अवगणन की भी लागतें हैं।

(मनोज श्रीवास्तव)
राम-रज, 3-पारिका-फेज-2,
चूना भट्टी, कोलार रोड,
भोपाल-462016 (म.प्र.)
मो.-9425150651
ईमेल-shrivastava_manoj@hotmail.com

अंक 236 नवंबर 2024

अनुक्रम

सम्पादकीय

साधो सबद साधना कीजै

विमोचन के बहाने मोची, मोजा और जुराब / **अजित वडनेरकर/12**

हिंदी एक विचार अनेक - 9

हिन्दी सशक्त संपर्क भाषा / **राजेन्द्र परदेसी/14**

धर्मशास्त्रों में प्रतिपादित समाज शास्त्र-18

अहिंसक समृद्धि का आधार है धर्म-विवेक / **रामेश्वर मिश्र पंकज/16**

दुर्योधन द्वारा महर्षि दुर्वासा के स्वभाव का कूटनैतिक दुरुपयोग और श्रीकृष्ण द्वारा पाण्डवों की सहायता / **कुसुमलता केडिया/19**

अनुवाद

हवा के साथ चलो (**मूल :** जॉन रॉबर्ट लुईस) / **अनु. विभा खरे/22**

आलेख

शिक्षा और सृजनशीलता का सहसंबंध / **उमरावसिंह चौधरी/25**

नवगीत की नवता : पारंपरिक संदर्भ / **कृष्णगोपाल मिश्र/28**

भारतीय सिनेमा इतिहास पर एक नजर / **अशोक कुमार/30**

हिन्दी का पहला कवि जगनिक / **वीरेन्द्र 'निर्झर'/32**

प्राच्यवाद और हिंदी साहित्य में इतिहास-बोध का विकास / **प्रभात कुमार मिश्र/36**

मैं कहता आँखन की देखी / **अवधेश तिवारी/42**

मैला आँचल के सांस्कृतिक निहितार्थ / **अरुणाभ सौरभ/46**

शोधालेख

लोकसंग्रह एवं उनकी प्रासंगिकता : श्रीमद्भगवद्गीता / **योगेश्वर कुमार साहू, भगवन्त सिंह/50**

स्त्री पक्ष के विविध आयाम-समकालीन युग के विशेष संदर्भ में / **लेखा. पी./53**

छत्तीसगढ़ में साहित्य सृजन की परंपरा और राजनाँदगाँव का साहित्य इतिहास / **हरिशंकर झाराय, सुनीता तिवारी/55**

दर्दजा : एक सच यह भी / **लक्ष्मी, सदानंद/60**

मनीषा कुलश्रेष्ठ की कहानियों में आर्थिक परिवेशगत यथार्थ / **रतिराम गढ़ेवाल, रमणी चंद्राकर/64**

नर्मदा का सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य / **शुभम चौहान/69**

प्रेमचंद : आदर्श और यथार्थ के कथाकार / **किरण कुमारी/72**

रिपोर्ताज

एक संग्रहालय ऐसा भी / **अखिलेश श्रीवास्तव 'दादूभाई'/77**

व्यंग्य

योग, संयोग और दुर्योग / **प्रियदर्शी खैरा/82**

ललित निबंध
साहित्य, संस्कृति और समाज के हाशिए / **श्रीराम परिहार/84**
आत्मकथ्य
फिर आँधियों को मेरा नाम और पता देना / **संतोष श्रीवास्तव/87**
उपन्यास अंश
महानायक इंद्र (वेद-कथा) / **प्रमोद भार्गव/93**
साक्षात्कार
जया केतकी की दयानंद पांडे से बातचीत/96
कहानी
एक और जंग / **स्वाति तिवारी/103**
मृत्यु की गोद में मेरी सुहानी नींद / **आत्माराम यादव पीव/106**
हैसियत / **रामेश्वर वाढेकर 'संघर्षशील'/108**
अनुवाद
मैं ठीक हूँ न / **(मूल : रूमी लस्कर बोरा) / अनु. विजय कुमार यादव/113**
कविता
जिंदगी / **यतीन्द्रनाथ राही/116**
मेरा गाँव / **वी.एन. सिंह/117**
सूरज, चमको न / **सुशांत सुप्रिय/118**
प्रणय निवेदन / **नम्रता सरन 'सोना'/119**
गीत
सुख के दिन / **मनोज जैन/120**
समीक्षा
दस प्रतिनिधि कहानियाँ (उर्मिला शिरीष) / **सुषमा मुनीन्द्र/121**
मौन से संवाद (राजेंद्र राजन) / **मोहन तिवारी 'आनंद'/123**
नौकरी धूप सेंकने की (सुदर्शन सोनी) / **विवेक रंजन/125**
साथ हैं कवितायें (विनीता वर्मा) / **विजय अग्रवाल/126**
देव तुम्हारे लिए (मीनू पांडे 'नयन') / **मुजफ्फर इकबाल सिद्दिकी/127**

विमोचन के बहाने मोची, मोजा और जुराब

- अजित वडनेरकर

जन्म - 1962।
शिक्षा - हिंदी साहित्य में स्नातकोत्तर उपाधि।
रचनाएँ - पाँच पुस्तकें प्रकाशित।
सम्मान - राजकमल प्रकाशन का विद्यानिवास मिश्र कृति पांडुलिपि सम्मान।

प्रकृति में हर वस्तु का एक आवरण होता है और हर चीज़ का अनावरण होता ही है। आए दिन प्रतिमाओं-पुस्तकों के अनावरण होते हैं। इसके लिए विमोचन शब्द भी है जो मूलतः लेखक-प्रकाशक द्वारा पाठकों के सामने नई पुस्तक लाने के सन्दर्भ में बहुत प्रचलित है। विमोचन बना है मुच् धातु में वि उपसर्ग लगने। संस्कृत की मुच् धातु में ढीला करना, खोलना, मुक्त करना, अलग करना, छोड़ना, बाँटना, सिपुर्द करना जैसे भाव हैं। 'वि' उपसर्ग में वैसे तो निषेध का भाव है किन्तु इसके प्रयोग का दायरा विस्तृत है। 'वि' का प्रयोग विशिष्ट, समझ-बूझ के साथ, भली प्रकार से, दो हिस्सों में, खोलने आदि अर्थों में भी होता है। इस तरह विमोचन का अर्थ हुआ मुक्त करना, बाहर लाना, सबके सामने लाना, अर्पण करना आदि। विमोचन का प्रयोग अब सिर्फ़ किताब के लोकार्पण के सन्दर्भ में ही होता है अन्यथा इसका प्रयोग किसी भी संज्ञा को सामने लाने के सन्दर्भ में होता है जैसे-भाव-विमोचन यानी अपने भीतर के भावों को सामने लाना।

अश्रुविमोचन यानी आँसुओं को बाहर आने देना, श्रद्धाविमोचन आदि। पुस्तक विमोचन की प्रक्रिया से भी यह स्पष्ट होता है। विमोचनकर्ता या विमोचक आवरण में लिपटी पुस्तक का अनावरण करता है और उपस्थितों को उसका दर्शन करवाता है। यूँ देखें तो किताब के विमोचन में जो क्रिया होती है उनमें प्रकाशित पुस्तक का मुख्य अतिथि द्वारा सबसे पहले खोला जाना। गौर करें, किताब दो हिस्सों में खुलती है। उसके द्वारा पुस्तक की सामग्री को सबसे पहले देखा जाना। रचनाकार द्वारा पुस्तक-अंश का पाठन यानी कथानक को लोगों के सामने उद्घाटित करना जैसी बातें विमोचन में निहित भाव को पूर्णता प्रदान करती हैं।

मोचक, मोची, मोजा :- विघ्नहर्ता, दुखहर्ता के अर्थ में संकटमोचक शब्द का भी प्रयोग होता है। यहाँ जो मोचक है वह भी इसी मुच् से आ रहा है। भाव यही है कि भक्त को संकट से मुक्त करना। मोचन में छुटकारा, मुक्ति का भाव है अतः मोचक वह व्यक्ति है जो छुटकारा दिलाए, या मुक्ति दिलाए। मरे हुए जानवरों की खाल उतारने की क्रिया चर्म-मोचन कहलाती है। पशुओं की खाल उतारने वाले समुदाय के लिए मोची शब्द इसी मुच् से आ रहा है। जूते के लिए राजस्थानी में एक शब्द है मोजड़ी। यह दरअसल नोकदार जूती होती है। संस्कृत में मोचिका का अर्थ है एक किस्म का जूता। मोजड़ी शब्द में मुच् को पहचाना जा सकता है। च वर्णक्रम में ही ज वर्ण आता है और ये ध्वनियाँ एक-दूसरे से बदलती हैं। मोचक का एक अर्थ चमड़ा उतारनेवाला जब स्थिर हुआ तब मोच, मुच जैसे शब्द चमड़े के पादत्राण के अर्थ में रूढ़ हो गए। अवेस्ता में इसका रूप मौच होता है। पहलवी में यह मोज़ग़ या मुचक हुआ जिसका अर्थ जूता ही है। पर्शियन में इसका मुजेह, मोजाह या मोजः रूप मिलता है जिसका अर्थ होता है पैरों से ऊपर पिण्डलियों तक पहना जाने वाला एक कपड़ा। इसे पायताबा भी कहते हैं और जुराब भी। यह दिलचस्प है कि मुक्त, अनावरण, खोलना, बन्धन मुक्त करना जैसे भावों वाले मुच् धातु से बने शब्दों के रूपान्तर मोजा, मोजड़ी जैसी संज्ञाएँ बनीं जिनमें आवरण या कवर का भाव आता है।

जुराब जो कभी गोराब था :- मोजे के लिए जुराब शब्द का भी हिन्दी में खूब प्रयोग होता है। बरास्ता फ़ारसी होते हुए उर्दू और फिर हिन्दी में जुराब शब्द दाखिल हुआ। जुराब के सन्दर्भ में दो धारणाएँ हैं। पहले मत के मुताबिक जुराब ईरानी मूल का

शब्द है। डॉ. अली नूराई के फ़ारसी-अंग्रेजी कोश में दी गई धातु तालिक के मुताबिक पर्शियन धातु गुर्ब से बना है जिसका अर्थ मोजा या पायताबा होता है। डॉ. मोहम्मद मोईन के फरहंग ए मोइन के हवाले से वे इसी धातु से अरबी के जौराब की व्युत्पत्ति बताते हैं। पुरानी फ़ारसी में इसका रूप गोराब था। आज की फ़ारसी में यह जुराब है। नूराई के कोश में गोराब की अर्थवत्ता की कोई व्याख्या नहीं मिलती। दूसरी व्युत्पत्ति के मुताबिक यह सेमिटिक भाषा परिवार का शब्द है। इसकी मूल धातु ग-र-ब है। डॉ. मोइन के मुताबिक यह द्ध-ह्-ड्ड है। अरबी में ग और ज ध्वनियाँ आपस में बदलती हैं। बेवर्ली ई क्लैरिटी की अरेबिक-इंग्लिश डिक्शनरी में ग-र-ब में नज़दीक, छुपाना, लिपटना, चुस्त जैसे भाव हैं।

कई भाषाओं में बहुरूप :- अरबी में गुरुब, गौराब, गर्राब, तग़र्रब जैसे शब्द इससे बनते हैं जिनमें निकटता, सटना, सामीप्य जैसे भाव हैं। इसका एक रूप गिराब है जिसका अर्थ है मशक, चमड़े से बनी पानी की थैली। इसका एक रूप और है जिसका अर्थ है ज़ाब यानी चमड़े की थैली। गौर करें कि मशक भी चमड़े की थैली ही होती है। जिस तरह मुच् धातु में मुक्त करना, छुटकारा दिलाना आदि भाव मोची के अर्थ में पशुओं की खाल उतारने में व्यक्त हो रहे हैं, कुछ वही बात इस गिराब में है। ध्यान रहे, शरीर से खाल चिपकी रहती है, सटी रहती है। खाल के भीतर तमाम अवयव छुपे रहते हैं। ग-र-ब में निहित नज़दीक, छुपाना, लिपटना, चुस्त जैसे तमाम भाव यहाँ व्यक्त हैं। सो चमड़े या खाल से बनी थैली को गिराब नाम मिला। इसका एक रूप जिराब हुआ जिसके विभिन्न रूपान्तर कई भाषाओं में भी हुए मसलन-अरबी के जौराब का एक रूप होता है गौराब। जौराब का पूर्वरूप है जिराब। अल्बानी में यह कोराप होता है तो अज़रबैजानी में कोराब, बुल्गारी में यह चोराप और और फ़ारसी में जोराब, जुराब। रोमानी में यह सिओराब है, सीरियाई में चरापा है, ताजिक में जुरोब है तो तुर्की में यह कोराप है।

पैरों का सुरक्षा कवच :- स्पष्ट है कि गिराब अगर थैली है तो मोज़ा यानी जुराब भी एक थैली है। चमड़े की थैली। चमड़े का पादत्राण से रिश्ता सदियों पुराना है। निश्चित ही पैर ढकने के चमड़े के आवरण को भी जिराब कहा गया। अरबी में मूलत: शरीर की खाल को जिल्द कहते हैं मगर हिन्दी में जिल्द का रूढ़ार्थ अब आवरण हो गया है। खाल भी आवरण ही है। सो समझा जा सकता है कि जुराब मूलत: पैरों का रक्षा कवच था। बाद में इसमें मोजे की अर्थवत्ता भी जुड़ गई और तब चमड़े के स्थान पर खूबसूरत सूत और ऊन से बुने हुए मोजे बनने लगे।

जी-37, फेज-1, ग्रीन मीडोज
भोजपुर रोड, पी.ओ. मिसरोद,
भोपाल-462047 (म.प्र.)
मो.- 6265739044

रचनाकारों से अनुरोध

- *मौलिक तथा अप्रकाशित-अप्रसारित रचनाएँ ही भेजें।*
- *रचना फुल स्केप कागज पर साफ लिखी हुई अथवा शुद्ध टंकित मूल प्रति में भेजें।*
- *रचनाकार/लेखक अपना पूरा परिचय, पता, पिनकोड, फोन नंबर एवं फोटो साथ भेजें।*
- *डाक टिकट लगा लिफाफा साथ होने पर ही अस्वीकृत रचना वापस भेजी जा सकती है। अतः लेखकों से निवेदन है कि लेख की एक प्रति अपने पास अवश्य रखें।*
- *'अक्षरा' में प्रकाशन हेतु रचना भेजने के बाद उसे अन्यत्र प्रकाशन हेतु न भेजें। यदि अन्यत्र प्रकाशित हो रही हो तो कार्यालय को अवश्य सूचित करें।*
- *आप अपनी रचनाएँ* **myakshara18@gmail.com** *पर ई-मेल द्वारा भी भेज सकते हैं।*

हिंदी सशक्त संपर्क भाषा

- राजेन्द्र परदेसी

जन्म स्थान - बबुरा, भोजपुर (बिहार)।
शिक्षा - ए. एम. आई. ई.,डी.लिट्।
रचनाएँ - बारह पुस्तकें प्रकाशित।

देश को जोड़ने के लिए तथा समुचित विकास के लिए हर राष्ट्र की एक सम्पर्क भाषा होना आवश्यक है। संपर्क भाषा से आशय उस भाषा से जिसे राष्ट्र के एक कोने से दूसरे कोने तक लोग समझ सकते हैं और जिसके माध्यम से राष्ट्र के किसी कोने में जाने पर वहाँ की जनता से संपर्क किया जा सकता है।

भारत जैसे बहुभाषी देश में भौगोलिक एवं सांस्कृतिक एकता की सीमा का निरूपण है और आपस में संचार प्रक्रिया है-'उत्तर भारत में सिंध से लेकर पूर्व में असम तक हिंदी ही ऐसी क्रमिक श्रृंखला है जिसमें संपर्क के किसी बिंदु पर बोधगम्यता विछिन्न नहीं होती।' ऐसा अनुभव भारत भ्रमण के समय बीसवीं शताब्दी के मध्य में अमेरिका के भाषाविद् गम्पर्ज ने किया। इसका अर्थ यह निकलता है कि यदि हम पैदल ही एक गाँव से दूसरे गाँव होते हुए असम तक चले जाएँ तो कहीं भी संचार टूटने का अनुमान नहीं होगा। यदि बोधगम्यता को भाषी-बोली निर्धारण का आधार मान लिया तो संपूर्ण भारत को एक ही मानना होगी तथा वर्तमान सभी भाषाओं की संपर्क भाषा हिंदी ही हो सकती है। कारण हिन्दी हिन्द यूरोपीय भाषा परिवार के अन्दर आती है। यह हिन्दी ईरानी शाखा की हिन्द आर्य उपशाखा के अन्तर्गत वर्गीकृत है। उर्दू, कश्मीरी, बंगाली, उड़िया, पंजाबी, मराठी, नेपाली, रोमानी, जैसी भाषाएँ भी हिन्द आर्य भाषाएँ हैं।

हिन्दी विश्व के सबसे बड़े भाषा, परिवार भारोपीय परिवार की प्रमुख भाषा है। इसके बोलने वालों की संख्या विश्व में दूसरे स्थान पर है। हिन्दी की उपभाषाओं और बोलियों की संख्या विश्व की समस्त भाषाओं से अधिक है। हिन्दी की शब्द संपदा अन्य भाषा शब्द समूह से बेहतर तथा समृद्ध है। इस प्रकार भाषा वैज्ञानिक एवं विस्तार की दृष्टि से हिन्दी विश्व की श्रेष्ठतम भाषाओं में से एक है। साहित्यिक दृष्टि से भी हिन्दी विश्व की प्रमुख भाषाओं में है। जिसका साहित्य, उद्भव काल से ही लिखा जा रहा है।

आज हिन्दी विश्व में विद्यमान समृद्धतम भाषाओं में से एक है। संरचना की सौंदर्यशीलता भाव-भंगिमाओं की गहनता, अभिव्यक्ति की तीव्रता तथा शैलियों की विविधता को समेटती हुयी हिन्दी भाषा अनेक उन्नत रूपों में प्रवाहमान है। आधुनिक युग में हिन्दी का व्यापक प्रचार और प्रयोग होने लगा है। आज हिन्दी का रूप सिर्फ साहित्यिक नहीं रहा। बल्कि यह प्रशासन, व्यापार, न्याय, शिक्षा, विज्ञान, पत्रकारिता के रूप में जनसंपर्क की भाषा है।

स्वतंत्रता के पश्चात् हिन्दी को राजभाषा के रूप में स्वीकार किया गया है। सारे देश में समाचार माध्यमों राजनीतिक कार्यक्रमों के लिए उत्तर-दक्षिण, पूरब-पश्चिम तक जिस भाषा को सर्वमान रूप से व्यवहार हो रहा है, वह हिन्दी है। संपर्क भाषा के रूप में हिन्दी के महत्व को जानकर ही विदेशी चैनल भी सर्वाधिक कार्यक्रम हिंदी में तैयार कर रहे हैं। अत: आज निर्विवाद रूप से यह सत्य है कि हिन्दी विश्व बाजार की दृष्टि से भी एक सशक्त भाषा बन गई है।

वैसे हिन्दी के उद्भव काल से ही उसे प्रश्रय देने के स्थान पर विरोध ही हुआ, परंतु हिन्दी की प्रगति में कहीं कोई व्यवधान नहीं पड़ा। फारसी तथा अंग्रेजी को राजभाषा बनाए रखने के बावजूद सदैव से हिन्दी ही भारत की संपर्क भाषा के रूप में कार्य कर रही है। आज भी कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक केवल हिन्दी ही ऐसी भाषा है जिसके बोलने या समझने वाले सहजता से मिल जाते हैं। इसीलिए हिन्दी को राष्ट्रीय संपर्क की भाषा माना जाता रहा है।

मध्यकालीन भारत के विभिन्न प्रान्तों में धार्मिक चेतना के विकास काल में भक्तिकालीन सांस्कृतिक आंदोलन के सूत्रधार विभिन्न क्षेत्रों में रहने वाले थे। बंगाल, गुजरात, महाराष्ट्र, पंजाब तथा सुदूर दक्षिण में यह भक्ति आन्दोलन शुरू हुआ। इसके सूत्रधार सभी सम्प्रदाय के लोग थे। सभी ने संपर्क भाषा के रूप में हिन्दी का ही प्रयोग किया। मुगल बादशाहों के दरबार में हिन्दी कवियों को काफी सम्मान दिया गया। महाराष्ट्र में शिवाजी के दरबार में हिन्दी कवि भूषण प्रसिद्ध थे। इसलिए हिन्दी उस युग में भी संपर्क भाषा के रूप में स्थापित थी।

ब्रिटिशकाल में भी हिन्दी का सर्वाधिक विकास हिन्दी प्रदेश की अपेक्षा हिन्दीत्तर प्रदेशों में हुआ। 19वीं शती में अब पुनर्जागरण का क्रम चला तो उसके प्रसार के लिए हिन्दी को ही सभी लोक नेताओं ने स्वीकार किया क्योंकि हिन्दी ही एकमात्र भाषा थी, जिसका पूरे देश में प्रसार था। उस समय अंग्रेजी भाषा की आवश्यकता पड़ती थी फिर भी हिन्दी आम जन की भाषा रही बंगाल में जब ब्रह्म समाज की स्थापना हुई उसके नेता राजा राममोहन राय और केशवचंद ने इस समाज के प्रचार के लिए हिन्दी को ही अपनाया। स्वामी दयानंद ने हिन्दी के माध्यम से ही आर्य समाज का प्रचार किया। हिन्दी के प्रचार-प्रसार में आर्य समाज की विशिष्ट भूमिका रही है।

पंजाब में लाला लाजपत राय और श्रद्धानंद ने हिन्दी के प्रचार का कार्य किया। आर्य समाज आंदोलन तथा राजनीतिक क्षेत्र में जन-जन तक अपने विचार पहुँचाने के लिए उन्होंने हिन्दी का ही सहयोग लिया। महात्मा गाँधी ने तो हिन्दी के प्रश्न को स्वराज्य से भी बढ़कर मानते हुए 1918 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के मंच पर हिन्दी में भाषण दिया और कुछ लोगों द्वारा विरोध करने पर जो उत्तर उन्होंने दिया वह संपर्क भाषा के रूप में हिन्दी का महत्त्व प्रतिपादक है-मैंने सन् 1915 से कांग्रेस के (एक के अलावा) सभी अधिवेशनों में भाग लिया है। इस अधिवेशनों का मैंने इस अभिप्राय से अध्ययन किया है कि कार्यवाही को अंग्रेजी की अपेक्षा हिन्दुस्तानी में चलाने से कितनी उपयोगिता बढ़ जाएगी। मैंने सैकड़ों प्रतिनिधियों और हजारों अन्य व्यक्तियों से बातचीत की है और मैंने अन्य सभी व्यक्तियों से अधिक विशाल क्षेत्र का दौरा किया है और अधिक शिक्षित तथा अशिक्षित लोगों से मिला हूँ-लोकमान्य तिलक और श्रीमती एनीबेसेंट से भी अधिक और मैं इस दृढ़ निश्चय पर पहुँचा हूँ कि हिन्दुस्तानी के अलावा संभवत: कोई ऐसी भाषा नहीं है जो विचार विनिमय या राष्ट्रीय माध्यम बन सके।'

आज राजनीतिक कारणों से हिन्दी राष्ट्रभाषा के रूप में चाहे जितने व्यवधानों की शिकार हो। परन्तु अपनी विविधता के कारण भारत में संपर्क भाषा के रूप में जन-जन की भाषा के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त है। आज सारे देश में समाचार माध्यमों, राजनीतिक कार्यक्रमों के लिए उत्तर-दक्षिण, पूर्व-पश्चिम तक जिस भाषा का व्यवहार हो रहा है, वह हिन्दी है। संपर्क भाषा के रूप में हिन्दी के महत्व को जानकर ही विदेशी चैनल भी सर्वाधिक कार्यक्रम हिन्दी में तैयार कर रहे हैं। हिन्दी भाषा बोलने वालों की संख्या की दृष्टि से भी विश्व में दूसरे स्थान पर है। संपर्क भाषा के रूप में हिन्दी ही सर्वाधिक समुचित भाषा है। लेकिन राष्ट्रभाषा के रूप में अभी जितनी वृद्धि होनी चाहिए, उतनी नहीं हुई।

हिन्दी को सम्पन्न बनाने के लिए एक पक्षीय दृष्टिकोण का परित्याग आवश्यक है। विज्ञान, प्रौद्योगिकी, चिकित्साशास्त्र, कृषि विज्ञान तथा इसी प्रकार के उपयोगी विषयों पर मौलिक एवं अनुदित पुस्तकों की आवश्यकता की जो चर्चा होती रहती है। उस पर विशेष ध्यान देकर स्तरीय ग्रन्थ निर्माण का कार्य युद्धस्तर पर करना चाहिए। लेकिन इस बात का भी भय है कि उपयोगी विषयों पर अतिशय आग्रह के कारण उदार मानवीय ज्ञान की उपेक्षा हो जाए। हिन्दी में आधुनिक ज्ञान विज्ञान की सभी शाखाओं में प्रामाणिक ग्रन्थों का जितना अभाव है लगभग वैसा ही अभाव उदार मानवीय ज्ञान के क्षेत्र में जो विचार-चिन्तन पाश्चात्य देशों में हो रहा है उसे भी सबसे अद्यतन रूप में हिन्दी में सुलभ किया जाए।

अंत में, राष्ट्रपति ज्ञानी जैलसिंह के अनुसार-'मैं महसूस कर रहा हूँ कि लोकमान्य तिलक और महात्मा गाँधी जैसे महानुभाव हिन्दी भाषी प्रान्तों में पैदा नहीं हुए थे। इन सबने हिन्दी की लड़ाई हिन्दी के द्वारा ही लड़ी थी। हिन्दी भाषा न तो पंजाबी को मारना चाहती है, न गुजराती को, न मराठी को, वह तो सबको जिंदा रखने के लिए तैयार है।' महात्मा गाँधी ने कहा था कि-'हिन्दी के बिना राष्ट्र गूँगा है।'

136-मयूर रेजीडेंसी,
फरीदी नगर, लखनऊ-226015 (उ.प्र.)
मो.-9415045584

अहिंसक समृद्धि का आधार है धर्म-विवेक

- रामेश्वर मिश्र पंकज

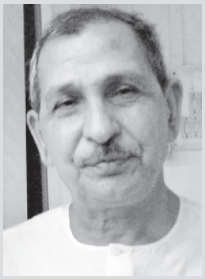

वर्तमान में निरंतर सृजनरत, रीवा मध्य प्रदेश में जन्मे ख्यातिलब्ध दार्शनिक, समाजवैज्ञानिक एवं इतिहासविद, समाजवादी एवं गाँधीवादी आंदोलनों में सक्रियता से सहभागिता कर विभिन्न महत्त्वपूर्ण पदों से सेवा निवृत्त। आपकी बाइस पुस्तकें प्रकाशित हैं।

अहिंसक आर्थिक समृद्धि का आधार है धर्म-विवेक, जिसे वस्तुत: धर्माधर्म विवेक कहा जाएगा। 'धर्म' शब्द ऋग्वेद में संज्ञा एवं विशेषण दोनों ही रूपों में अनेक बार प्रयुक्त हुआ है। 'धर्म' शब्द 'धृ' धातु से बना है जिसका अर्थ है -धारण करना, आलम्बन देना, पालन करना। 'प्रथम धर्मा:' एवं 'सनता धर्माणि' ऋग्वेद में कथित हैं। प्रथम धर्म, सनातन धर्म आदि प्राचीन प्रयोग है। वाल्मीकि रामायण में बालकांड एवं अयोध्याकांड में 'सनातन धर्म' शब्द आया है। महाभारत के आदिपर्व में भी 'सनातन धर्म' शब्द है। बौद्ध ग्रंथों-दीघनिकाय, संयुक्त निकाय आदि में 'आर्य धर्म' शब्द है। यहाँ आर्य का अर्थ प्राचीन एवं श्रेष्ठ है। किसी नस्ल या प्रदेश से उसका विशेष सम्बन्ध नहीं है। मनुस्मृति में सनातन धर्म के अर्थ में 'आर्य धर्म' का प्रयोग है।

तैत्तिरीय आरण्यक कहता है-धर्म से विश्व की प्रतिष्ठा है। धर्मवान प्रजा ही लोक में आगे बढ़ती है। धर्मवान से पाप दूर रहता है। धर्म में ही सब प्रतिष्ठित हैं। इसीलिए श्रेष्ठ लोग धर्म को ही सर्वोपरि बताते हैं।

महाभारत का प्रसिद्ध वाक्य है-'धर्म एव हतोहन्ति, धर्मो रक्षति रक्षित:।' इस प्रकार धर्म का मूल अर्थ है समस्त सृष्टि के आधारभूत नियम। तैत्तिरीय उपनिषद् में सत्य बोलना छात्रों का धर्म कहा गया है। स्पष्टत: यह कर्तव्य के अर्थ में है। जैमिनि के अनुसार वैदिक अनुशासन की प्रेरणाएँ ही धर्म हैं। क्योंकि इनसे ही आनन्द मिलता है। वैशेषिक सूत्रकार का कथन है कि जिससे अभ्युदय हो एवं नि:श्रेयस की सिद्धि हो, वह धर्म है।

सामान्य धर्म, विशेष धर्म एवं स्वधर्म :- जो सब के द्वारा पालनीय कर्तव्य हैं, उन्हें सार्वभौम धर्म, सामासिक धर्म या सामान्य धर्म कहा गया है। मनु के अनुसार अहिंसा, सत्य, अस्तेय, पवित्रता एवं संयम सार्वभौम धर्म हैं। विष्णु धर्मसूत्र के अनुसार क्षमा, सत्य, दम, पवित्रता, दान, इन्द्रिय संयम, अहिंसा, दया, सरल निश्छल स्वभाव, लोभ शून्यता तथा ईर्ष्याशून्यता आदि सामान्य धर्म हैं। महाभारत के शांतिपर्व में सत्य बोलना, क्रोध न करना, क्षमा, संतान उत्पादन, पवित्रता, ऋजुता, अद्रोह, न्याय एवं अधीनस्थों का सम्यक् पोषण-ये नौ सामान्य धर्म हैं। इसके अतिरिक्त अपनी विशिष्टता के अनुरूप विशेष धर्म होते हैं, जो समाज में प्राप्त स्थिति, व्यवसाय, दक्षता, प्रतिभा, कार्य-क्षेत्र तथा स्व-भाव एवं स्व-संकल्प के अनुसार निर्धारित होते हैं। जैसे- यदि आपने संकल्प किया कि आज मैं प्रात: अमुक श्रेष्ठ कार्य (दान, यज्ञ, सेवा, करुणा आदि) करूँगा तो उस स्व-संकल्प के कारण वह उस समय आपका विशिष्ट धर्म होगा। वर्ण-धर्म, आश्रम-धर्म, राजधर्म, गुरु-धर्म, छात्र-धर्म आदि सब विशिष्ट धर्म ही हैं।

प्रत्येक व्यक्ति का सामाजिक एवं आध्यात्मिक कर्तव्य उसका स्वधर्म है। इसमें सामान्य धर्म एवं विशिष्ट धर्म दोनों का समन्वय है। योगदर्शन में कहा है कि अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य (संयम) एवं अपरिग्रह-ये पाँच सार्वभौम यम हैं। सभी के द्वारा सभी समय में करणीय कर्तव्यों का निकष ये पाँच धर्म-कर्तव्य हैं। अपनी विशेष स्थिति के कारण वृत्ति-विशेष (जाति), देश-विशेष एवं काल-विशेष के अनुसार इनमें कतिपय अविच्छिन्नताएँ (सीमाएँ) आ सकती हैं।

धर्म के सन्दर्भ में योगदर्शन से सर्वाधिक प्रकाश मिलता है। योगसूत्र 3/14 के व्यास भाष्य की पहली ही पंक्ति स्पष्ट कहती है -

योग्यतावच्छिन्ना धर्मिण: शक्ति: एव धर्म:।

धर्माधर्म-विवेक का अर्जन आवश्यक :-किसी धर्मी की योग्यता से विशेषित शक्ति ही उसका धर्म है। जैसे दाहकता अग्नि का धर्म है। दान देना दानी का धर्म है। पढ़ना विद्यार्थी का धर्म है। पढ़ाना

अध्यापक का धर्म है। अर्थात् जिससे जिस वस्तु या व्यक्ति की पहचान हो, वही उसका धर्म है। योग की भाषा में इसे यों कहा गया है 'पदार्थ का बुद्ध भाव ही धर्म है' यानी जिससे जिसका बोध हो, वही उसका धर्म है। इस प्रकार, योगदर्शन में तीन मूल धर्म बाहरी हैं–प्रकाश, कार्य एवं जड़ता। इसी प्रकार तीन मूल धर्म आभ्यन्तर हैं–ज्ञान (बोध), क्रियाशीलता एवं स्थिति या धृति।

कब क्या करणीय है, क्या अकरणीय है, इसका ज्ञान ही धर्माधर्म–विवेक है, जो ज्ञानपूर्वक ही अर्जित होता है। विवेक क्या है? योगदर्शन कहता है–सत्वगुण–प्रधान बुद्धि विवेकबुद्धि है। आत्मस्वरूप का दर्शन ही विवेक का आधार है।

संयमी ही कर सकते हैं विवेक की साधना :– व्यक्ति में सर्वप्रथम विवेकज्ञान शास्त्रों के अध्ययन या श्रवण से होता है। बाद में युक्तिपूर्ण चिंतन–मनन द्वारा उसे दृढ़तर एवं स्पष्टतर करना होता है। विवेकज्ञान की दृढ़ता को ही ज्ञान–दीप्ति कहा जाता है। इस प्रकार विवेक की साधना केवल संयम–सम्पन्न व्यक्तियों द्वारा ही सम्भव है।

सत्वगुण–प्रधान बुद्धि का वर्णन श्रीमद्भगवद्गीता में भलीभाँति किया गया है। 'जो बुद्धि कर्तव्य और अकर्तव्य को, अभय और भय को तथा बन्धन एवं मोक्ष को यथार्थत: जानती है, वह सत्व–प्रधान बुद्धि है।' इसी प्रकार 'सात्विक ज्ञान वह है जो समस्त प्राणियों में एक ही अविनाशी को, चेतना को एवं परमसत्ता को समभाव से स्थित देखता है।'

अहिंसक चित्तभूमि ही संयमी होती है :– यह सात्विक बुद्धि केवल अहिंसक चित्तभूमि के साथ ही सम्भव है। गाँधी जी ने भी इस पर बारम्बार विस्तार से प्रकाश डाला है। योगदर्शन में भी यही कहा है कि सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य एवं अपरिग्रह आदि सभी यम–नियम अहिंसामूलक ही हैं। वे अहिंसा–सिद्धि के हेतु होने के कारण अहिंसा–प्रतिपादन के लिए ही शास्त्र में प्रतिपादित हैं। सभी यम–नियमों का उद्देश्य है निर्मल अहिंसा की सिद्धि।

अहिंसा की परिभाषा :– अहिंसा की परिभाषा है–'सर्वथा सर्वदा समस्त प्राणियों के प्रति एवं प्रकृति के प्रति अनभिद्रोह ही अहिंसा है। केवल प्राणिपीड़ा का त्याग ही अहिंसा नहीं है अपितु प्रकृति, परिवेश एवं प्राणियों के प्रति मैत्री, करुणा एवं मुदिता वृत्तियों का पोषण भी अहिंसा का अनिवार्य अंग है।

चित्त और चित्त–भूमियाँ :– यहाँ प्रश्न उठेगा कि चित्त–भूमि क्या है? योगदर्शन कहता है–दृष्टा, आत्मसत्ता चैतन्यरूप है। इस चैतन्य के द्वारा ही बुद्धि चेतन होकर सभी उपस्थित विषयों को प्रकाशित करती है। जो प्रकाशित होता है यानी जिसका ज्ञान होता है, वह–रूप, रस, गंध, स्पर्श, शब्द आदि का सम्पूर्ण विस्तार–दृश्य है। चित्त के द्वारा उनका ज्ञान होता है।

ज्ञान, प्रवृत्ति (क्रियाशीलता) एवं स्थिति या धृति शक्ति से सम्पन्न अन्त:करण ही चित्त है। समस्त बोधरूप चित्त की ही वृत्तियाँ हैं। इन्हें ही योगदर्शन में प्रत्यय भी कहा जाता है। सभी प्रत्यय चित्त में दिखने वाले धर्म हैं। साथ ही, चित्त में संस्कार भी अपरिदृष्ट रूप में रहते हैं। प्रत्यय एवं संस्कारों से सम्पन्न चेतना को ही चित्त कहा जाता है। चित्त को हम उसकी वृत्तियों से ही पहचानते हैं। वृत्तियों के लीन होने की दशा में चित्त के भी लीन होने की दशा है।

योगदर्शन में पाँच प्रकार की चित्तवृत्तियाँ वगीकृत हैं –
(चित्तवृत्तियों को ही बुद्धिवृत्ति भी कहते हैं) –
1 प्रमाण अर्थात् यथार्थ बोध।
2 विपर्यय अर्थात् अयथार्थ बोध।
3 विकल्प अर्थात् सम्बन्धित वस्तु से भिन्न अन्य वस्तु की भ्रांति में लिप्त रहना अथवा शब्दज्ञानानुपाती वस्तुशून्य शब्द को किसी वस्तु सत्ता का वाचक समझना।
4 स्मृति अर्थात् अनुभूत भाव का पुन: अनुभव।
5 निद्रा अर्थात् अभावात्मक वृत्ति का (क्षीण सा) बोध।

मन को चित्त न समझें :– उल्लेखनीय है कि मन को चित्त नहीं समझना चाहिए। मन तो संकल्प इन्द्रिय है एवं ज्ञानेन्द्रियों तथा कर्मेन्द्रियों का आभ्यन्तरिक केन्द्र है। मन जिन विषयों को ग्रहण करता है, धारण करता है या जिनमें प्रवृत्त होता है, उनका ज्ञान रखने वाली शक्ति चित्त है।

हिंसा–भूमि और अहिंसा–भूमि :– योगदर्शन के अनुसार चित्त की पाँच भूमिकाएँ हैं–क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त, एकाग्र एवं निरुद्ध। इनमें से अति चपल चित्त क्षिप्त है यानी क्षिप्तभूमिक है। किसी इन्द्रिय–विषय में मुग्ध चित्त मूढ़ है यानी मूढ़भूमिक है। जो चित्त कभी चंचल हो, कभी स्थिर, वह योगदर्शन में विक्षिप्त चित्तभूमि कही जाती है। अधिकांश व्यक्ति इसी चित्तभूमि में रहते हैं। मेधा एवं सद्वृत्तियों की कमी या अधिकता से इनके असंख्य भेद हैं। श्रेष्ठ लक्ष्य के प्रति

एकाग्र सात्विक बुद्धि एकाग्रभूमिक चित्त का लक्षण है। निरुद्ध चित्त तो समाधि की स्थिति है। विक्षिप्त चित्त में जब सत्व का एवं मेधा तथा सद्वृत्तियों का उत्कर्ष होता है, तब वह चित्तभूमि भी अहिंसक होती है। एकाग्र चित्तभूमि सर्वथा सर्वदा अहिंसक होती है। प्रकृति एवं प्राणियों के प्रति मैत्री-भाव रखना तथा उन्हें पीड़ित करने से बचना अहिंसक चित्तभूमि का लक्षण है।

अहिंसक चित्तभूमि का आधार हैं अहिंसक शास्त्र और उनका प्रवाह। सम्पूर्ण समाज में, पूरी एक सभ्यता में अधिकांश जन अहिंसक चित्तभूमि वाले हों, इसके लिए उस सभ्यता की वैसी जीवन-दृष्टि एवं विश्व-दृष्टि आवश्यक है, उस विश्व-दृष्टि एवं जीवन-दृष्टि के निरंतर औपचारिक-अनौपचारिक शिक्षण, उपदेश, स्मरण, मनन, ध्यान एवं तदनुरूप जीवन-व्यवहार की व्यवस्था आवश्यक है। इस प्रकार एक विराट संरचना-तंत्र द्वारा ही इसकी व्यावहारिक गतिशीलता सम्भव है। समाज-जीवन इसी प्रकार चला करते हैं।

इस प्रकार अहिंसक चित्तभूमि के आधार में विस्तृत ज्ञान-प्रवाह है, शास्त्र-समूह हैं एवं विराट जीवन-दृष्टि है। यह कोई Blissful Ignorance की दशा नहीं है। ज्ञान की एक विस्तृत श्रृंखला उसके पीछे विद्यमान है। विश्व के सभी समाजों की अपनी-अपनी अत्यंत समृद्ध ज्ञान-परम्पराएँ रही हैं। विशाल ज्ञान-कोष एवं ज्ञानराशियाँ रही हैं। शताब्दियों की संचित ज्ञानराशि और उसकी विवेक-साधना द्वारा ही ये समाज प्रधानत: अहिंसक, संयमी एवं मर्यादित रह सके थे। सदिच्छा मात्र से अहिंसक जीवन एवं अहिंसक चित्त सम्भव नहीं है। केवल सदुपदेश से तो वह बिल्कुल भी सम्भव नहीं है। निरन्तर ज्ञान-साधना द्वारा विवेक को जागृत रखने पर ही व्यक्ति एवं समाज का चित्त अहिंसक रहता है। सभी प्राचीन समाजों में ऐसी ज्ञान-साधना की विशद परम्पराएँ रही हैं। सभी प्राचीन ज्ञान-साधनाओं को आदिम या अविकसित या सामंती आदि कह देने के पीछे कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं है। वह तो वैसा कहने वाले या मानने वाले व्यक्ति या व्यक्तियों के अज्ञान और उससे उपजे अति अहंकार मात्र की ही अभिव्यक्ति है, यथार्थ नहीं है।

ज्ञान-साधना और सात्विक जीवन ही देते हैं धर्माधर्म-विवेक :- धर्माधर्म का विवेक निरंतर ज्ञान-साधना एवं सात्विक जीवन द्वारा ही सम्भव है। इसके लिए पुण्य-अपुण्य का विवेक आवश्यक है। पुण्य क्या है? सामान्य धर्मों के दृढ़ आधार पर स्थित स्वधर्म का पालन ही पुण्य है। तदनुसार अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य एवं असंग्रह की ओर ले जाने वाले कर्म ही पुण्य कर्म हैं। मनुस्मृति ने जिन दस धर्ममय कर्मों को गिनाया है, वे संतोष, क्षमा, दम, अस्तेय, बाहरी एवं भीतरी पवित्रता, इन्द्रिय संयम, धी, विद्या, सत्य एवं अक्रोध-ये सभी पुण्य कर्म हैं। मैत्री, करुणा, परोपकार, दान आदि अविद्या-विरोधी कर्म भी पुण्य कर्म हैं।

पुण्य कर्म ही वास्तविक सुख के स्रोत हैं और आधार हैं। अपुण्य कर्म सदा दुख का कारण बनते हैं। पुण्य कर्मों के योग्य चित्त दशा का होना दैवी सम्पदा से युक्त होना है। अपुण्य कर्मों के योग्य चित्त होना आसुरी सम्पदा का सूचक है। इस प्रकार दैवी सम्पदा और पुण्य कर्म ही वास्तविक सम्पत्ति और वास्तविक सुख के कारण हैं।

ए 141, आकृति हाईलैण्ड
डाकघर-फंदा, भोपाल-462030 (म.प्र.)
मो. 8349350267

सूचना

अक्षरा के सम्माननीय पाठकों, सदस्यों से विनम्र आग्रह है कि पते के साथ अपना मोबाइल नंबर भी अवश्य भेजें। ताकि पत्रिका आपको पहुँचने में विलंब न हो।

दुर्योधन द्वारा महर्षि दुर्वासा के स्वभाव का कूटनैतिक दुरुपयोग और श्रीकृष्ण द्वारा पाण्डवों की सहायता

- कुसुमलता केडिया

इतिहास, समाज विज्ञान और अर्थशास्त्र की गहरी अध्येता और तर्कपूर्ण विवेचना में सिद्धहस्त विदुषी प्रो. कुसुमलता केडिया के वैचारिक आलेखों का शृंखलाबद्ध रूप से प्रकाशन किया जा रहा है ताकि हमारे पाठकों में बौद्धिक उत्तेजना उत्पन्न हो और वे हमारी ज्ञान परंपरा को तार्किक ढंग से आत्मसात कर मौलिक लेखन की ओर प्रवृत्त हों। प्रस्तुत है इस लेखमाला की अगली किश्त **'दुर्योधन द्वारा महर्षि दुर्वासा के स्वभाव का कूटनैतिक दुरुपयोग और श्रीकृष्ण द्वारा पाण्डवों की सहायता'** *पाठकों की प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा रहेगी।*

- सम्पादक

स्वदेशी अर्थचेतना की संवाहक।
जन्म - 2 जुलाई 1954।
जन्म स्थान - पडरौना (उ.प्र.)।
शिक्षा - एम.ए., पीएच.डी।
रचनाएँ - अनेक पुस्तकें प्रकाशित।

जो दुर्बुद्धि दुर्योधन गन्धर्वों के हाथों अपने पक्ष की पूर्ण पराजय और युधिष्ठिर के अनुग्रह से प्राणरक्षा के कारण लज्जित होकर प्राण त्यागने को ही तत्पर था, वही राक्षसों तथा अपने दुर्बुद्धि सहयोगियों के उकसावे पर फिर अपने कुटिलता और नीचता के मूल स्वभाव पर आ गया और उसने एक कृतघ्न धूर्त की तरह पाण्डवों के प्रति समस्त कृतज्ञता को पुनः भुलाकर उनके विरुद्ध षड्यंत्र रचने लगा। हस्तिनापुर लौटकर जब उसने दूतों से ये समाचार सुने कि जिन महाराज युधिष्ठिर ने कृपापूर्वक उसके प्राण बचाये हैं, वे वन में भी अपनी पूरी महिमा के साथ सदाचार और तप का जीवन जीते हुए दान-पुण्य भी कर रहे हैं तो उसने उनके प्रति पाप रचा। महर्षि वैशम्पायन के शब्दों में -

श्रुत्वा तेषां तथा वृत्तिं नगरे वसतामिव।
दुर्योधनो महाराज तेषु पापमरोचयत्।।

(वनपर्व अध्याय 262, श्लोक 5)

अर्थात् उनकी सद्वृत्तियों का समाचार सुनकर दुर्योधन ने उनके प्रति पाप रचा।

आगे वैशम्पायन जनमेजय को कथा सुनाते हुए बताते हैं कि इस पापभाव से प्रेरित दुर्योधन में छल कपट की विद्या में निपुण कर्ण और दुशासन आदि के साथ मिलकर पुनः पाण्डवों को विपत्ति में डालने की युक्तियाँ सोचने लगा। तभी वहाँ महायशस्वी धर्मात्मा तपस्वी महर्षि दुर्वासा अपने दस हजार शिष्यों को साथ लिये हुये स्वेच्छा से ही आ पहुँचे।

उनके स्वभाव का स्मरण कर दुर्योधन ने विनीत भाव से उनका अतिथि सत्कार किया और विधिपूर्वक उनकी पूजा की तथा कई दिनों तक उनका अतिथि सत्कार भव्यता से करता रहा। उनके स्वभाव का वर्णन करते हुए वैशम्पायन बताते हैं -

दुर्योधनो महाराज शापात् तस्य विशंकितः।
क्षुधितोऽस्मि ददस्वान्नं शीघ्रं मम नराधिप।।
इत्युक्त्वा गच्छति स्नातुं प्रत्यागच्छति वै चिरात्।
न भोक्ष्याम्यद्य मे नास्ति क्षुधेत्युक्त्वैत्यदर्शनम्।।
अकस्मादेत्य च ब्रूते भोजयास्मांस्त्वरान्वितः।
कदाचिच्च निशीथे स उत्थाय निकृतौ स्थितः।।
पूर्ववत् कारयित्वान्नं न भुंक्ते गर्हयन् स्म सः।
वर्तमाने तथा तस्मिन् यदा दुर्योधनो नृपः।।
विकृतिं नैति न क्रोधं तदा तुष्टोऽभवन्मुनिः।
आह चैनं दुराधर्षो वरदोऽस्मीति भारत।।

(वनपर्व अध्याय 262, श्लोक 11 से 15)

अर्थात् उनके शाप की आशंका से विशेष रूप से आशंकित दुर्योधन रात-दिन उनकी सेवा में तत्पर रहता। वे मुनि कभी तो कहते कि 'राजन, मैं बहुत भूखा हूँ, जल्दी भोजन कराओ।' इतना कहकर स्नान को जाते और बहुत देर के बाद लौटते और फिर कह देते कि 'आज

नहीं खाऊँगा, अब भूख नहीं है'। यह कहकर अदृश्य हो जाते। फिर अकस्मात् आ कर कहते-'हम लोगों को जल्दी भोजन कराओ।' कभी अचानक अर्धरात्रि में उठकर भोजन बनवाते और फिर भोजन करने से इनकार कर देते। ऐसा उन्होंने अनेक बार किया। परंतु दुर्योधन सदा अविचलित और विनम्र बना रहा। तब महर्षि दुर्वासा ने कहा-'मैं तुम्हें वर देना चाहता हूँ पर माँगो।'

दुर्योधन ने इस संभावना पर पहले ही कर्ण और दु:शासन आदि से सलाह कर ली थी। अत: पहले से तय की गई बात वह बोला-'ब्रह्मन्, हमारे कुल में महाराज युधिष्ठिर सबसे ज्येष्ठ और श्रेष्ठ हैं तथा गुणवान और सुशील हैं। वे अपने भाइयों के साथ वन में निवास कर रहे हैं। आप जिस प्रकार से अतिथि हुए, उसी प्रकार शिष्यों सहित आप उनके भी अतिथि होइये। यही प्रार्थना एक ही है कि आप उनके यहाँ ऐसे समय में जाइएगा जब यशस्विनी द्रौपदी समस्त ब्राह्मणों तथा पाँचों पतियों को भोजन कराकर स्वयं भी भोजन करने के पश्चात् सुखपूर्वक बैठकर विश्राम कर रही हो।' इस पर दुर्वासा ने उसे कहा कि मैं ऐसा ही करूँगा। यह कहकर वे चले गये और दुर्योधन कर्ण के साथ प्रसन्नमन सभा में बैठा। इस पर कर्ण बोला -

दिष्ट्या काम: सुसंवृत्तो दिष्ट्या कौरव वर्धसे।
दिष्ट्या ते शत्रवो मग्ना दुस्तरे व्यसनार्णवे।।
दुर्वास: क्रोधजे वह्नौ पतिता: पाण्डुनन्दना:।
स्वैरेव ते महापापैर्गता वै दुस्तरं तम:।।

(वनपर्व अध्याय 262, श्लोक 26, 27)

अर्थात् 'कुरुनंदन, हमारा काम बन गया। तुम्हारी निरंतर वृद्धि हो। तुम्हारे शत्रु विपत्ति के महासागर में डूबे ही समझो। दुर्वासा के क्रोध से उत्पन्न प्रचंड अग्नि में गिरकर पाण्डव दुस्तर नरक में गिरे ही समझो।' इतना कहकर कर्ण दुर्योधन के साथ ठठाकर हँसने लगा और प्रसन्न मन से वे सब अपने-अपने भवनों में गए।

उधर दुर्वासा ने अपने शिष्यों से जब पता लगा लिया कि आज पाण्डव भोजन करके सुखपूर्वक बैठे हैं और द्रौपदी भी भोजन करके विश्राम कर रही है, तभी वे अपने दस हजार शिष्यों के साथ उनके आवास के समीप पहुँचे। महाराज युधिष्ठिर ने उनका स्वागत किया और श्रेष्ठ आसन पर बैठाकर आदरपूर्वक प्रणाम किया एवं पूजा की तथा स्नान आदि से निवृत्त होकर पधारने की प्रार्थना की। तब मुनि शिष्यों सहित स्नान के लिये चले गए।

उधर द्रौपदी अतिथियों को भोजन देने के विषय में चिंता से अत्यंत व्याकुल हो गई और तब कातर होकर भगवान कृष्ण की स्तुति करने लगी -

कृष्ण कृष्ण महाबाहो देवकीनन्दनाव्यय।।8।।
वासुदेव जगन्नाथ प्रणतार्तिविनाशन।
विश्वात्मन् विश्वजनक विश्वहर्त: प्रभोऽव्यय।।9।।
प्रपन्नपाल गोपाल प्रजापाल परात्पर।
आकूतीनां च चित्तीनां प्रवर्तक नतास्मि ते।।10।।
त्वामेवाहु: परं बीजं निधानं सर्वसम्पदाम्।
त्वया नाथेन देवेश सर्वापद्भ्यो भयं न हि।।15।।
दु:शासनादहं पूर्वं सभायां मोचिता यथा।
तथैव संकटादस्मान्मामुद्धर्तुमिहार्हसि।।16।।

(वनपर्व अध्याय 263)

(हे कृष्ण, हे महाबाहु, हे देवकीनन्दन, हे अविनाशी वासुदेव, चरणों में पड़े हुए दुखियों का दुख दूर करने वाले हे जगदीश्वर, आप ही सम्पूर्ण जगत की आत्मा हैं। हे अविनाशी प्रभु, इस विश्व की रचना और सहांर करने वाले आप ही हैं। हे शरणागत रक्षक, प्रजापालक, परात्पर परमेश्वर, आप मन और बुद्धि के प्रेरक हैं, मैं आपको प्रणाम करती हूँ। हे वरदाता अनंत, आपके सिवा मेरा कोई सहायक इस समय नहीं है। हे पुराणपुरुष, कृपा करके मुझे बचाइए, हे श्यामसुंदर, आप ही सबके परम आश्रय हैं। हे ज्योतिर्मय सर्वात्मा, आप ही इस जगत के परम बीज हैं और परम निधान हैं। सम्पूर्ण सम्पदाओं की निधि आप ही हैं। मैं विपत्ति में पड़ी हूँ परंतु आपके रहते मुझे क्या भय। हे भगवन, जैसे आपने कौरवों की सभा में मुझे दु:शासन से बचाया था, उसी प्रकार इस आज के संकट से भी मेरा उद्धार कीजिए।)

द्रौपदी की कातर स्तुति सुनकर भगवान सहसा उनके सामने प्रगट हो गए। द्रौपदी ने प्रणामपूर्वक दुर्वासा के आगमन की और भोजन के लिये तैयार होने के लिये स्नान करने गए हुए होने की बात बताई। तब भगवान श्रीकृष्ण ने कहा-'कृष्णे, अभी तो मुझे बहुत तेज भूख लगी है। सबसे पहले तुम मुझे भोजन कराओ। दुर्वासा और उनके शिष्यों की चिंता बाद में करना।'

द्रौपदी ने कहा-'भगवन, श्री सूर्यनारायण ने जो बटलोई मुझे दी है उससे भोजन तभी तक मिलता है, जब तक मैं भोजन न कर लूँ। परंतु आज तो मैं भोजन कर चुकी हूँ। अब तो उसमें कोई भी अन्न शेष नहीं है।'

इस पर कमललोचन भगवान श्रीकृष्ण ने कृष्णा से कहा–'कृष्णे, मैं तो भूख से व्याकुल हो रहा हूँ और तुम हँसी-विनोद कर रही हो। यह परिहास का समय नहीं है। जल्दी से जाओ और वह बटलोई लाकर मुझे दिखाओ।'

भगवान के हठ करने पर द्रौपदी गई और बटलोई लेकर आई। ऐसा कुछ हुआ कि बटलोई के कंठ में शाकान्न लगा हुआ था। भगवान ने उसे ही निकाला और खा लिया तथा द्रौपदी से कहा–'सम्पूर्ण विश्व की आत्मा यज्ञभोक्ता सर्वेश्वर भगवान श्रीहरि इस शाकान्न से तृप्त और संतुष्ट हों।'

इतना कहकर महाबाहु भगवान श्रीकृष्ण ने सहदेव से कहा कि जाकर मुनियों को भोजन के लिए शीघ्र बुला लाओ। सहदेव देवनदी गंगा में स्नान कर रहे उन मुनियों को बुलाने गए। सभी मुनि स्नान के उपरांत अघमर्षण मंत्र का जप कर रहे थे। सहसा उन्हें पूर्ण तृप्ति का अनुभव हुआ और बार-बार भोजन की डकारें आने लगीं। तब वे सब महर्षि दुर्वासा से बोले–'महर्षि हम लोग महाराज युधिष्ठिर को रसोई बनाने की आज्ञा देकर स्नान करने आए थे। परंतु इस समय इतनी तृप्ति हो रही है कि कंठ तक अन्न भरा हुआ जान पड़ता है। भोजन करना संभव नहीं है। अब क्या किया जाए?'

इस पर महर्षि दुर्वासा ने कहा-वास्तव में हमने रसोई बनवाकर महाराज युधिष्ठिर का अपराध ही किया है। युधिष्ठिर भगवान के भक्त हैं और उनका क्रोध हानिकारक हो सकता है। अत: ऐसा करो कि यहाँ से तुरंत भाग चलो।

इस पर दुर्वासा सहित सभी मुनि पाण्डवों के पास जाने के स्थान पर यहाँ-वहाँ वन में चले गए और जब सहदेव पहुँचे तब तक वे सब जा चुके थे। सहदेव को आसपास के तपस्वियों ने बताया कि दुर्वासा अपने समस्त शिष्यों के साथ भाग गए हैं। तब सहदेव ने लौटकर युधिष्ठिर को यह सूचना दी। युधिष्ठिर ने कहा कि हमें महर्षि की प्रतीक्षा करनी चाहिए। वे कहीं गए होंगे और आते ही होंगे।

जब शाम तक कोई नहीं आया तो युधिष्ठिर सहित सभी पाण्डव चिंता में पड़ गए। वे सोचने लगे कि दुर्वासा मुनि अकस्मात् आधी रात को आकर हमें छलेंगे। यह तो महान संकट उपस्थित दिखता है। इस चिंता में वे सब दुखी होकर लंबी-लंबी साँसें खींचने लगे।

तब भगवान श्रीकृष्ण जो केवल द्रौपदी के समक्ष प्रगट होकर उसका कार्य कर चुके थे, पाण्डवों को शोकमग्न देखकर उनके सामने भी प्रगट हुए और बोले –

भवतामापदं ज्ञात्वा ऋषेः परमकोपनात्।
द्रौपद्या चिन्तितः पार्था अहं सत्वरमागतः।।42।।
न भयं विद्यते तस्मादृषेर्दुर्वाससोऽल्पकम्।
तेजसा भवतां भीतः पूर्वमेव पलायितः।।43।।
धर्मनित्यास्तु ये केचिन्न ते सीदन्ति कर्हिचित्।
आपृच्छे वो गमिष्यामि नियतं भद्रमस्तु वः।।44।।

(वनपर्व अध्याय 263)

(तुम सब पर जो संकट आ गया था, उसे जानकर द्रौपदी ने चिंतापूर्वक मेरा स्मरण किया जिससे मैं तत्काल यहाँ आ पहुँचा। अब दुर्वासा मुनि से भय का कोई कारण नहीं है। उनकी भूख पूरी तरह मिट गई थी और वे आप लोगों के सामने न पड़ने के भय से दूर चले गए हैं। जो भी व्यक्ति नित्य धर्माचरण करते हैं, वे कभी कष्ट में नहीं पड़ते। अब मैं द्वारिकापुरी जाता हूँ। तुम सबका निरंतर कल्याण हो।)

भगवान श्रीकृष्ण का यह कथन सुनकर पाण्डवों की चिंता दूर हो गई और उन्होंने हाथ जोड़कर भगवान श्रीकृष्ण से कहा–'हे गोविन्द, आप हमारे संरक्षक और सहायक हैं, आपके कारण ही हम बड़ी दुस्तर विपत्तियों से पार पा सके हैं। जैसे महासागर में डूब रहे व्यक्ति को जहाज का सहारा मिले, ऐसे ही हमें आपका सहारा है। हे प्रभु आप सदा ही भक्तों का इसी प्रकार कल्याण करते रहें।'

भगवान श्रीकृष्ण ने पाण्डवों से विदा ली और द्वारिका चल दिए। वैशम्पायन जनमेजय से बताते हैं कि दुरात्मा कौरवों ने वनवासी पाण्डवों के साथ बार-बार छलकपट किया। परंतु भगवान की कृपा से वह सब विफल रहा। **(क्रमशः)**

ए-142, आकृति हाईलैण्ड
डाकघर-फंदा, भोपाल-462036 (म.प्र.)
मो.-8349350267

हवा के साथ चलो

मूल - जॉन रॉबर्ट लुईस
अनु. - विभा खरे

शिक्षा - एम.एच.एस.सी., एम.ए.।

रचनाएँ - पत्र-पत्रिकाओं में लेखन।

विशेष - अनुवाद में विशेष कार्य।

(21 फ़रवरी, 1940 को जन्मे जॉन रॉबर्ट लुईस एक अमेरिकी राजनीतिज्ञ और नागरिक अधिकार कार्यकर्ता थे, जिन्होंने 1987 से 2020 में अपनी मृत्यु तक जॉर्जिया के 5वें कांग्रेस जिले के लिए यूनाइटेड स्टेट्स हाउस ऑफ रिप्रेजेंटेटिव्स में सेवा की। उन्होंने 1960 के नैशविले सिट-इन और फ्रीडम राइट्स में भाग लिया, 1963 से 1966 तक स्टूडेंट नॉनवायलेंट कोऑर्डिनेटिंग कमेटी (एसएनसीसी) के अध्यक्ष थे और 1963 के मार्च ऑन वाशिंगटन का आयोजन करने वाले समूहों के 'बिग सिक्स' नेताओं में से एक थे। नागरिक अधिकार आंदोलन और संयुक्त राज्य अमेरिका में वैध नस्लीय अलगाव को समाप्त करने के इसके कार्यों में कई प्रमुख भूमिकाएँ निभाते हुए, 1965 में लुईस ने एडमंड पेट्टस ब्रिज पर सेल्मा से मोंटगोमरी तक के तीन मार्च किए।

डेमोक्रेटिक पार्टी के सदस्य लुईस पहली बार 1986 में अमेरिकी प्रतिनिधि सभा के लिए चुने गए और 17 कार्यकालों तक सेवा की। जिस जिले का उन्होंने प्रतिनिधित्व किया, उसमें अटलांटा का अधिकांश हिस्सा शामिल था। अपनी सेवा अवधि के कारण, वह जॉर्जिया कांग्रेस प्रतिनिधिमंडल के डीन बन गए। वह सदन में डेमोक्रेटिक पार्टी के नेताओं में से एक थे। 1991 से मुख्य उप सचेतक और 2003 से वरिष्ठ मुख्य उप सचेतक के रूप में सेवा कर रहे थे। उन्हें 2012 में प्रेसिडेंशियल मेडल ऑफ़ फ्रीडम सहित कई मानद उपाधियाँ और पुरस्कार मिले।

लुईस की 1998 की आत्मकथा वॉकिंग विद द विंड ए मेमॉयर ऑफ द मूवमेंट, जिसके माइक डी. ऑर्सो के सह-लेखक थे, ने रॉबर्ट एफ. कैनेडी बुक अवार्ड, एनिसफील्ड-वुल्फ बुक अवार्ड, क्रिस्टोफर अवार्ड और लिलियन स्मिथ बुक अवार्ड जीता। यह कई बेस्टसेलर सूचियों में दिखाई दी, इसे न्यूयॉर्क टाइम्स के द्वारा नोटेबल बुक ऑफ द ईयर के रूप में चुना गया, इसे अमेरिकन लाइब्रेरी एसोसिएशन ने अपने नॉनफिक्शन बुक ऑफ द ईयर के रूप में नामित किया और इसे न्यूजवीक पत्रिका की 2009 की 50 बुक्स फॉर अवर टाइम्स की सूची में शामिल किया गया। लुईस अंतिम जीवित 'बिग सिक्स' नागरिक अधिकार आइकन थे।

उनका भाषण ऐसे समय में सत्य, न्याय और समानता के महत्व पर एक शक्तिशाली संदेश देता है जब इन मूल्यों पर हमला हो रहा है।)

परिचय के उन कृतज्ञ शब्दों के लिए आपका बहुत-बहुत धन्यवाद। मुझे आपको बताना होगा कि मैं यहाँ आकर बहुत खुश हूँ, बहुत प्रसन्न हूँ और वास्तव में खुश हूँ। आप अच्छे लग रहे हो! मौसम अच्छा है, बारिश दूर रही। मैं खुश हूँ। आपमें से प्रत्येक को देखकर अच्छा लगा। हार्वर्ड विश्वविद्यालय के अध्येता, ओवरसियर बोर्ड के सदस्य, पूर्व छात्र बोर्ड के सदस्य, प्रतिष्ठित डीन, अतिथि, संकाय और सभी छात्र, सभी अद्भुत स्नातक, और अध्यक्ष महोदया, आपको धन्यवाद। आपके नेतृत्व के लिए धन्यवाद, अच्छी चुनौती स्वीकार करने के लिए धन्यवाद! इस महान विश्वविद्यालय का नेतृत्व करने के लिए।

मैं उस महान नेता के कार्यकाल का सम्मान करने के लिए बस एक क्षण लेना चाहता हूँ, जिन्होंने अपने साहस और दूरदर्शिता के माध्यम से इस ऐतिहासिक विश्वविद्यालय को और भी ऊँचाइयों तक ले जाने का काम किया। अध्यक्ष महोदया, एक मित्र होने के लिए धन्यवाद, लेकिन इससे भी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि हार्वर्ड को एक अधिक सर्व-समावेशी संस्थान की ओर ले जाने के लिए अपने कार्यालय का उपयोग करने के लिए धन्यवाद। रास्ते में कहीं, आपको एहसास हुआ कि प्रतिभाशाली दिमाग एक अनुशासन या सोचने के एक तरीके तक ही सीमित नहीं है।

वास्तव में, सच्ची प्रतिभा हमारे चारों ओर की दुनिया की एक नई समझ बनाने के लिए बाधाओं के पार संबंधों को देखती है। एक हार्वर्ड बनाना उस कार्य के समान है जिसके लिए मैंने अपना जीवन समर्पित किया। जब से आपने एक छोटी लड़की के रूप में राष्ट्रपति आइजनहावर को पत्र लिखा है, तब से आप हमारी दुनिया में मानवीय गरिमा की आवाज का जवाब दे रही हैं। आपने अपनी दृष्टि और अपनी प्रतिभा का उपयोग किया, आपने उस कॉल का जवाब देने के

लिए इस विश्वविद्यालय के महान संसाधनों का उपयोग किया और मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। हमारी दुनिया में मानवीय एकता में आपके योगदान के लिए धन्यवाद।

आज मैं आपमें से हर उस व्यक्ति से कहता हूँ जिसने इस विश्वविद्यालय से स्नातक किया है, आपको नेतृत्व करना चाहिए। आप नेतृत्व करने के लिए कभी भी युवा नहीं होते, आप नेतृत्व करने के लिए कभी भी बूढ़े नहीं होते! हमें अब आपके नेतृत्व की पहले से कहीं अधिक आवश्यकता है। हमें अपने देश को बचाना होगा! हमें इसे बचाना होगा! हमें अपना लोकतंत्र बचाना होगा। आज अमेरिका और दुनिया भर में ऐसी ताकतें हैं जो हमें कहीं और ले जाने की कोशिश कर रही हैं। हमारे पूर्वज पिता और पूर्वज माता हमें इस स्थान पर लाए थे। हो सकता है कि हमारे पूर्वज सभी अलग-अलग जहाजों में इस महान भूमि पर आए हों, लेकिन जैसा कि दिवंगत महान ए. फिलिप रैंडोल्फ ने कहा था, 'हम सभी अब एक ही नाव में हैं।' और हमें एक-दूसरे का ख्याल रखना चाहिए और एक-दूसरे की देखभाल करनी चाहिए। नेतृत्व करने के लिए आप कभी भी बहुत छोटे या बहुत बूढ़े नहीं होते! बोलना! घोषित करना! और अच्छी मुसीबत में पड़ जाओ, जरूरी मुसीबत। आप किनारे पर खड़े रहने का जोखिम नहीं उठा सकते।

युवा लोगों की एक और पीढ़ी और ऐसे लोग जो इतने युवा नहीं हैं, रास्ते में आने के लिए प्रेरित होते हैं। हार्वर्ड के छात्र, डॉ. कोल, जिन्हें मैं कई वर्षों से जानता हूँ, मिसिसिपी आए, दक्षिण आए और अपना सब कुछ दे दिया। जिन 63 युवाओं को मैं जानता था, उनमें एंड्रयू गुडमैन, माइकल श्वार्मर और जेम्स चेनी ने अपनी जान दे दी, जब वे लोगों को वोट देने के लिए पंजीकरण कराने में मदद कर रहे थे। वोट कीमती है, यह लगभग पवित्र है। यह एक लोकतांत्रिक समाज में हमारे पास सबसे शक्तिशाली, अहिंसक उपकरण है और हमें इसका उपयोग करना चाहिए। यदि हम इसका उपयोग करने में विफल रहते हैं, तो हम इसे खो देंगे।

इसलिए इस चुनावी वर्ष के दौरान, मैं आपसे आग्रह करता हूँ, मैं आपसे विनती करता हूँ कि आप अमेरिका को बचाने के लिए जो भी कर सकते हैं वह करें। ग्रह को बचाने के लिए आप जो कर सकते हैं वह करें! इस अंतरिक्ष यान को, जिसे हम पृथ्वी कहते हैं, बचाएँ और इसे थोड़ा स्वच्छ, थोड़ा हरा-भरा और थोड़ा अधिक शांतिपूर्ण छोड़ दें। अभी तक अजन्मी पीढ़ियों के लिए। हमारा एक मिशन और आदेश है कि हम वहाँ जाएँ, एक भूमिका निभाएँ और इसे इतनी अच्छी तरह से निभाएँ जैसा डॉ. किंग कहेंगे, कि कोई और इसे बेहतर ढंग से नहीं निभा सकता। आप में से कुछ लोगों ने मुझे समय-समय पर यह कहते हुए सुना होगा कि मैं ग्रामीण अलबामा में एक खेत में कपास चुनते, मूँगफली इकट्ठा करते, मक्का-इकट्ठा करते हुए बड़ा हुआ हूँ।

कभी-कभी मैं बाहर काम कर रहा होता और मेरी माँ कहती, 'बेटा, तुम पिछड़ रहे हो!' आपको पकड़ने की जरूरत है। 'और मैंने कहा' यह कठिन काम है। 'और उसने कहा,' कड़ी मेहनत ने कभी किसी की जान नहीं ली। 'और मैंने कहा 'ठीक है, यह लगभग मुझे मारने वाला है!' हमें कड़ी मेहनत करने की ज़रूरत है! बहुत सा काम किया जाना है। ये स्मार्ट ग्रेजुएट हमारा नेतृत्व करेंगे। हाई स्कूल के छात्र हमारा नेतृत्व करते हैं, और दोस्तों, मैं आपसे कहता हूँ, यदि आप सावधान नहीं हैं, तो महिलाएँ हमारा नेतृत्व करेंगी! यह मेरा विश्वास है, यह अमेरिका के एक यात्री के रूप में मेरी भावना है कि महिलाएँ और युवा लोग, हाई स्कूल के छात्र, प्राथमिक विद्यालय के छात्र और कॉलेज के छात्र अहिंसक क्रांति के हिस्से के रूप में हमारा नेतृत्व करेंगे। हम एक ऐसा अमेरिका बनाएँगे जो बेहतर होगा, थोड़ा अधिक मानवीय होगा, और कोई भी इससे इनकार नहीं कर सकता।

मैं स्नातकों से बस एक या दो शब्द कहना चाहता हूँ। एक गहरी साँस लें और सब कुछ अंदर ले लें। लेकिन कल, मुझे आशा है कि आप अपनी आस्तीन ऊपर चढ़ा लेंगे, क्योंकि दुनिया प्रतिभाशाली पुरुषों और महिलाओं का इंतजार कर रही है जो इसे एक बेहतर जगह पर ले जाएँगे। 60 के दशक के दौरान, लोग सचमुच अपने शरीर को दाँव पर लगा देते थे! कई लोग इस विश्वविद्यालय से आए थे, कैम्ब्रिज से आए थे, बोस्टन से आए थे, पूरे राज्य से और पूरे अमेरिका से आए थे। बस कुछ साल पहले के बारे में सोचें कि वर्जीनिया, उत्तरी कैरोलिना, दक्षिण कैरोलिना, जॉर्जिया, अलबामा, मिसिसिपी के माध्यम से यात्रा करने के लिए वाशिंगटन, डी.सी. से रवाना होने वाली ग्रेहाउंड व्यवसाय या ट्रेलवे बस में काले लोगों और गोरे लोगों को एक साथ नहीं बैठाया जा सकता था। हम संयुक्त राज्य सुप्रीम कोर्ट के एक फैसले का परीक्षण करने के लिए न्यू ऑरलियन्स जा रहे थे। हमें पीटा गया, गिरफ्तार किया गया और हममें से 400 से अधिक लोगों को जेल में डाल दिया गया। मेरा सीट मेट कनेक्टिकट

का एक युवा श्वेत सज्जन था। हम दक्षिण कैरोलिना के एक छोटे से शहर में पहुँचे। हमें पीटा गया, लहूलुहान कर दिया गया। लेकिन कई साल बाद, और यह मई 1961 था, उसी साल बराक ओबामा का जन्म हुआ था, लेकिन कई साल बाद, हमें पीटने वाले लोगों में से एक वाशिंगटन में मेरे कार्यालय में आया। इसकी जानकारी उन्हें एक स्थानीय पत्रकार से मिली। उनकी उम्र 70 साल के आसपास थी, उनका बेटा 40 साल की उम्र में उनके साथ आया था। उन्होंने कहा, 'श्रीमान लुईस, मैं उन लोगों में से एक हूँ जिन्होंने तुम्हें हराया। अपने सीटमेट को मारो, मैं क्लान का सदस्य रहा हूँ।' उन्होंने कहा, क्या आप मुझे माफ़ करेंगे? मुझे आपसे क्षमा माँगनी है। क्या आप मेरी माफ़ी स्वीकार करेंगे?

उनका बेटा रोने लगा, और मैंने कहा, 'मैंने तुम्हें माफ कर दिया है। मैं आपकी माफ़ी स्वीकार करता हूँ।' उन्होंने मुझे गले लगाया, मैंने भी उन्हें वापस गले लगाया और मैं उनके साथ रोया। यह शांति के मार्ग की शक्ति है, प्रेम की शक्ति है, यह अहिंसा के दर्शन और अनुशासन की शक्ति है। हमें एक ऐसा समाज बनाने की ज़रूरत है जहाँ हम मेल-मिलाप कर सकें और नफरत का बोझ छोड़ सकें क्योंकि नफरत सहन करने के लिए बहुत भारी बोझ है।

पचास साल पहले जिस व्यक्ति की मैं प्रशंसा करता था, वह व्यक्ति जो मेरे भाई जैसा था, मार्टिन लूथर किंग जूनियर, को हमसे छीन लिया गया था। जब हमने सुना कि डॉ. किंग की हत्या कर दी गई है तो मैं इंडियानापोलिस, में बॉबी कैनेडी के साथ प्रचार कर रहा था। मैं रोया। रोना बंद कर दिया और मैंने खुद से कहा-'हमारे पास अभी भी बॉबी है।' दो महीने बाद बॉबी कैनेडी चले गए। और मैं कुछ और रोया। आज हमें अपने आँसुओं से छुटकारा पाना है और निराश नहीं होना है। और निराशा के सागर में मत खो जाओ। हमें आशावान रहना होगा और विश्वास बनाए रखना होगा और जहाज को पलटना होगा। हम यह कर सकते हैं और हमें यह करना ही चाहिए!

यहाँ हार्वर्ड में आपको अच्छी तरह से प्रशिक्षित किया गया है। आपको नेतृत्व करना होगा। आपको वहाँ जाना होगा और जैसा कि डॉ. किंग कहते, हेडलाइट बनें, टेललाइट नहीं! यह आपका समय है, यह आपकी पुकार है। 60 के दशक के दौरान मुझे कुछ बार गिरफ्तार किया गया, 40 बार! और चूँकि मैं पाँच बार कांग्रेस में रह चुका हूँ! और मैं शायद फिर से गिरफ्तार होने जा रहा हूँ! मेरा दर्शन बहुत सरल है, जब आप कुछ ऐसा देखें जो सही नहीं है, उचित नहीं है, तो खड़े हो जाएँ! कुछ कहो! बोलो और बोलो!

अलबामा में जब मैं एक युवा लड़के के रूप में बड़ा हो रहा था, मेरी सेनेवा नाम की एक चाची थीं और मेरी चाची एक शॉटगन हाउस में रहती थीं। यहाँ हार्वर्ड में आपने कभी शॉटगन हाउस नहीं देखा, आप यह भी नहीं जानते कि मैं किस बारे में बात कर रहा हूँ। एक रास्ता अंदर की ओर, एक रास्ता बाहर। शॉटगन हाउस क्या है? पुराना घर, मिट्टी का आँगन। कभी-कभी मेरी चाची सेनेवा सप्ताहांत, शुक्रवार या शनिवार को बाहर जाती थीं, और डॉगवुड शाखाओं से बनी ब्रश झाड़ू लेती थीं और यार्ड को बहुत साफ करती थीं। एक शनिवार की दोपहर मेरे कुछ भाई-बहन, चचेरे भाई-बहन, हममें से लगभग 15 छोटे बच्चे उसके मिट्टी के आँगन में खेल रहे थे और एक अविश्वसनीय तूफ़ान आया। हवा चलने लगी, गड़गड़ाहट होने लगी और बिजली चमकने लगी और चाची ने हमें अंदर आने के लिए कहा। हम अंदर चले गए। हवा चलती रही, गड़गड़ाहट होती रही, बिजली चमकती रही और बारिश होती रही। और हम खूब रोये। और पुराने घर का एक कोना उठा हुआ नजर आया, और मेरी चाची अपने शरीर के साथ घर को सँभालने के लिए उस तरफ चली गईं। जब दूसरा कोना ऊपर उठता दिखाई दिया तो उसने हमें उस कोने तक चलने के लिए कहा, हम हवा के साथ चलने वाले बच्चे थे, लेकिन हमने कभी भी घर नहीं छोड़ा! मैं आप में से प्रत्येक से, हम में से प्रत्येक से कहता हूँ, हवा चल सकती है, गरज के साथ बिजली चमक सकती है, और बारिश किसी पुराने घर पर गिर सकती है। इसे हार्वर्ड का घर कहें, इसे कैम्ब्रिज का घर कहें, इसे बोस्टन का घर कहें, इसे वाशिंगटन का घर कहें, या अलबामा या जॉर्जिया का घर कहें, हम सभी एक ही घर में रहते हैं। हम सभी को अपना छोटा सा घर सँभाल कर रखना चाहिए। तो मैं तुमसे कहता हूँ हवा के साथ चलो। इतिहास की भावना को अपना मार्गदर्शक बनने दें। आपका बहुत-बहुत धन्यवाद।

(प्रस्तुत भाषण हार्वर्ड में स्नातक कोर्स प्रारंभ होते समय 2018 में दिया गया।)

एच.आई.जी., 72,
हाउसिंग बोर्ड कॉलोनी, बागमुगलिया,
एक्सटेंशन, भोपाल-462043 (म.प्र.)
मो.- 9425079134

शिक्षा और सृजनशीलता का सहसंबंध

– उमरावसिंह चौधरी

देवी अहिल्या विश्वविद्यालय इंदौर के कुलपति रहे। चिंतक, विचारक, आपने एक सौ पचास अंग्रेजी कविताओं का अनुसृजन 'समय के हृदय की धड़कन' नाम से किया।

व्यापक अर्थ में शिक्षा मानव–पूँजी या मानव संसाधन विकसित करने का समर्थ साधन है। यह आर्थिक–सामाजिक विकास को गति देती है और उससे स्वयं भी लाभान्वित होती है। शिक्षा महत्त्वपूर्ण सामाजिक प्रक्रिया और व्यवस्था है, जो छात्रों की जन्मजात क्षमताओं और अर्जित योग्यताओं को अभिव्यक्त करने के लिए अवसर और आधार प्रदान करती है। शिक्षक इस प्रक्रिया का सूत्रधार, नायक और निदेशक होता है। इसलिए कहा जाता है कि जैसा शिक्षक होगा, वैसी ही शिक्षा भी होगी। शिक्षा से संबंधित समितियों और आयोगों के प्रतिवेदनों में भी दोहराया गया है कि राष्ट्र की नियति का निर्माण वहाँ की शिक्षा संस्थाओं की कक्षाओं में होता है। इस कथन का आशय भी यही है कि जिस राष्ट्र की जैसी शिक्षा होगी, वैसा ही उस राष्ट्र का स्वरूप भी होगा। शिक्षा के स्तर या गुणवत्ता में गिरावट आने पर राष्ट्र के स्तर और गुणवत्ता में भी धीरे–धीरे गिरावट या कमजोरी प्रकट होने लगती है।

अध्यापन : आत्मा का दर्पण :– अध्यापन चुनौती भरा कार्य है। इसलिए विशेषज्ञों द्वारा स्वीकार किया गया है कि अध्यापन सभी कलाओं से कठिन और विज्ञानों से गहन है, क्योंकि इसका माध्यम मिट्टी, पत्थर, कागज या केनवास नहीं, बल्कि जीता–जागता परिवर्तनशील मस्तिष्क है। जिस प्रकार 'मोनालिसा' को चिर नवीन और रहस्यमयी मुस्कान देने वाले महान कलाकार विरले ही होते हैं, वैसे ही महान शिक्षक भी। अध्यापन एक सृजन है, जीवन है। एक बेजान मंत्र या खोखला फार्मूला नहीं। वह तो प्रत्येक निष्ठावान अध्यापक या आचार्य का अपना अद्भुत आविष्कार और उसकी आत्मा का दर्पण है।

बच्चों और किशोरों का एक बाल सुलभ 'विश्व–बोध' होता है, जिसे शिक्षकों को बड़ी सूक्ष्मता और संवेदनशीलता से समझना और अनुभव करना चाहिए। मानव–आत्मा के कुछ विशिष्ट गुणों के बिना कोई व्यक्ति सच्चा शिक्षक (चरित्र–निर्माता) नहीं बन सकता। इन गुणों में सर्वोपरि है बच्चे के आंतरिक जगत या उसके मन की दुनिया में पैठने की क्षमता। सच्चा शिक्षक बनने के लिए मनुष्य में जो आत्मिक स्तर होना चाहिए, उसका निर्णायक लक्षण है : छात्रों से गहरा लगाव, उनमें आत्मीय अनुरक्ति। मनुष्य का कई बार अपनी भावनाओं पर वश नहीं चलता, किन्तु शिक्षक के लिये अपनी भावनाओं को घड़ना और उन्हें परिष्कृत करना ही 'उच्च आत्मिक स्तर' या 'उच्च शिक्षण संस्कृति' है। जिस प्रकार अच्छे अध्यापक के लिए छात्र और विषय को भली–भाँति जानना जरूरी है, उसी तरह अपने आपको भी। क्योंकि 'हम जो हैं, वही तो पढ़ाते हैं।' अध्यापन एक मानवीय प्रक्रिया है। अंत:करण ही उसका उद्गम है। जब कोई सच्चा शिक्षक पढ़ाता है तो वह अपनी आत्मिक स्थिति को अपने छात्रों पर प्रक्षेपित करता है। 'पढ़ाने के साहस' का आशय है अपने हृदय को उस सीमा तक खुला रखना जब तक कि उसमें और अधिक स्वीकारने और सँभाले रखने की शक्ति नहीं रहती। जो अध्यापक अपने अध्यापन पर जितना आसक्त होता है, उतना ही उसका अध्यापन मार्मिक और तलस्पर्शी बनता है। प्रौद्योगिकी का शिक्षा में चाहे जितना प्रवेश हो जाए, अध्यापन में शिक्षक के व्यक्तित्व के 'अभिनयात्मक प्रभाव' और जीवंत स्पर्श की आवश्यकता बनी रहेगी।

सृजनशीतला का अर्थ और आयाम :– प्रत्येक देश का भाग्य और भविष्य वहाँ के सृजनशील व्यक्तियों पर निर्भर करता है, क्योंकि सृजनशीलता एक 'नव नवोन्मेषशालिनी प्रज्ञा' है। इसे 'बहुदिश–चिन्तन' (Divergent Thinking) भी कहा जाता है। पहले यह माना जाता या कि प्रतिभा तो हीरे के समान होती है, इसलिये वह चमके बिना नहीं रह सकती। दूसरी मान्यता यह कि प्रतिभा एक आयामी होती है, उसके विविध प्रकार नहीं होते। तीसरी मान्यता यह थी कि प्रतिभा का संबंध कुलीन और आभिजात्य वर्ग से होता है। अब ये तीनों मान्यताएँ ध्वस्त हो चुकी हैं। सृजनात्मक प्रतिभा पर हुए अध्ययन और अनुसंधान यह बताते हैं कि अनुकूल और प्रेरक परिस्थितियों में प्रतिभा फलती–फूलती है, तथा प्रतिकूल परिस्थितियों में मुरझा जाती है। अपवाद स्वरूप, कुछ ऐसी अदम्य और संकल्पवान प्रतिभाएँ होती हैं, जो बाधाओं और दमनकारी परिवेश को झेल कर भी अभिव्यक्त हो जाती हैं। फिर भी, सृजनशील प्रतिभाओं को उनके हाल पर या भाग्य भरोसे नहीं छोड़ा जा सकता। इसलिये, सृजनात्मक प्रतिभा की खोज, पहचान और विकास का कार्य हर समाज को यथाशीघ्र शुरू कर देना चाहिए। इतिहास साक्षी है कि प्रतिभा और सृजनशीलता की उपेक्षा करने वाली सभ्यताओं का पतन होते देर नहीं लगती। किसी छात्र में सृजनशीलता की उपस्थिति मात्र सब कुछ नहीं

होती। सृजनशीलता की अभिव्यक्ति और उपयोग के लिये छात्र में जिज्ञासा, लगन और श्रमशीलता का होना भी आवश्यक है।

सृजनशीलता अपेक्षाकृत नया क्षेत्र है। इस पर उतनी जानकारी उपलब्ध नहीं है, जितनी कि बुद्धि और उपलब्धि पर। सृजनशीलता के अध्ययन और विकास की ओर ध्यान आकर्षित करने का श्रेय प्रोफेसर गिलफोर्ड को जाता है। वर्ष 1950 में, अमेरिकी मनोविज्ञान संघ के सम्मेलन में दिया गया उनका भाषण, सृजनशीलता में शैक्षिक दुनिया की रुचि उत्पन्न करने वाला प्रमुख उद्दीपन था। तब से अब तक, इस पर हजारों अध्ययन किए जा चुके हैं, लेकिन आज भी सृजनशीलता की सर्वमान्य परिभाषा सामने नहीं आई है। जितने अधिक विचार, अध्ययन और प्रयोग होते जा रहे हैं, उतने ही नए दृष्टिकोण और आयाम सृजनशीलता के साथ जुड़ते जा रहे हैं। यह सिलसिला उचित ही है, क्योंकि सृजनशीलता की प्रकृति में ही गतिशीलता, प्रवाह और नवीनता निहित है।

गिल्फोर्ड की राय में, सृजनशीलता अधिकांश में, 'बहुदिश-चिन्तन' और रूपांतरण की योग्यता है। सृजनशीलता को व्यक्तित्व की विशिष्टता के रूप में भी देखा जाता है। चूँकि व्यक्तित्व वातावरण में ही रूपायित होता है, इसलिए सृजनशीलता को परिभाषित करने के लिये व्यक्तित्व, प्रतिफल एवं प्रक्रिया के साथ-साथ पर्यावरण का भी विचार किया जाना चाहिए। संक्षेप में सृजनशीलता एक उच्च मानसिक प्रक्रिया है, जो नए विचार, प्रारूप या संबंध पैदा करने के लिए पर्यावरण को पुनर्संयोजित या संपादित करती है। यह कल्पना का अनुप्रयोग करके मौलिकता-प्रधान कार्य संपन्न करने की ऐसी क्षमता है, जो भूतकालीन अनुभवों की पुनर्रचना करके सब कुछ नया और उपयोगी बना देती है। सृजनशीलता एक बहुमुखी योग्यता है, जो न्यूनाधिक मात्रा में सभी जगह व्याप्त है। इसके मुख्य घटक है प्रवाह, लचीलापन, जिज्ञासा और अध्यवसाय। बालक द्वारा स्वप्रेरणा से बनाए जाने वाले चित्र से लगाकार अंतरिक्ष-उपग्रह के निर्माण तक के कार्य में सृजनशीलता के कई स्तर होते हैं। विशेषज्ञों ने उच्च और निम्न स्तर की सृजनशीलता की बात कही है। वस्तु या विचार के अर्थ में एक सार्थक नया आयाम जोड़ना उच्च स्तरीय सृजनशीलता है। प्रस्तुत वस्तु या विचार का रूपान्तरण मात्र करना निम्न स्तरीय सृजनशीलता कहलाती है। व्यापक और सीमित सृजनशीलता नामक दो अन्य स्तर भी गिनाए गए हैं। प्रथम कोटि में मनुष्य का संपूर्ण विकास समाहित है, जबकि द्वितीय में किसी एक विशेष क्षेत्र जैसे, संगीत या चित्रकला में किया गया सृजन सम्मिलित है। टैलर ने सृजनशीलता की पाँच कोटियाँ गिनाई है अभिव्यक्ति प्रधान, उत्पादन प्रधान, आविष्कार प्रधान, नवाचार प्रधान और आकस्मिकता प्रधान। जब कभी कुछ लोग सृजनशीलता पर चर्चा करते हैं तो अधिकतर उनका आशय आकस्मिकता प्रधान और आकस्मिकता प्रधान सृजनशीलता से ही होता है। सर्जनशीलता के क्षेत्र में अनुसंधान करने वाले व्यक्तियों का अभिमत है कि सृजनशील होने के लिये लोगों में इष्टतम बुद्धि-लब्धि 120 होना आवश्यक है। यह तथ्य दर्शाता है कि बुद्धि (Intelligence) और सृजनशीलता रक्त-संबंधी (Blood Relative) हैं, तथा सृजनात्मक सोच-विचार बुद्धि का सर्वोच्च प्रकार है।

कल्पना और सृजनशीलता :- कल्पना और सृजनशीलता एक समान नहीं होती हैं। सृजन की लगन कल्पना को दूसरे स्तर पर ले जाती है। सृजनशीलता मौलिक विचार उत्पन्न करने की प्रक्रिया है। कल्पना बिल्कुल आंतरिक या अदृश्य हो सकती है। आप बिना जाने-पहचाने दिनभर कल्पनाशील रह सकते हैं, लेकिन आप यह नहीं कह सकते कि बिना कुछ भिन्न या नया किए ही कोई व्यक्ति सृजनशील हो सकता है। कुछ नया या मौलिक करने के लिए हमें अपनी कल्पनाशक्ति को क्रियाशील बनाना पड़ता है। नई समस्याओं और प्रश्नों के समाधान या उत्तर खोजने में कल्पना सहायक और उपयोगी होती है। कल्पना का अनुप्रयोग ही सृजनशीलता है। ऐसा इसलिए, क्योंकि मनुष्य की बुद्धि इतनी विविधतापूर्ण है कि लोग अनेक असाधारण तरीकों से सृजनशील हो सकते हैं। बुद्धि का उच्चतम रूप ही सृजनात्मक चिन्तन कहलाता है। बुद्धि की गतिशील प्रकृति का सृजनशीलता सुदृढ़ उदाहरण है।

युवावस्था को वर्षों से नहीं, उसकी सृजन करने की उमंग और नव निर्माण करने के आवेश से परिभाषित किया जाता है। स्कूल में पढ़ाई के दौरान छात्र अपनी डेस्क पर सिर झुकाए रहते हैं, मगर विश्वविद्यालय या कॉलेज में आकर उन्हें खड़े होकर, आसपास देखते हुए, शंकाएँ और प्रश्न उठाने चाहिए। युवा लोग कल्पनाशील होते हैं। यदि अनुशासन द्वारा उनकी कल्पना शक्ति को सुदृढ़ कर दिया जाए तो कल्पना की ऊर्जा को जीवन भर सुरक्षित रखा जा सकता है। जो कल्पनाशील होते हैं उनका अनुभव कम होता है और जो अनुभवी होते हैं उनकी कल्पना शक्ति कमजोर होती है। कॉलेज और विश्वविद्यालयों का काम है कल्पना और अनुभव को भलीभाँति जोड़ना और मिलाना। अधिकांश लोगों की कल्पना शुतुरमुर्ग के पंखों की तरह होती है जो दौड़ने में सहायक हैं, उड़ने में नहीं।

सामूहिक सृजनशीलता :- सृजनशील चिन्तन की गतिशील प्रकृति को अकेले व्यक्तियों के काम में तो देखा ही जा सकता है, लेकिन यह 'सर्जक समूह' के कामकाज में और अधिक स्पष्टता से दिखाई देती है। समूह की सफलता का कारण उसके सदस्यों का एक जैसा काम करना नहीं है, बल्कि उनके बिलकुल अलग-अलग होने का परिणाम है। समूह के सदस्यों की प्रतिभा, रुचियाँ और आवाज पृथक-पृथक होती है। उन्होंने साथ-साथ समूह में काम करने की प्रक्रिया खोज ली है, जहाँ उनकी भिन्नता एक-दूसरे को उत्प्रेरित करके उनसे ऐसा अभिनव सृजन करवा लेती है, जिसे वे व्यक्तिश: नहीं कर पाते। इस अर्थ में सृजनशीलता हमारे अपने वैयक्तिक स्रोतों का ही उपयोग नहीं करती बल्कि अन्य लोगों के विचार और मूल्यों का लाभ भी उठाती है। इस तरह, समूह में सृजनशीलता की शक्ति और अधिक बढ़ जाती है।

याहू की सी.ई.ओ. मारिसा मेयर का कहना है कि यदि आप नवाचार (Innovation) चाहते हैं तो उसके लिये अन्तर-क्रिया या इंटरेक्शन आवश्यक है। इसलिये उन्होंने घर के बजाए ऑफिस में काम करने को बढ़ावा दिया है। समस्याओं के समाधान और सृजनात्मक नवीन विचार प्राप्त करने के लिए मनुष्यों से समूह में चर्चा या विचार-विमर्श कराना बेहतर होता है। सामूहिक बैठकों और नए लोगों से आकस्मिक मुलाकात एवं चर्चाएँ निर्णय लेने और किसी मुद्दे-मसले पर अन्तर्दृष्टि प्राप्त करने में सहायक होती है। शोधाध्ययन से यह भी उजागर हुआ है कि घर से काम करने वाले कर्मचारी अधिक उत्पादक होते हैं, लेकिन वे ऑफिस में काम करने वालों से कम नवाचारी होते हैं। अधिकांश सृजनशील समूह अपना सामाजिक समय दो प्रकार की गतिविधियों में विभाजित करते हैं। एक प्रकार की गतिविधि 'एक्सप्लोरिंग' है, जिसमें समूह से बाहर के व्यक्तियों से अन्तर-क्रिया होती है और दूसरे प्रकार की गतिविधि 'इंगेजिंग' है, जिसमें समूह के भीतर के सदस्यों में अन्तर-क्रिया सम्पन्न होती है।

शिक्षा और सृजनशीलता का सह-संबंध :- हमारी शिक्षा प्रणाली उस स्टीम इंजिन के समान है, जिसकी भाप तेजी से उड़ रही है। यह मस्तिष्क-विमुख और सृजन अवरोधी है। यह अधिकतर पुस्तक केन्द्रित, वर्णनात्मक और संवाद-विहीन है। कक्षाएँ पाठ सुनने के कामरे हो गए हैं। छात्र तथ्यों के निष्क्रिय उपभोक्ता बना दिये गए हैं। विज्ञान और गणित का अध्ययन-अध्यापन भी सही उत्तर लाने का खेल हो गया है। प्रश्न की प्रक्रिया की उपेक्षा की जा रही है और उत्तर या प्रतिफल पर अधिक जोर दिया जा रहा है। आज्ञाकारिता, वर्जना और प्रतिबंध का बोलवाला है। वही थोड़ा और या 'पहले से बेहतर' से आगे बढ़कर 'पहले से भिन्न' करने का साहस नहीं जुटाया जा रहा है। पिछले 50-60 वर्षों में कक्षाध्यापन पर किए गए शोधकार्यों का निष्कर्ष है कि कक्षाओं में छात्रों की पहलवृति, साहसिकता और सृजनशीलता को प्रोत्साहित और विकसित करने के बजाए उनका दमन किया जा रहा है। यह भी कहा जाने लगा है कि कक्षाएँ 'सृजनशीलता की वधशालाएँ' बना दी गई हैं।

मनुष्य के मस्तिष्क की सृजनात्मक क्षमता असीम है, लेकिन शिक्षा द्वारा उसे अभिव्यक्त करने के उपाय अत्यंत सीमित हो गए हैं। इस कारण, ज्ञान का विस्फोट होने के बाद भी मनुष्य की बुनियादी समस्याओं का समाधान नहीं हो पा रहा है। अधिगम अध्यापन में सृजनशीलता (बहुदिश चिन्तन) के प्रति उदासीनता और भविष्योन्मुखता की कमी ही इस स्थिति के लिए जिम्मेदार है। अच्छी और उदार शिक्षा-प्रक्रिया की परिणति नई पीढ़ी में 'खुला मस्तिष्क और विशाल हृदय' विकसित करने में होनी चाहिए। इस लक्ष्य को प्राप्त करने में दाएँ मस्तिष्क (Right Hemisphere) की सक्रियता आवश्यक होती है, क्योंकि मस्तिष्क का यही भाग 'सृजनशीलता का स्रोत' होता है। भौतिक विज्ञान के क्षेत्र में किए गए शोधकार्यों के परिणाम दर्शाते हैं कि मस्तिष्क को 'ग्राउंड स्टेट' या 'सुपर-कूलिंग' की स्थिति में लाकर उससे अकूत सृजन कराया जा सकता है।

मस्तिष्क के बाएँ और दाएँ गोलार्द्ध की प्रकृति भिन्न-भिन्न हैं। बायाँ गोलार्द्ध शरीर के दाहिने भाग को नियंत्रित करता है और दाहिना गोलार्द्ध बाँए भाग को। सभ्यता के इतिहास में मानव जाति के अधिकांश क्रियाकलाप ऐसे रहे हैं कि उनसे केवल वाम गोलार्द्ध ही सक्रिय होता रहा। दक्षिण गोलार्द्ध को सक्रिय करने वाली गतिविधियाँ समाज और शिक्षा में अत्यधिक सीमित रहीं। धर्म, सरकार और विचारधारा जानने और प्रश्न करने के बजाए मानने की सत्ताएँ बना दी गईं। विचारों के क्षेत्र में एक लंबे दमन और परावलंबन के कारण मानव मस्तिष्क एक दिशा में सोचते रहने के लिये अनुबंधित हो गया। अर्थात् बाएँ मस्तिष्क की एक दिशा में क्रमिक चरणों में सोचने की प्रवृति को खूब प्रोत्साहन मिला। आज भी मस्तिष्क का बायाँ हिस्सा तर्क, भाषा-कौशल, विश्लेषण और क्रमबद्ध चिन्तन का प्रतिनिधित्व करता है। दूसरी ओर, दाहिना मस्तिष्क सृजन, बहुदिश-चिन्तन और संश्लेषण का केन्द्र है। लेकिन परिवार, समाज और शिक्षालयों में इन मानसिक क्रियाओं को सम्यक प्रश्रय और प्रोत्साहन नहीं मिलने से मस्तिष्क का महत्त्वपूर्ण दाहिना भाग लगभग सुप्त और शिथिल पड़ा रहता है। प्रश्न, संवाद और वाद-प्रतिवाद जैसी गतिविधियों को कक्षाओं में स्थान और सम्मान देकर दाएँ मस्तिष्क को जगाया जा सकता है। तभी छात्रों की सृजनशीलता को अभिव्यक्ति के द्वार तक पहुँचा कर उन्हें नवीनता और मौलिकता के वाहक बनाया जा सकेगा। ब्रिटिश विद्वान ए.एन. व्हाइटहेड ने ठीक ही कहा था कि 'यांत्रिक बारंबारता के विरुद्ध आक्रामकता ही जीवन है।' सृजनशीलता 'विनाश' (Destruction) का विलोम ही नहीं, बल्कि संरक्षण और संवेदनशीलता का पर्याय भी है।

सृजनशीलता मानसिक जीवन का यौनावेश है। यह जिज्ञासा, उच्च बुद्धि और कल्पनाशीलता का संगम है। छात्र कल्पनाशील और शिक्षक अनुभवी होते हैं। विश्वविद्यालय का काम कल्पना और ज्ञान को जोड़कर उन्हें भली-भाँति मिलाना है, ताकि शिक्षकों का ज्ञान कल्पना से आलोकित हो सके तथा छात्रों की कल्पना अनुभव से समृद्ध और अनुशासित। नए-नए विचार प्रत्येक व्यक्ति के मस्तिष्क में आते और जाते रहते हैं। सृजनशील वही व्यक्ति हो सकता है, जो आने वाले चंचल विचारों पर ध्यान देकर उन्हें पोषित और पल्लवित करता है। सृजनशीलता बंदरगाह नहीं, एक निरंतर चलने वाली जल-यात्रा है। एक जुस्तजू है, एक तलब और तलाश है -

'तलाश और तलब में जो लिज्जत मिली है,
दुआ कर रहा हूँ कि मंजिल न आए।'

के. 404, शालीमार टाउनशिप,
ए. बी. रोड, इंदौर-10 (म.प्र.)
मो.- 9826803229

नवगीत की नवता : पारंपरिक संदर्भ

-कृष्णगोपाल मिश्र

जन्म – 01 जून 1962।
शिक्षा – एम.ए., पी.एचडी।
रचनाएँ – पच्चीस पुस्तकें प्रकाशित।
सम्मान – एम.ए, हिंदी में स्वर्ण पदक, अनेक संस्थाओं द्वारा सम्मानित।

नवीनता सृष्टि के श्रृंगार का आधार है। वनस्पतियाँ प्रतिवर्ष पतझर के बहाने अपने पीत पत्र त्यागकर वसन्तोत्सव मनाते हुए नवीनता का प्रतिसंधान करती हैं। नदियाँ वर्षा ऋतु में प्लावन प्रवाह द्वारा स्वयं को निर्मल बनाकर नवीन सौन्दर्य संधारित करती हैं और सर्प केंचुल त्यागकर नई दीप्ति, नई स्फूर्ति अर्जित करता है। सृष्टि में नवता की इसी व्याप्ति को जयशंकर प्रसाद 'कामायनी' के श्रद्धासर्ग में रेखांकित करते हैं —

'प्रकृति के यौवन का श्रृंगार / करेंगे कभी न बासी फूल,
मिलेंगे वे जाकर अति शीघ्र / आह उत्सुकहै उनको धूला
पुरातनता का यह निर्मोक / सहन करती न प्रकृति पल एक;
नित्य नूतनता का आनंद / किये है परिवर्तन में टेक।'

सृष्टि में संव्याप्त नवीनता का यह विधान दैनन्दिन जीवन में, कला-साहित्य और संस्कृति आदि अन्य विभिन्न जीवन संदर्भों में भी प्रभावशील होता है। मनुष्य भोजन, वस्त्रधारण, श्रृंगार आदि नित्य-क्रियाओं में भी नवीनता और परिवर्तन का प्रयत्न करता है। जीवन और जगत में सक्रिय यही नूतनता जनित परिवर्तन भाषा-साहित्य आदि में भी नवता का हेतु है। नवगीत की नवता भी इसी का सुफल है। जगत में सनातन प्रवाह के साथ नवीनता का विकास नितान्त अद्भुत और आश्चर्यजनक है। बीज से वृक्ष और वृक्ष से नए बीज का प्रादुर्भाव इस तथ्य का साक्षी है। आज जो प्रत्यक्ष है वह केवल आज की सृष्टि नहीं है, उसके मूल में उसके उद्भव का वह कारक तत्त्व अप्रत्यक्ष रूप से विद्यमान है जिसके कारण आज वह दृश्यमान है। आज का युवा अपने प्रौढ़ पिता एवं वृद्ध पितामह से भिन्न है, नवीन है किन्तु उसके अस्तित्व में, उसके डी. एन. ए. में वही वंश परम्परानुगत गुणसूत्र विद्यमान हैं जो उसे उसके निवर्तमान पूर्वजों से प्राप्त हुए हैं। कमल का नया ताजा फूल सृष्टि के कालक्रम में अज्ञात उसकी गुण-रचना परम्परा में अगणित वर्ष पूर्व विकसित हुए प्रथम कमल पुष्प से छिन्न नहीं है। प्राकृतिक-जीवजगत की भाँति सांस्कृतिक-साहित्यिक परम्पराएँ और मान्यताएँ भी अपना वंश-प्रवाह जारी रखती हैं। सैकड़ों-सहस्त्रों वर्ष पूर्व रचित ग्रन्थों और मानव जाति को प्रभावित एवं प्रेरित करने वाले महापुरुषों के विचारों के संदर्भ में विकसित होने वाली परवर्ती ज्ञान-परम्पराएँ भी इस तथ्य की साक्षी हैं। इस दृष्टि से गीत की वर्तमान नवता, उसका शिल्प-सौन्दर्य और भाव-सम्पदा भी गीत की आदिम परम्परा से पूर्णरूपेण छिन्न नहीं कही जा सकती। उसकी नवता सहज और स्वाभाविक है। यदि युवा में नई शक्ति, नया सौन्दर्य, नया ओज-तेज नहीं होगा; वह अपने पिता पितामह की भाँति जरा-जर्जरित होता दिखाई देगा तो उसकी अपनी पहचान कैसे बनेगी? वह चिरजीवी कैसे हो सकेगा? अत: वर्तमान प्रस्तुति में, युवा में नवता का दर्शन नितान्त आवश्यक है। नवगीत भी इसी ओर संकेत करता है। उसकी नूतनता गीत की चिर-पुरातन लौकिक-वैदिक परम्परा का अभिनव विकास है। जैसा गीत कल था! मध्यकाल अथवा उससे पूर्व के समय में या वैसा आज नहीं है और जैसा आज है, वैसा ही-ठीक वैसा ही भविष्य में नहीं रहेगा क्योंकि परिवर्तन प्रकृति का नियम भी है और नवता की उर्वर आधारभूमि भी है। वर्तमान नवगीत की नवतागत स्वीकृति का आकलन इस निकष पर किया जाना युक्तियुक्त है।

यदि कोई विज्ञान समीक्षक अथवा नवगीतकार बन्धु गीत और नवगीत में भिन्नता का प्रतिपादन करता है तो उसका आशय पिता और पुत्र के व्यक्तित्व में प्रकट भिन्नता के रूप में ग्रहण किया जाना उचित है। इसे अमान्य नहीं किया जा सकता क्योंकि पुत्र पिता का अंश, उसके द्वारा दिए गए संस्कार गुण-सूत्र आदि का संवाहक होकर भी पूर्णतया पिता की छायाप्रति नहीं है। पुत्र का पिता से भिन्न अपना रूप, आकार, रुचि, प्रवृत्ति, निर्मित, स्वतन्त्र व्यक्तित्व है। यही बात नवगीत के परिप्रेक्ष्य में भी है। नवगीत गीत-तत्वों से मुक्त नहीं है, उसे गीत-तत्वों से मुक्त होना भी नहीं चाहिए क्योंकि यदि वह नई कविता, अकविता की भाँति काव्यतत्त्वों से दूर हुआ तो अपना प्रभाव और सौन्दर्य वैसे ही खो देगा जैसे तथाकथित नई कविता ने सपाट बयानी के कारण खो दिया है। नवगीत की आस्मिता भी उसकी गीतात्मकता में ही सुरक्षित है, उससे पृथक नहीं। वस्तुत: नवगीत गीत का वंशधर है, गीत से भिन्न होकर भी गीत है। उसे दुराग्रह पूर्वक गीत से सर्वथा पृथक् प्रचारित करना वैसा ही भ्रामक और तथ्यहीन कथन है जैसा किसी पुत्र का यह कहना कि वह अपनी कुल-परम्परा से भिन्न है; अपने पिता की संतान नहीं है और 'स्वयंभू' है।

काव्य-साहित्य में नवीनता का आग्रह कोई नई बात नहीं है। वैदिक-पौराणिक आख्यानों से कथाएँ ग्रहण करके प्रत्येक युग का रचनाकार उनमें युगीन आशाओं और अपेक्षाओं का सन्निवेश कर, उन्हें नए-नए आयाम देकर मौलिक, प्रासंगिक, सरस, संदेशप्रद और नूतन बनाता रहा है। आदिकवि वाल्मीकि कृत रामायण, गोस्वामी तुलसीदास कृत 'रामचरित मानस' और मैथिली शरण गुप्त कृत 'साकेत' तीनों प्रख्यात रचनाएँ

रामकथा पर केन्द्रित हैं, तीनों में रामकथा के माध्यम से अपने समय के समाज को आदर्श व्यवस्था-संस्थापन के निर्देश हैं, किन्तु तीनों एक नहीं हैं। 'रामायण' से 'रामचरितमानस' और 'रामचरितमानस' से 'साकेत' की प्रस्तुति विशेष रूप से भिन्न एवं नवीन है। यह भिन्नता जनित नवीनता साहित्य की प्राणशक्ति है और यही प्राणशक्ति गीत से नवगीत में संचरित होकर उसे जीवन दे रही है, लोकप्रिय बना रही है। गीत की इसी अविच्छिन्न प्रवाह-परम्परा में प्रत्येक युग का गीत अपने पूर्ववर्ती स्वरूप से भिन्न और नूतन है। हिन्दी गीत यात्रा में सिद्धों के चर्यापदों से विद्यापति के गीत भिन्न हैं, विद्यापति के गीतों से कबीर, सूर, तुलसी, मीरा आदि के गीतों में पर्याप्त-भिन्नता है। भारतेन्दु युग की गीत-भंगिमा द्विवेदी युगीन गीत से भिन्न है और छायावादी युग का गीत अपने पूर्ववर्ती द्विवेदी युग के गीत से भिन्न है। भिन्नता-नवीनता के इस सनातन प्रवाह में यदि आज का गीत छायावादी गीत-रूप से पार्थक्य प्रकट करता है तो इसमें आश्चर्य ही क्या है?

यह तो साहित्य की जीवन्त परम्परा का सर्वथा सहज प्रसाद है। इस नवीनता को यदि इसके नवविकास के रूप में परम्परा से जोड़कर ग्रहण करें तो गीत-नवगीत में कोई विवाद शेष नहीं रह जाता। विवाद तब उत्पन्न होता है जब स्वयं को प्रचारित-प्रसारित और प्रतिष्ठित करने की उद्दाम लालसा यश-प्रार्थी गीतकार को नए नाम से नए आन्दोलन का जनक एवं नूतन विधासर्जक मान्य कराने के लिए प्रेरित करती है। यश प्रार्थी होना कोई बुरी बात नहीं। यश से मान की वृद्धि होती है और मान महापुरुषों का धन है—'मानो हि महतां धनम्' किन्तु अपने मानवर्धन के लिए सारस्वत-साधना के शान्त तपोवन में निराधार विवाद एवं भ्रान्तियों का कोलाहल उत्पन्न करना उचित नहीं कहा जा सकता। नवगीत के संदर्भ में प्रायोजित ऐसे विमर्श-उसे गीत से सर्वथा भिन्न नवीन विद्या के रूप में प्रतिष्ठित कराकर इस बहाने स्वयं को प्रस्थापित कराने के कूटयत्न उनके पुराधाओं की प्रतिष्ठा दूर तक प्रश्नांकित करते हैं।

आश्चर्य है साहित्य में नवीनता का आग्रह तो प्रत्येक युग में रहा किन्तु उसे पूर्व परम्परा से छिन्न दर्शाने का कोई प्रयत्न स्वतंत्रता प्राप्ति से पहले के साहित्यिक परिदृश्य में कभी नहीं हुआ। स्वतंत्रता प्राप्ति के अनन्तर साहित्य में तथाकथित नवता की ऐसी वेगवती प्रतिस्पर्धा उत्पन्न हुई कि नई कविता, नई कहानी आदि नए-नए मुहावरे सामने आए। नवगीत को गीत से, नई कहानी को कहानी से, लघुकथा को नई कहानी से अलग प्रचारित करने की भरपूर कोशिशें की गईं, की जा रहीं हैं। स्वतंत्र भारत में समष्टि से व्यष्टि की ओर लौटने की संकीर्ण प्रवृत्ति इसके लिए उत्तरदायी है। आधुनिक भारत में संयुक्त परिवार विघटित होकर एकल परिवार बने। अब एकल परिवारों में भी बच्चों को छात्रावासों में भेजकर अथवा नौकरी-व्यवसाय आदि कारणों से पति-पत्नी तक के अलग रहने से समग्र के खण्ड की स्थितियाँ बनी हैं। सामाजिक धरातल पर विघटन की इसी दृष्टि ने मनुष्य की मानसिक भावभूमि में भी एक इकाई को खण्ड-खण्ड करके देखने की प्रवृत्ति बलवती की है। साहित्य एक इकाई है। अध्ययन-अनुसंधान की दुविधा के लिए यदि उसे विभिन्न काव्यरूपों में विभक्त किया जाए तो कोई बुराई नहीं किन्तु यदि किसी एक काव्यरूप को प्रस्थापन के उद्देश्य से विखण्डित करके प्रचारित किया जाए तो इसे उचित नहीं कहा जा सकता। फूल की एक-एक पांखुरी बिखेरकर, सुगठित शरीर का अंग-प्रत्यंग अलग करके हम उसके सौन्दर्य का, उसकी शक्ति का उचित मूल्यांकन नहीं कर सकते। तथ्यपूर्ण और सही मूल्यांकन के लिए, इकाई की समग्रता पर विचार आवश्यक है। अत: यह सर्वथा रेखांकनीय है कि नवगीत का मूल्यांकन करने, उसकी नवता को समझने से पूर्व गीत की परम्परा से उसके सम्बन्ध को भी जान लिया जाए। गीत को समझे-जाने बिना नवगीत को समझने का दावा करना यात्रा में मिले किसी अनजान सहयात्री को पूर्णतया जान लेने का भ्रम पालने जैसा है। महाकवि बिल्हण ने 'विक्रमांकदेवचरित' में लिखा है कि यदि पदों के प्रयोग में शैली की प्रौढ़ता के कारण पुरानी रीति का व्यतिक्रम हो तो वह अत्यधिक प्रशंसनीय बन जाता है –

'प्रौढ़िप्रकर्षेण पुराणरीति / व्यतिक्रमः श्लाघ्यतमः पदानाम्।'

पुरानी रीति के व्यतिक्रम द्वारा नई रीति की प्रस्थापना का प्रतिभा-प्रसूत प्रयत्न नवगीत को गीत से चारुतर बना रहा है। यह चारुता तभी तक ग्राह्य हो सकती है जब तक सुविचारित हो और पुरानी रीति की शक्ति की अविवेकपूर्ण अनावश्यक उपेक्षा न करे। कहने की आवश्यकता नहीं है कि प्रयोगवादी, नई कविता, अकविता ने पुरानी रीति का अविचारित व्यतिक्रम करके कविता की प्रभावोत्पादिनी शक्ति ही छीन ली, उसे सामाजिक जीवन के केन्द्र से हटकर परिधि की ओर धकेल दिया। यह सुखद है कि नवगीतकारों ने पुरानी रीति के व्यक्तिक्रम को सही दिशा देकर गीत को गति दी है। इसीलिए गीत समीक्षा-शिविरों से अपने मरण की घोषणाएँ सुनकर भी जीवित है, समाज के केन्द्र में है। सिंधी भाषा के कवि किशनचंद 'बेबस' ने अपनी 'नवाई' शीर्षक रचना में लिखा है कि जब सच्चाई पर नवीनता का रंग चढ़ता है, उस समय मानो सोने की अँगूठी में कोई हीरा जड़ देता है। कला वही है जो नमूने में नई गठन जड़ दे परन्तु वाणी में भी प्राचीनता का पाठ पढ़ाए —

'थो सचाईअ ते नवाईअ जो जदहिं रंगु चढ़े, / सोनि मुंडीअ में तदहिं गोया को हीरो थो जड़े।
आदि हुनरु सो जो नमूने में नओं घाटु घड़े, / नौ जिबानीअ में, मगरि, पर्त पुराई पढ़े।'

नवगीत की नवता इस तथ्य की साक्षी है कि उसमें युगीन यथार्थ को कथन की नई भंगिमा में प्रकट किया है। इस कारण उसमें हीरकमणि जटित आभूषण-सी सहज आकर्षण शक्ति है। मन को बाँध लेने वाली प्रभाव सम्पन्नता है। नमूने में नई गठन के समान नवगीत कला की कसौटी पर शत-प्रतिशत खरा है किन्तु उसकी वाणी अर्थात् प्रतिपाद्य प्राचीन है। वह रूप सौन्दर्य, प्रकृति-सौन्दर्य, भाव-विचार सौन्दर्य आदि का पुरातन प्रतिपाद्य-पाथेय एवं लोक मंगलकारी संदेश लेकर नवता की दिशा में निरन्तर अग्रसर है। उसकी नवता अपनी पुरातनता की विरोधी नहीं वरन् संवाहिका है। नवगीत नए शिल्प, कलेवर में गीत के शाश्वत सनातन रूप की प्रतिष्ठा है। उसे नितान्त नवीन काव्य विधा कहना भ्रान्ति निर्मित करना है।

9 चैतन्य नगर, मालाखेड़ी रोड
नर्मदापुरम-461001 (म.प्र.)
मो.-9893189646

भारतीय सिनेमा इतिहास पर एक नजर

- अशोक कुमार

समय कुछ लोगों को कुछ बातों/चीजों का श्रेय दे देता है और क्योंकि लोग वही पढ़ते-समझते-जानते हैं इसलिए जिन लोगों को दरअसल उन चीजों का श्रेय मिलना चाहिए न उनका कहीं नाम आता है, न उन्हें लोग जानते हैं। इतिहास ऐसी विडम्बनाओं से भरा पड़ा है। थॉमस अल्वा एडिसन को बिजली के बल्ब के आविष्कार के लिए जाना जाता है जबकि लाइट का आविष्कार उससे पहले एक अंग्रेज कैमिस्ट हम्फ्री वॉल्टारिक आर्क लैंप बना कर कर चुका था (जिसके नाम से वॉल्ट प्रसिद्ध हुआ)। कारों के आविष्कार के लिए हेनरी फोर्ड का नाम आता है जबकि फोर्ड से पहले एक फ्रेंच मिलिट्री इंजीनियर निकोलस जोसफ वाष्प पावर से चलने वाली ट्राई साइकिल बहुत पहले बना चुका था। वाल्ट डिज्नी के कार्टून्स दुनिया देखती है। लेकिन क्या ये उन्होंने बनाये? डोनाल्ड डक बनाया कार्ल बार्क्स ने और मिकी माउस बनाया उब इवर्क ने। ये कहने की आवश्यकता इसलिए पड़ी क्योंकि सिनेमा के क्षेत्र में भी कई भ्रांतियाँ प्रचलित हैं। दुनिया में आम धारणा है कि चलायमान चित्रण/प्रदर्शन को ईजाद की लुमिरि ब्रदर्स ने। जबकि जर्मनी के मैक्स उससे एक साल पहले ही इस प्रकार के चित्रण और प्रोजेक्शन का प्रदर्शन कर चुके थे। हाँ ये अवश्य है कि मैक्स ने अपने ईजाद का कमर्शियल एक्सप्लोइटेशन नहीं किया जबकि लुमिरि ने किया शायद इसलिए क्रेडिट लुमिरि को जाता है। एक धारणा ये भी है कि भारत में सिनेमा के जनक दादा साहेब फाल्के हैं। हाँ, एक तरह से हैं, लेकिन सिनेमा में क्या उनसे पहले और उनके समकक्ष किसी का कोई योगदान नहीं है? और जिनका है। क्या उनको भूल जाना हमारी अक्लमंदी है?

भारत में अंग्रेजों का सबसे बड़ा साम्राज्य था। जो कुछ लन्दन में होता था वह फौरन भारत आता था। उसी के चलते 12 फरवरी 1892 को लुमिरि भाइयों ने अपने चलचित्र चित्रण/प्रदर्शन की ईजाद को पहले पेटेंट कराया और उसका शो किया लन्दन में। उसके बाद अमरीका में। उसके तुरंत बाद, जाहिर है, वे आए भारत, जहाँ उन्होंने अपने ईजाद के शो किए बम्बई में। ये शो हुआ जुलाई 1896 में। इसमें यहाँ के वे लोग शामिल हुए जो इस में रुचि रखने वाले थे या इस कला में कुछ करने के इच्छुक थे।

इस शो के फौरन बाद 1897 में ही एक प्रोफेसर स्टीवेंसन इस शो को स्टार थिएटर कलकत्ता ले गए, जहाँ इसे बहुत सराहा गया और वहीं बैठे एक उत्साही और बुद्धिमान नौजवान हीरा लाल सेन ने कुछ सीन फिल्माए और उनका प्रदर्शन किया गया 'फ्लोवर्स ऑफ पर्शिया' के नाम से। यह हुआ 1898 में। हीरा लाल सेन को बंगाल का ही नहीं बल्कि भारत का पहला फिल्म डायरेक्टर होने का दर्जा हासिल है। उसके बाद बम्बई के एच एस भाटवडेकर ने हैंगिंग गार्डन में एक कुश्ती के मैच का चित्रण कर के 1899 में बनाई 'दे रेसलर्स'। रेसलर्स भारत के किसी फिल्म मेकर की बनाई पहली स्वदेशी फिल्म मानी जाएगी। अब इसके लिए क्या किया जा सकता है कि तब तकनीक इतनी ही थी कि जब खामोश और छोटी फिल्में ही बनती थीं। बड़ी बनतीं तो शायद ये लोग बड़ी बनाते।

चलचित्रण /प्रदर्शन के बाद लुमिरि ने 'वर्कर्स लीविंग फैक्ट्री', 'टेबल्स टर्न्ड', 'जंपिंग इंटो दी ब्लैंकेट' जैसी कुछ फिल्में बनायीं लेकन उनका मकसद फिल्म मेकिंग से अपने इक्विपमेंट बेचना ज्यादा था। शुरुआत हो चुकी थी। दुनिया भर में इस ईजाद ने तहलका मचा रखा था। कला ने तमाम तरह से तमाम तरह के लोगों को झखझोर रखा था, इसलिए इस क्षेत्र में नई-नई तरह से नई-नई उन्नति होती रही। बीसवीं शताब्दी का पहला दशक सिनेमा में-दुनिया भर में- तमाम तरह के नए लोग और नए प्रयोग ले कर आया। अभी तक फिल्में एक शॉट की ही होती थीं। यानी एक बार कैमरे का शटर खोला जो शूट हुआ बस वही फिल्म हो गई। लेकिन 1901 आते-आते स्थिति थोड़ी बदली और अंग्रेजी फिल्म 'अटैक ऑन ए चाइना मिशन' में शॉट्स को जोड़ कर उनके बीच कोई ताल मेल रखा गया। यानी कहानी कहने वाली फिल्मों की तरफ बात आने लगी। 1903 आते-आते एडविन पोर्टर ने बना डाली 'दी ग्रेट ट्रैन रॉबरी' जिसमें शॉट्स को जोड़ कर कहानी की तरह पिरोया गया था। 'द ग्रेट ट्रेन रॉबरी' ने उस उदाहरणात्मक रूप में काम किया जिसने फिल्म माध्यम को बड़े पैमाने पर लोकप्रियता भी दिलाई और सिनेमा को कहानी कहने का माध्यम बनाने की दिशा भी दे दी।

भारत में ज्यादातर फिल्में या तो उस दौरान बाहर से आती रहीं या जो बनती रहीं वे छोटी और कम बजट वाली थीं। लेकिन कहानी हमारा स्ट्रांग पॉइंट रहा है। भारत कहानी प्रधान, संगीत प्रधान देश है। यहाँ हर चीज उत्सव होती है। इसलिए जब कहानी वाली फिल्म दुनिया में आ चुकीं तो यहाँ उस दिशा में भी यहाँ थोड़ा-थोड़ा काम होता रहा, लेकिन यहाँ की सभी फिल्में तबतक खामोश और छोटी ही होती थीं।

भारत में सबसे पहली कहानी फिल्म–जिसे फीचर फिल्म कहते हैं– बनाई दादा साहेब तोरने ने–'श्री पुंडलिक'–1912 में। हालाँकि कुछ अति बुद्धिमान लोगों का कहना है वह कोई फीचर फिल्म नहीं थी क्योंकि यह एक स्टेज नाटक का चित्रण था जिसे एक अंग्रेज कैमरामैन ने शूट किया था और इस फिल्म को लन्दन में प्रोसेस कराया गया था। इसी के बाद आये दादा फाल्के। धुंध राज गोविन्द फाल्के ने साल भर चित्रकारी सीखी थी, कुछ दिन तैल पेंटिंग सीखी थी और घरेलू फोटोग्राफी कर के ये अपना गुजारा चलाते थे। फिर इनकी मुलाकात एक जर्मन कार्ल हर्ट्ज से हुई जिसने इन्हें ट्रिक फोटोग्राफी सिखाई। 1906 की बात है उन्होंने एक फिल्म 'लाइफ ऑफ क्राइस्ट' परदे पर देखी और सोचने लगे 'अगर किसी फिल्म में राम और कृष्ण को दिखाया जाये तो कैसा हो!' तब से इनके मन फिल्म बनाने का उत्साह जगा। 1912 में उन्होंने अपनी 'फाल्के फिल्म्स कंपनी' की शुरुआत की। और अपनी पत्नी और बड़े लड़के की मदद से शुरू की फिल्म 'राजा हरिश्चंद्र'। 'राजा हरिश्चंद्र' काफी चली और उसके बाद फाल्के दादा ने 'लंका दहन', 'सत्यवान सावित्री' जैसी 27 फिल्में और बनायीं। तो दादा साहेब धुंध राज फाल्के का योगदान फिल्मों में अतुलनीय है। और इसलिए भी कि उन्होंने बगैर किसी विलायती की मदद के अपने ही लोगों के साथ स्वयं के बूते पर फिल्में बनाईं। फिल्म क्योंकि भारत में ज्यादतर लोग फीचर फिल्म को समझते/मानते हैं इसलिए भी उन्हें फिल्मों के 'पितामह' का दर्जा दिया गया है। फिल्मों में इनका योगदान है लेकिन ये भी मानना पड़ेगा कि कितने ही लोग हैं जिनका भारत में फिल्म को डेवलप करने में योगदान है। कुछ का नाम है, कुछ इतिहास में खो गए हैं। कितनों को याद होगा कि आर वेंकैय्या ने मद्रास में 1912 में पहला (गेटी) थिएटर बनाया था? स्वामिकाननु विन्सेंट ने दक्षिणभारत में टेंट सिनेमा का कांसेप्ट डेवलप किया था? 1917 में आर नटराज मुदलियार मद्रास की पहली खामोश तमिल भाषा की फीचर फिल्म 'कीचक वधम' बना चुके थे?

1920 से जरा आगे बढ़ें तो वो दौर आया जब फिल्में पौराणिक कहानियों से जरा सा हट कर सामाजिक समस्याओं को भी अपनी कहानियों में जोड़ने लगीं उदहारण के लिए 'हमारा हिंदुस्तान', 'अनाथ बेटी', तथा मुस्लिम विषय जैसे 'लैला मजनू' और मुगल दरबार से जुड़ीं कहानियाँ।

फिल्में तब तक बगैर संवादों के होती थीं मगर 'खामोश नहीं होती थीं क्योंकि थिएटर में परदे पर चित्र दिखाने के साथ साथ संगीत/आर्केस्ट्रा भी चलता था। हर फिल्म का पार्श्व संगीत अलग होता था, लाइव होता था और वो हॉल में बजाया जाता था। तबला, हारमोनियम, पियानो वायलिन इत्यादि वहीं स्टेज के नीचे रखे और बजाए जाते थे। दुनिया में पहली फिल्म जो साउण्ड के साथ बनाई गई वो थी अल–जोंसन की 'दी जाज सिंगर' और इसके साथ ही अक्टूबर 1927 में साइलेंट एरा समाप्त हो गया। भारत में 'टॉकी' फिल्म आते–आते चार साल और लग गए। पहलीटॉकी फिल्म भारत में आयी 'आलम–आरा' (शीर्षक का मतलब था दुनिया की रौशनी) 14 मार्च 1931 में। इसके निर्माता निर्देशक थे अर्देशिर ईरानी। अर्देशिर ईरानी सिनेमेटोग्राफर, राइटर, डाइरेक्टर। प्रोड्यूसर थे जो बम्बई में एक कार डिस्ट्रीब्यूटर भी थे और ग्रामाफोन कंपनी के मालिक भी थे। फिल्म की भाषा उर्दू इसलिए रखी गई क्योंकि उस समय यही सबसे ज्यादा समझी जाने वाली जबान हुआ करती थी। ईरानी साहेब ने हिंदी/उर्दू ही नहीं तेलुगु, जर्मन, इन्डोनेशियाई और पर्शियन भाषा में भी फिल्में बनाईं। फिल्म जोसफ डेविड के उर्दू पारसी नाटक पर आधारित थी जो के दो रानियों की एक–दूसरे से जलन पर आधारित एक कॉस्ट्यूम ड्रामा था, इसमें एक गाना भी रखा गया था जिसे उस समय के अदाकार /गायक डब्ल्यू एम. खान ने या भी था और यह उन पर फिल्माया भी गया था। गाने के बोल थे 'देदे खुदा के नाम पर प्यारे'। गाना और फिल्म दोनों रिलीज होते साथ तुरंत 'हिट' हो गए। इसके बाद पारसी थिएटर, उर्दू संवाद और गाने फिल्मों में आम बात हो गई। लेकिन इस फिल्म से एक और बात ये हुई कि बुद्धिजीवी और सिनेमा के शौकीन लोग फिल्मों में साउंड को अच्छा नहीं समझे। उनका कहना था कि फिल्मों में संवाद और गाने डाल कर सिनेमा कला को बर्बाद किया जा रहा है। फिल्म एक चित्र मध्यम है और उसे वैसे ही रहने देना चाहिए।

इसके बाद एक और बात जो हुई वो ये थी कि अब तक भारतीय फिल्में अधिकतर पौराणिक–धार्मिक कहानियों पर आधारित होती थीं, अब ये नाटकों और कहानियाँ पर बनने लगीं। अब धार्मिक बातों से ज्यादा मनोरंजन पर गैर होने लगा और लोगों को पसंद आने लगा। इसके बाद के दौर में सबसे ज्यादा योगदान किया इंग्लैंड से आए दम्पति हिमांशु रॉय और उनकी पत्नी अदाकारा देविका रानी और उनसे जुड़े लोगों की कहानी लम्बी भी है और बेहद दिलचस्प भी। वो बात फिर कभी।

1930–1 भारतीय सिनेमा क्षेत्र में वो दौर था जब तमाम घटनाक्रम एक साथ हुए। साउंड आ चुकी थी और सब अपनी–अपनी तरह से इसे अपनी फिल्मों में देने की कोशिश में थे। फिल्म मेकिंग के स्टूडियोज आ रहे थे, दामले और फत्तेलाल का प्रभात (पूना), हिमांशु रॉय का बॉम्बे टॉकीज (बम्बई), वी शांताराम का राजकमल (बम्बई), कलकत्ता में न्यू टॉकीज, मद्रास में जैमिनी और वोहिनी सब के सब एक से बढ़ कर एक फिल्म बना रहे थे, मनोरंजन की भरमार थी और इन सब में खास बात थी इनके गाने और संगीत। संगीत तब फिल्मों की खास बात होती थी और 'हिट' होने का 'फार्मूला' होता था। फिल्मों में कहानी की अहमियत होती थी और संगीतकार और गायक महत्त्वपूर्ण होते थे।

919, बी–5, ऐशिआना टाउन
थड़ा, दिल्ली रीजन–301018 (राज.)
मो.– 9892250853

हिंदी का पहला कवि जगनिक

- वीरेन्द्र 'निर्झर'

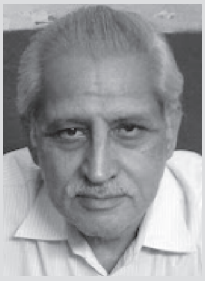

जन्म - 15 अक्टूबर 1940।
जन्मस्थान - महोबा (उ.प्र.)।
शिक्षा - एम.ए., पीएच.डी.।
रचनाएँ - एक दर्जन से अधिक पुस्तकें प्रकाशित।
सम्मान - अभिनव शब्द शिल्पी सम्मान सहित अनेक सम्मान।

महाराज परमर्दिदेव स्वयं कवि थे। उन्होंने स्वयं रचनाएँ लिखीं और दूसरों को लिखने की प्रेरणा दी। 'उन्होंने अनेक विद्वानों को राजाश्रय प्रदान किया तथा विभिन्न पदवियों से सम्मानित किया। उनकी राज सभा संस्कृत और लोकभाषा के भद्र कवियों से मंडित थी। उस राजसभा में जहाँ गदाधर, वत्सराज, कवीन्द्र देवधर जैसे संस्कृत के महापंडितों का सम्मान था, वहीं जगनिक जैसे महाकवि को भी भरपूर आदर प्राप्त था। यह हिन्दी के विकास का काल था, जो जनभाषा के रूप में चंदेलराज में पैर फैला रही थी। अपने को विकसित और स्थापित करने में लगी थी। बारहवीं शती के पूर्व से ही इस क्षेत्र में लोकगीतों, आख्यानक और गाथाओं की परम्परा आगे बढ़ते हुए जनकवि जगनिक के आल्हा के रूप में बारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जनभावना की संपोषक बनी। आल्हा के रचयिता महाकवि जगनिक परमर्दिदेव के राज्याश्रित होकर भी जनभावनाओं से गहरे तक जुड़े थे। आल्हा में आल्हा-ऊदल की वीरता, पराक्रम और देशप्रेम की उत्कट भावना का लोकजीवी रूप विद्यमान है। यह वीरता का पर्याय है, किन्तु इसकी मूल प्रति प्राप्त न होने से उसके प्रामाणिक रूप, रचनाकार और ऐतिहासिक संदर्भों का मूल्यांकन प्रश्नचिह्नों से घिरा हुआ है। इसी का परिणाम है कि कुछ विद्वान 'महोबा रासो' या 'परमाल रासो' को ही 'आल्हा' मान बैठे हैं और जगनिक को उसका रचयिता बताते हैं। कुछ विद्वान आल्हा को परमाल रासो के मूलरूप का विकास मानते हैं तो कुछ विद्वान इसे लोकगेय रासो काव्य।'

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का मानना है कि यदि यह ग्रंथ साहित्य प्रबन्ध पद्धति पर लिखा गया होता तो कहीं न कहीं इसकी प्रति सुरक्षित मिलती। आल्हाखंड की मूलप्रति उपलब्ध न होने से आल्हखंड के मूल स्वरूप पर जहाँ विद्वानों में अलग-अलग प्रकार की भ्रान्तियाँ पनप रही हैं, वहीं उसके छांदसिक विधान और कथ्य को लेकर भी विद्वानों के अलग-अलग विचार भी देखने को मिलते हैं। डॉ. बटेकृष्ण आल्हा के मौखिक परम्परा में होने के कारण उसके वास्तविक रचयिता पर भी प्रश्न उठाते हैं और आल्हा के छन्द पर भी। विद्वानों की यह द्विविधा बहुत कुछ गाथा मान लेने के कारण है। क्योंकि पश्चिमी विद्वान राबर्ट ग्रेब्स, सिजविक, गूमर आदि लोकगाथा की पहली विशेषता यही मानते हैं कि उसका रचयिता अज्ञात होता है, तो कुछ विद्वान उसे लोकरचित कहकर रचयिता की संज्ञा ही समाप्त कर देते हैं।'

बुंदेलखंड में प्राचीनकाल से यह लोक-मान्यता है कि आल्हा का रचयिता जगनिक कवि ही है। परमाल रासो (1526 ई.) आल्हा राइछो। (17 वीं शती) दलपत रायसो (1700 ई.) जगतराज दिग्विजय (1722-23 ई.) वीरविलास (1741 ई.) आल्हा (19 वीं शती उत्तरार्द्ध) पृथ्वीराज रासो तिलक (1919 ई.) आदि सभी ग्रंथ आल्हा के रचयिता जगनिक के नाम की साक्षी देते हैं। जगनिक के जीवनवृत्त आदि के विषय में भी ग्रंथों में बहुत कुछ सामग्री उपलब्ध है, पर इस विषय में अब तक हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों ने खोज की चिन्ता नहीं की। क्योंकि कुछ विद्वान तो आल्हाखंड के रचनाकार को ही नहीं मानते (पाश्चात्य प्रभाव से) और दूसरे जो जगनिक के अस्तित्व को स्वीकारते हैं वे जगनिक, जगनायक, जगनसिंह, जयानक, जगमणि, जननायक आदि के फेर में ही पड़े हुए हैं। वस्तुत: प्रामाणिक सामग्री का अभाव तथा भ्रान्तियों के साथ-साथ आचार्य मनीषियों से आगे निकलने की पहल ही किसी ने नहीं की। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पं. अयोध्या प्रसाद उपाध्याय, डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ. राजकुमार वर्मा आदि साहित्य के इतिहासकारों ने केवल इतना ही उल्लेख किया है कि जगनिक कालिंजर नरेश परमाल के दरबार में एक भाट था, जिसने प्रसिद्ध

वीर आल्हा-ऊदल के चरित्र का वर्णन किया है। मैं इसी बात को आगे बढ़ाते हुए जगनिक के जीवन वृत्त के धुँधलके को छाँटना चाहूँगा।

जगनिक के विषय में उसकी जाति और वंश को लेकर बहुत मतभेद हैं। कुछ विद्वान और साक्ष्य उसे क्षत्रिय वंश का मानते हैं तो अन्य प्रमाण उसे चारण अथवा भाट वंश का सिद्ध करते हैं। क्षत्रिय वंश का मानने वाले साक्ष्यों में भविष्य पुराण प्रमुख है। इसमें मल्हना के आदेश पर आल्हा-ऊदल को मनाने के लिए जिस व्यक्ति को कन्नौज भेजा जाता है वह महाराज परमाल की बहिन परिमला का पुत्र गौतम वंशीय क्षत्रिय कुमार जननायक कहा गया है। यह कच्छप देश का रहने वाला है। लोकनाथ द्विवेदी सिलाकारी भी इसे महाराज परमाल की बहिन का पुत्र मानते हैं। बहिन का नाम नागमती दिया है। जार्ज ग्रियर्सन ने भी जगनिक को परमर्दिदेव का भांजा माना है और बहिन का नाम नागमती दिया है, किन्तु साक्ष्य का उल्लेख नहीं किया गया।

सर चार्ल्स इलियट द्वारा संकलित करवाए गए आल्हाखंड तथा अन्य नवल किशोर बुक डिपो, लखनऊ, बाबू बैजनाथ प्रसाद बुकसेलर, बनारस तथा खेमराज प्रेस, बम्बई से प्रकाशित आल्हाखंडों में भी जगनिक के लिए 'मैंने जौन चंदेली क्यार' पंक्ति बार-बार दुहराई गई है। केशवचन्द्र मिश्र ने भी जगनिक को परमर्दिदेव का भानजा ही माना है। 'खेमराज प्रेस मुंबई से प्रकाशित आल्हाखंड की भूमिका में जगनिक को परमाल की पुत्री चंद्रावलि जो बौरीगढ़ में कुमार इन्द्रसेन को ब्याही थी, का पुत्र बताया गया है।' इस रूप में जगनिक आल्हा ऊदल के भांजे सिद्ध होते हैं। शैदा कृत आल्हाखंड में मल्हना को जगनिक की नानी बताया गया है। डॉ. नर्मदाप्रसाद गुप्त जी भी इस बात को स्वीकार करते हैं पर भांजे जगन सिंह और जगनिक को अलग-अलग व्यक्ति मानते हैं। इस दृष्टि से जगनसिंह परमर्दिदेव के भानजे हों या उनके नाती (लड़की के लड़के) वे क्षत्रिय ही हैं। डॉ. महेन्द्र प्रतापसिंह ने जगनिक को पँवार वंशीय क्षत्रिय माना है और खैरागढ़ तहसील की जगनेर या जगनेरी का शासक बताया है।

विद्वानों का दूसरा वर्ग जगनिक को ब्राह्मणवंशीय भाट निरूपित करता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पं. अयोध्यासिंह उपाध्याय, डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ. त्रिभुवन सिंह आदि उन्हें भाट मानते हैं। 'डॉ. शंभुनाथ सिंह अनुश्रुति के अनुसार भाट मानते हैं, तो डॉ. बटेकृष्ण भी महोबा खंड के अनुसार जगनिक को भाट कहते हैं।' डॉ. रामकुमार वर्मा, डॉ. गोपाल शर्मा, 'दिनेश', डॉ. उदयनारायण तिवारी ने उन्हें कवि या दरबारी कवि कहा है 'पर प्रकारांतर से वे भी भाट ही निरूपित करते हैं। भाट से सभी का तात्पर्य यहाँ ग्रंथ या गीत कवित्त-आदि के लेखक से है। इस प्रकार अधिकांश प्रभृत विद्वानों ने जगनिक को भाट कहा है। पृथ्वीराज रासो के महोबा समय' में तथा डॉ. श्याम सुंदर दास द्वारा सम्पादित परमाल रासो में भी जगनिक को भाट कहा गया है। आल्हाखंड की बनाफरी वर्णना में भी आल्हा को मनाने के लिए जगनिक भाट के जाने की चर्चा है। इसे आल्हा गायकों ने बिरतिया राव कहा है। बिरतिया अर्थात् विरद वर्णन करने वाले भाट या चारण, जो महाराज परमाल के दरबार में था और जिसने आल्हा-ऊदल के चरित्र का वर्णन किया है। पर यह विरद वर्णन करने वाला भाट नहीं बल्कि राजकवि था। 'डॉ. टीकम सिंह तोमर ने भी वीर काव्य में जगनिक को राजकवि माना है। बुंदेलखण्ड में प्राचीन काल से ही लोक मान्यता है कि आल्हा का रचयिता जगनिक कवि है। जोगीदास कृत दलपति रासो, जगतराज दिग्विजय तथा वीर विलास ग्रंथ में भी जगनिक को भाट ही कहा गया है, जो 'बैस बत्त अनुरत्त' अर्थात् व्यास वृत्ति या काव्य वृत्ति से जुड़ा हुआ था, कवि था। डॉ. मोतीलाल मेनारिया ने राजस्थानी भाषा साहित्य में स्पष्ट किया है कि व्यास जाति राजस्थान में ब्राह्मण जाति के अंतर्गत मानी जाती है।' बुंदेली में यह शब्द बैस हो गया है।

डॉ. केशवचन्द्र मिश्र ने जगनिक को संस्कृत कवि जयानक से जोड़ दिया है, तो सिलाकारी जी ने जगनिक के रूपांतरित सभी नामों को एक मान लिया है। यद्यपि परमाल रासो में छांदसिक आवश्यकता के अनुसार जगनिक के अनेक नामों का प्रयोग हुआ है, पर जगनिक और जगनसिंह को एक मान लेने से विभ्रम उत्पन्न हुआ है। डॉ. नर्मदा प्रसाद गुप्त जगनसिंह को परमाल का भानजा और जगनिक को भाट कवि मानते हैं। बुन्देली (बनाफरी) वर्णना में दोनों को अलग-अलग माना गया है। अंतिम युद्ध में जगनसिंह स्वयं युद्ध में सम्मिलित होने तथा जगनिक को युद्ध से अलग रह कर प्रशस्ति लेखन का आग्रह करता है। वह कहता है-

'जगनायक ने घोड़े को सजाया और कवि जगनिक से कहा।
कवि तुम लिखियो जूझ हमारी तुमको नहीं जूझ सैं काम।।
आल्हा आवै उन्हें बतावो कैसे जूझे उदयसिंह राय।
लोथ की रक्षा तुम्हरे भरोसे मैं तो चलो जूझ के काज।।'

और फिर 'जगन कह्यो करि ग्रंथ'। उक्त संदर्भों से स्पष्ट है कि जगनसिंह और जगनिक अलग-अलग व्यक्तित्व हैं। यद्यपि दोनों नामों में कोई कहीं भी प्रयुक्त हुआ है पर ये दोनों नाम अलग-अलग हैं।

डॉ. नर्मदा प्रसाद गुप्त ने अल्हा-ऊदल को मनाने के महत्तर कार्य के लिए जगनिक भाट की पुष्टि में जो तर्क प्रस्तुत किया है वह महत्त्वपूर्ण है। जगनिक इस कार्य को जिस विद्वत्ता और वाक्चातुर्य से पूरा कर सकता था वह जगनसिंह के बूते का नहीं था। अत: जगनिक भाट ही आल्हा को मनाने के लिए भेजा जाता है। परमाल रासो में कहा गया है 'जगनिक मंत्रन कील कर लाहै तुरत लिवाय।' वह कवि था, मामा था और माता के संबन्ध से आल्हा-ऊदल के लिए सम्मान का पात्र भी। जगनिक के निवास के विषय में भी अलग-अलग मत हैं। कुछ लोग उन्हें चन्देरी का मानते हैं, तो डॉ. महेन्द्र प्रताप सिंह उन्हें आगरा जिले के खैरागढ़ तहसील के जगनेरी का निवासी। आल्हाखंड में भी उन्हें जगनेरी ग्राम का सामंत कहा गया है। इसे बुलाने के लिए मल्हना अपनी दासी को भेजती है, जिससे लगता है कि जगनेरी महोबा के निकट कोई मुहल्ला या ग्राम होगा। कुछ लोग उन्हें हटा के निकट साकोरी ग्राम से संबंधित बताते हैं तो कुछ लोगों ने उन्हें अरगल का निवासी लिखा है। महोबा का बिहारीलाल भट्ट का परिवार अपने को जगनिक का वंशज बताता है, तो विकीपीडिया में इन्हें जुझोतिया नायक परिवार जन्मा कहा गया है। परमाल रासो में उन्हें ग्राम घटहरी का निवासी बताया गया है। देवै भी इसी ग्राम की थी। पंक्तियाँ हैं-

'ग्राम घटहरी घट धरयों
द्वै दुर्गा हो आन।
जेठी देवै कुँअरि है
लहुरी श्री जसखान।। आल्ह उद्द था कोख से
मारुन भीम समान। भैरव श्री जसखान के
भये भूप मलखान।। जगनिक ताही ग्राम को
बैस वृत्त अनुरत्त। स्वामि धर्म हित तात सों
करौ दिवल दे मत्त।।'

घटहरी में आज भी जगधर और देवे तालाब हैं और वहाँ पहाड़ के ऊपर ऊदल की छटी के नाम से गुफा है, जहाँ फुलहरा आदि टाँगे जाते हैं। वहाँ के एक अल्हैत श्यामलाल ने जगधर को जगनिक का पिता और मादन को उसकी माता बताया था, पर परमाल रासो में उसे मादन सुत कहा गया है। 'धन्य भाग चौहान तुम्हारे तिन प्रताप मादन सुत मारे।' इसी संदर्भ से जगनिक आल्हा-ऊदल के मामा लगते थे।

जगनिक के जन्म और काव्यकाल का निर्धारण भी कठिन है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने जगनिक का काव्य काल 1173 ई. या 1230 वि. माना है, जो उचित नहीं है। जगनिक परमर्दिदेव के राजकवि थे और परमर्दिका शासन काल 1162 ई. से 1203 तक माना गया है। अतएव जगनिक भी इसीकाल में राजकवि रहा होगा। चंदेलों और चौहानों का युद्ध काल मदनपुर लेख के अनुसार 1182 ई. में हुआ था। उसी के उपरान्त आल्हा की रचना हुई होगी। क्योंकि आल्हाखंड की यही एक प्रमुख घटना है, दूसरी महोबा या बैरागढ़ युद्ध का काल एक वर्ष बाद का लोक में मान्य है। परमाल से कुतुबुद्दीन एबक का युद्ध 1202 ई. में हुआ था। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी इन बीस वर्षों के भीतर ही कभी जगनिक का ओजपूर्ण काव्य लिखा गया होगा मानते हैं। परंतु आल्हा में इसका कोई उल्लेख नहीं है अपितु 1182 तथा 1202 ई. के बीच में यह रचना हुई होगी। डॉ. ग्रियर्सन ने आल्हा का रचनाकाल 1191 ई. माना है। इसके पहले भी जगनिक ने कुछ लिखा होगा। आल्हाखण्ड एक बड़ी रचना है जिसका काव्य चक्र परमाल और पृथ्वीराज के युद्ध पर केन्द्रित है। अन्य लड़ाइयाँ प्रसंग से जुड़कर लिखी गई होंगी पर सभी नहीं। डॉ. नर्मदा प्रसाद गुप्त का मानना है कि जगनिक 20-25 वर्ष पूर्व से सृजनरत रहे होंगे अर्थात् 1165 ई. या उससे कुछ आगे पीछे। 1203 के युद्ध के संकेत आल्हा में नहीं मिलने से ऐसा लगता है जैसे या तो वे उस समय कहीं चले गए थे या इस युद्ध में मारे गए। पृथ्वीराज चौहान 1193 के युद्ध में मारा गया अपितु आल्हा के लिखने का काल 1182 से 1193 के बीच होना चाहिए।'

पृथ्वीराज से युद्ध के समय जगनिक की उम्र बावन वर्ष के आसपास थी। पंक्ति है-'उम्मर बावन वरस रन बाल तरुन सम सोई / जा सह अरि चंदेल कव जित्ति गयव नहि कोय।' इससे जगनिक का जन्म सन 1130-31 के निकट होना चाहिए। जगनिक की विद्वत्ता आदि पर परमाल रासो से ज्ञात होता है कि वे छ:-आठ माह सम्भवत: अध्ययन हेतु संदीपनि आश्रम में रहे थे। पंक्ति है-'अर्ध वर्ष उज्जैन रहि, संदीपन स्थान' वे विद्वान के साथ ही काव्य कला निपुण भी थे। संस्कृत के भी विद्वान थे पर लोकभाषा पर उनका

अपना अधिकार था। वे जननायक थे। इससे भी उसकी प्रतिनिधित्व क्षमता और लोक नेतृत्व का पता चलता है। 'वे रहे मंत्रवादी हमेस, दशरथ्थ संग जीते सुदेस।' उनकी वीरता और सलाह को वरीयता दी जाती थी। 'जब वे बोलते थे-उच्चरिय मंत्र जगनिक्क राय, सब नीति निपुण जानौ उपाय।' से उनकी नीति निपुणता और विद्वत्ता झलकती थी। जगनिक राजकवि थे उनका सम्मान था। इसलिए जब वे महाराज जैचन्द से मिलने गए तो जयचन्द्र ने उनका राजकीय सम्मान किया 'दये दस ग्राम अघात लिखाय, समप्पिय भट्ट को पंगुरराय' धन रत्न आदि तो दिए ही।

इसी प्रकार लाखन जब महोबा में जगनिक से मिलने जाते हैं तो जगनिक भी उन्हें ऐसा सम्मानित करते हैं जिससे महोबा में जगनिक के महत्त्व और प्रतिष्ठा का पता चलता है। चन्दवरदायी महाराज पृथ्वीराज के राजकवि थे पर जगनिक राजकवि होने के साथ-साथ जनकवि भी था। मल्हना द्वारा कन्नोज भेजे जाने पर वह आल्हा-ऊदल का पक्ष लेता है, जन भावना का पक्ष लेता है, पर समय की स्थिति को भाँपते हुए आल्हा-ऊदल को मनाने के लिए जाता भी है।

जगनिक ने परमाल रासो नहीं लिखा बल्कि जनप्रिय आल्हा-ऊदल के चरित्र का गान किया है। उन्होंने अपना यह काव्य उस समय की साहित्यिक परम्परा में न लिखते हुए लोक सिद्ध दोहा छन्द में लिखा था। जो समाष्टक ताल मात्रा में सहज ही परिवर्तित करके गाया जाता था। यही बाद में गायन परम्परा से मात्रिक परम्परा में स्थिर होकर आल्हा छन्द बना। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने तुलसीदास द्वारा इस छन्द को उपयोग न करने तथा बटेकृष्ण जी द्वारा छन्दशास्त्र में इसकी अनुपस्थिति दिखा कर इसे आधुनिक करार दिया है। किन्तु मेरा मानना है कि यह छन्द गोस्वामी जी के पूर्व से उपस्थित है। संत सुन्दरदास जी ने अलैया छन्द के रूप में सुन्दर विलास में इसे प्रयुक्त किया है। उदाहरणार्थ दो पंक्तियाँ देखें -

'अंधा तीन लोक को देखै, बहिरा सुनै बहुत बिध नाद।
नकटा बास कमल की लेवै, गूँगा करै बहुत संवाद।।'

सं. 1606 वि. के बीकानेर नरेश पृथ्वीराज राठौर के बेलि क्रिस्न रुकमणी री का अंतिम दोहा भी देखें -

बरसि अचल गुण अँग ससि संवति तवियों जस करि श्री भरतार।
करि श्रवणे दिन राति कंठ कर। पामें स्त्री फल भगति अपार।'

जगनिक ने यह काव्य दोहा के पुराने रूप 16-11, 16-13 के आधार पर लिखा था जो समाष्टक लय प्रवाही था। इस पर मेरा अलग से लेख भी है। जगनिक हिन्दी का प्रथम कवि था। हिन्दी के प्रथम कवि को लेकर साहित्य के इतिहासकारों में बहुत मतभेद हैं। कुछ विद्वान सं. 770 के पुष्य कवि को हिन्दी का पहला कवि मानते हैं तो राहुल जी अपभ्रंश के कवि सरहपा को, जो सं. 827 वि. के हैं। डॉ. रामकुमार वर्मा, आ. रामचन्द्र शुक्ल तथा हजारी प्रसाद द्विवेदी ने प्रथम कवि पर स्पष्ट निर्णय ही नहीं लिया। डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त ने भरतेश्वर बाहुबली रास (शालिभद्र सूरि) को पहला कवि माना है, जो गुर्जर अपभ्रंश की रचना है। आश्चर्य है कि इतिहासकार और समीक्षक प्रथम कवि को सिद्ध करने के लिए यहाँ-वहाँ हाथ मारते हैं, जब कि यह निश्चित है कि हिन्दी भाषा का उद्भव मध्य देश में हुआ था और हिन्दी का साहित्य यहाँ ही पहले रचा गया था। गुजरात आदि पर उसका प्रभाव तो बहुत बाद की घटना है। अब तक जितनी रचनाओं को प्राथमिकता दी गई है वे या तो अपभ्रंश की हैं या उनकी भाषा पर स्पष्ट निर्णय नहीं लिए गए। लेकिन आल्हाखंड की भाषा के विषय में सभी इतिहासकार और भाषाविद एकमत हैं कि वह लोकभाषा में रचित प्रबंध काव्य है। डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी का कथन है कि 'चंदेल राजाओं में परमर्दि या परमाल (1165-1203) का भी देशीभाषा से प्रेम था। इन्हीं के दरबारी आल्हा-ऊदल का चरित काव्य आल्हखंड है।' अन्यान्य साहित्य को धर्म संप्रदायों के सुगठन, सामाजिक, राजनैतिक जागरूकता, सुरक्षात्मक दृढ़ता, राजकीय संरक्षण तथा बाह्य आक्रमणों के परिमित प्रभाव ने आदिकालीन साहित्य की सुरक्षा की पर इससे मध्यदेश वंचित रहा। परिणामत: आल्हा की 34 मूलप्रति सुरक्षित नहीं मिलती, पर वह मध्यदेशीय लोकभाषा में रचित हिन्दी का प्राचीनतम ग्रंथ है अपितु भले ही उसका मूल रूप अप्राप्य हो उसे हिन्दी का पहला ग्रंथ मानने और मध्यदेशीय लोकभाषा के महत्त्वपूर्ण कवि जगनिक को हिन्दी का प्रथम कवि मानने में कोई बाधा नहीं होनी चाहिए।

एम. बी. 120, न्यू इंदिरा कालोनी,
पार्ट-बी, पानी की टंकी के पास,
बुरहानपुर-450331 (म.प्र.)
मो. - 9425951297

प्राच्यवाद और हिंदी साहित्य में इतिहास-बोध का विकास

- प्रभात कुमार मिश्र

जन्म स्थान - दरभंगा (बिहार)।
शिक्षा - एम.ए., एम.फिल., पीएच.डी.।
रचनाएँ - चार पुस्तकें प्रकाशित।

प्राच्यवाद पूरब के समाजों, उनकी संस्कृतियों, भाषाओं आदि का पश्चिम के विद्वानों द्वारा किया गया अध्ययन है। इसे पश्चिमी दुनिया में लेखकों, कलाकारों एवं डिजाइनरों द्वारा पूरबिया संस्कृति के अनुकरण या चित्रण के बतौर भी समझा गया है। पहले वाले अर्थ में प्राच्यवाद पद बहुत हद तक नकारात्मक संदर्भ रखता है। नकारात्मक इसलिए कि प्राय: इसे अठारहवीं और उन्नीसवीं सदी के यूरोपीय साम्राज्यवाद के दौर में निहित उद्देश्यों से पश्चिमी लोगों द्वारा अध्ययन के बहाने पूरब की मनचाही निर्मिति से जोड़ा गया है। हालाँकि उत्तर औपनिवेशिक अकादमिक जगत में अब इस शब्द का अर्थ पूरब की मनचाही निर्मिति से नहीं लिया जा रहा और ऐसा समझने को पुराना चलन बताया जा रहा है।

एडवर्ड सईद की किताब 'ओरिएण्टलिज्म' (1978) से शुरू प्राच्यवाद से सम्बन्धित विवादों की भी किताब के ही समानान्तर एक लम्बी परम्परा रही है। समानान्तर इसलिए कि खुद सईद ने 1995 में अपनी किताब में 'आफ्टर वर्ड्स' लिखकर अपने ऊपर लगे आरोपों की सफाई भी दी है। एडवर्ड सईद तुलनात्मक साहित्य के मान्य अध्येता रहे हैं। अपने विचारों के माध्यम से सईद ने साहित्य को अन्तरावलम्बी अनुशासनों के आलोक में देखे जाने का प्रस्ताव करते हुए साहित्य की सामाजिक-राजनीतिक भूमिका को प्रमुखता प्रदान किया है। सईद ने एक बुद्धिधर्मी की संवादी भूमिका को निभाते हुए अपनी इस किताब में प्राच्यवाद के माध्यम से पूरब के बारे में पश्चिम द्वारा गढ़े गए मिथों के छल को उजागर करके पूरब के उपनिवेशीकृत मस्तिष्क को मुक्त और स्वायत्त बनाने की वैचारिकी दी तथा सांस्कृतिक साम्राज्यवाद के खतरे के प्रति आगाह किया है। दूसरी तरफ हम यह भी पाते हैं कि सईद की इस किताब के छपने के बाद से ही यह शब्द सामान्य व्यवहार में 'नकारात्मक आशय' का प्रतीक हो गया है। इसका कारण यह है कि सईद के समूचे विमर्श में विवाद और आलोचना के अनेक संदर्भ मौजूद हैं। वस्तुत: सईद ने अपने अरब के अनुभवों और अध्ययनों से प्राप्त निष्कर्षों का सामान्यीकरण करके उसे समूचे पूरब का निष्कर्ष बना दिया है। अपने प्राच्यवाद की निर्धारित परिभाषा के दायरे का अतिक्रमण करने वाली बातों की उन्होंने उपेक्षा कर दी और प्राच्यवाद को एक नकारात्मक श्रेणी में विकसित कर दिया। विद्वानों ने गौर किया है कि सईद ने अधिकांशत: प्राच्यवाद से जुड़ी हुई अतिशयोक्तियों, नस्लवाद और शत्रुभाव पर ही जोर दिया है और प्राच्यवाद के तमाम वैदुष्यमूलक और मानवतावादी पक्षों की उपेक्षा की है। भारतीय सिद्धांतकार एजाज अहमद ने अपनी किताब 'इन थियरी' में सईद की किताब को गंभीर गल्तियों वाली किताब कहा है और सईद की आलोचना करते हुए यह बात रेखांकित की है कि सईद ने उपनिवेश से पीड़ित लोगों की प्रतिक्रिया की चर्चा नहीं की है कि किस प्रकार उन्होंने अपने बारे में गढ़ी गई पश्चिम की धारणाओं को स्वीकारा या फिर उनका प्रतिकार किया। इतिहासकार इरफान हबीब ने अपने आलेख 'इन डिफेन्स ऑफ ओरिएण्टलिज्म' (सोशल सांइटिस्ट, जनवरी-फरवरी 2005) में इस बात की चर्चा की है कि सईद प्राच्यवादी ज्ञान के एक बेहद महत्त्वपूर्ण पहलू को बेहिचक खारिज कर देते हैं और वह है हमारे ज्ञान के विस्तार में लगातार विकसित हो रहे जटिल वैज्ञानिक पद्धतियों का उपयोग। इरफान हबीब ने दिखाया है कि किस प्रकार सईद खुद यह स्वीकार करते हैं कि प्राच्यवाद के दायरे में उन अनेक विद्वानों द्वारा किए गए कार्य सम्मिलित थे जिन्होंने सामग्रियों का संपादन और अनुवाद, व्याकरणों का सूत्रीकरण, शब्दकोशों का निर्माण और मृत या विस्मृत हो चुके कालावधियों को पुनर्जीवित किया और साथ ही प्रमाणित किए जा सकने वाले वस्तुनिष्ठ ज्ञान प्राप्त करने की पद्धति का विकास किया था। इरफान हबीब के अनुसार सईद यह नहीं देख पाते कि ये सारे कार्य अतीत और वर्तमान को लेकर हमारी बुनियादी धारणाओं को बदलते हैं। जो समाज पहले अपरिवर्तनशील या ठहरे हुए बंद से माने जाते थे वे प्राच्यविदों के इन पुरातात्विक खोजों, स्रोतों के गहन अध्ययनों व व्यापक फील्ड-वर्क के बाद परिवर्तनशील व खुले हुए साबित हुए।

यदि हम भारत के संदर्भ में सईद की निष्पत्तियों पर विचार करें तो मामला और उलझ जाता है। भारत के संदर्भ में प्राच्यवाद का काल सामान्यतया 1774 से 1835 तक माना जाता रहा है यानी कलकत्ता में रॉयल एशियाटिक सोसाइटी की स्थापना से लेकर मैकाले की शिक्षा नीति के आरम्भ तक (द्रष्टव्य 'ब्रिटिश ओरिएण्टलिज्म एण्ड बंगाल रेनेसां', डेविड कॉफ)। सईद की अवधारणा स्वीकारते हुए अगर हम भारत से सम्बन्धित बाद के भी समूचे पश्चिमी अध्ययन को ध्यान में रखें तो भी निष्कर्ष अधिकतर एक

जैसे ही होंगे क्योंकि उन्नीसवीं शताब्दी के भारत सम्बन्धी अध्ययनों में जितनी दिलचस्पी और सफलता जर्मन प्राच्यविदों को मिली वह ब्रिटिश प्राच्यविदों से कहीं बढ़कर है। गौर करने की बात यह है कि सईद की स्थापना के ठीक उलट हम यह पाते हैं कि भारत तो जर्मनी का कभी उपनिवेश रहा ही नहीं इसलिए जर्मन प्राच्यविदों के माध्यम से औपनिवेशिक वर्चस्व की तो बात ही नहीं आती। फिलहाल हम ऊपर लिखी अवधि को ही ध्यान में रखते हैं। सईद ने भी आधुनिक उपनिवेशवाद के दो सोपानों की चर्चा की है–अप्रकट और प्रकट। अप्रकट प्राच्यवाद को वह आरंभिक प्राच्यविदों, ज्ञानकेंद्रित पेशों, विश्वविद्यालयों, खोजी संगठनों, प्रेस इत्यादि से जोड़ते हैं जिन्होंने आधुनिक ज्ञान–विज्ञान को बिखेरने के साथ–साथ पूरब को उसके प्राचीन सत्व से अवगत भी कराया। भारतीय संदर्भ में सर विलियम जोन्स, कोलब्रुक, प्रिन्सेप, पिशेल, मैक्समूलर, ग्रियर्सन आदि सईद की इसी अप्रकट प्राच्यविदों की कोटि में आते हैं। सईद का इनपर आरोप है कि इनका प्राच्यवाद यथास्थितिवादी था और संवादी भी नहीं था इसलिए इन्होंने पूरब को जितना खोजा है उससे अधिक निर्मित किया है। सईद के अनुसार बाद के प्रकट प्राच्यवाद के दौर में पश्चिम के प्राच्यविद साम्राज्यवादी सत्ता को सुझाव देने लगे और उसके अंग बन गए। भारत के संदर्भ में कर्जन, मैकाले, जेम्स मिल आदि ऐसे ही प्राच्यविद हैं।

हमारे लिए बेहद जरूरी हो जाता है कि हम भारत से सम्बन्ध रखने वाले इन प्राच्यविदों पर लगे सईद के आरोपों की परख करें क्योंकि इसका गहरा सम्बन्ध हमारे देश और विशेषकर हिन्दी क्षेत्र से है। रामविलास शर्मा ने अपने निबन्ध 'विलियम जोन्स और भारतीय संस्कृति' में जोर देकर कहा है कि विलियम जोन्स ने भारत के बारे में जो कुछ भी कहा है, वह आज भी हमारे लिए प्रासंगिक है, उस पर ध्यान देना आवश्यक है। रामविलास जी के अनुसार आगे चलकर मैकाले ने भारतीय साहित्य के प्रति जो दृष्टिकोण अपनाया, वह विलियम जोन्स के दृष्टिकोण से बिल्कुल उल्टा था। उन्होंने लिखा है कि विलियम जोन्स की रचनाओं में भारतीय संस्कृति का जो पक्ष उभरकर सामने आता है, उससे हम आश्वस्त हो सकते हैं कि उसके आधार पर अंग्रेजी राज के बिना भी भारत नवजागरण की ओर बढ़ सकता था, और ज्यादा अच्छी तरह बढ़ सकता था। यहाँ तक कि मार्क्सवादियों को भी नसीहत देने की भाषा में उन्होंने लिखा है कि उनके लिए यह आवश्यक है कि भारत के सम्बन्ध में मार्क्स की स्थापनाओं पर विचार करते हुए विलियम जोन्स को भी पढ़ें। यही नहीं अपनी किताब 'महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण' में भी जगह–जगह बचने की कोशिशों के बीच भी इस सम्बन्ध में रामविलास शर्मा की मान्यताएँ झलकती हैं। रामविलास जी ने महावीर प्रसाद द्विवेदी की 'पूर्वीय विद्वानों की कांग्रेस' शीर्षक से 'सरस्वती' (जनवरी,1909) में लिखी टिप्पणी को प्रशंसा करते हुए उद्धृत किया है कि 'मतलब यह कि इस सभा में भारतीय बातों की अच्छी चर्चा रही। पर अफसोस इस बात का है कि हिन्दुस्तान से हजारों कोस दूर बैठकर, और समय तथा धन की हानि सहकर, विदेशी विद्वान भारतीय विद्या की चर्चा करें और यहाँ के अहम्मानी विद्वान कूपमंडूकवत् पड़े–पड़े पुराने स्वप्न देखा करें।' ऐसे अनेक प्रसंग इस किताब में देखे जा सकते हैं।

इस बात पर तो कम या अधिक सभी सहमत ही हैं कि केवल साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद के विरोध की बात को छोड़कर अन्य सभी बिंदुओं जिनको मिलाकर नवजागरण की अवधारणा सामने आती है, मसलन इतिहास और साहित्य का नया मूल्यांकन करते हुए ऐतिहासिक दृष्टि की प्रतिष्ठा, परंपरा का युगानुकूल संदर्भों में उपयोग, जातीय शिक्षा पर जोर, स्वत्त्व गठन की गंभीर कोशिश और विवेक तथा तर्कशीलता की स्थापना, पर प्राच्यविदों का असर है। ऐसा नहीं है कि भारत को लेकर ये प्राच्यविद्याविद भी अचानक ही कृपालु हो गए थे बल्कि विद्वानों ने इसके पीछे यूरोपीय ज्ञानोदय की तर्कशीलता, फ्रांसीसी क्रांति से प्राप्त मनुष्यमात्र के एक होने की चेतना और जर्मन स्वच्छन्दतावाद का गहरा असर लक्षित किया है। इमानुएल कांट ने यूरोपीय ज्ञानोदय की विवेचना करते हुए कहा था कि इसकी मुख्य उपलब्धि आंतरिक संकीर्णताओं से मुक्ति की चेतना के प्रसार में है। इस पृष्ठभूमि को ध्यान में रखते हुए प्राच्यवादियों पर सीधे उपनिवेशवाद के हितैशी होने का आरोप लगाने वालों को यह नहीं भूलना चाहिए कि एक तरफ संकीर्णताओं से मुक्ति की शिक्षा और दूसरी तरफ यह 'अपना' है और यह 'अन्य' है की बात साथ–साथ नहीं चल सकती। यही कारण है कि भारत से प्राप्त ज्ञान के महत्त्व को लेकर स्वयं यूरोप में जितनी संवेदनशीलता थी उतनी हमारे यहाँ नहीं थी। इस संदर्भ में मैक्समूलर की किताब 'India : What can it teach us?' और रेमां श्वाब (Raymond Schwab) की क्तिाब 'The Oriental Renaissance' (1950) को देखा जा सकता है।

क्या कारण है कि हिन्दी समाज में आत्महीनता के बरक्स आत्मगौरव का भाव भरने के उद्देश्य से 1912 में लिखी 'भारत–भारती' में भी मैथिलीशरण गुप्त यह कहने को विवश हैं कि –

'सचमुच ब्रिटिश साम्राज्य ने हमको बहुत कुछ है दिया
विज्ञान का वैभव दिखाया, समय से परिचित किया
उससे हमारी कीर्ति का भी हो रहा उपकार है
बहु पूर्व चिह्नों का हुआ वा हो रहा उद्धार है।'

या कि –

'है ब्रिटिश शासन की कृपा ही यह कि हम कुछ जग गए
स्वाधीन हैं हम धर्म में, सब भय हमारे भग गए
निज रूप को फिर हम सभी कुछ–कुछ लगे हैं जानने
निज देश भारतवर्ष को फिर हम लगे हैं मानने।'

क्या हम महाकवि रवीन्द्रनाथ की इस बात को असावधानी से कहा गया मान लें जो कि उन्होंने 1917 में एनी बेसेन्ट की नजरबन्दी का विरोध

करते हुए कहा था 'मैंने अंग्रेजों में भी ऐसे कई महात्मा देखे हैं जो अपने देशवासियों की लांछना सहकर भी इंग्लैंड के इतिहास–वृक्ष का अमृत फल भारतवासियों तक पहुँचाने के लिए उत्सुक हैं। अपने बीच भी हम ऐसे यथार्थ मनुष्य चाहते हैं जो बाह्य दु:ख और देश–बांधवों का धिक्कार सहने के लिए प्रस्तुत हों, जो विफलता की आशंका छोड़कर मनुष्यत्व का प्रकाशन करने के लिए व्यग्र हों।'

भारत में प्राच्यवाद के खास स्वरूप का विकास कलकत्ता की रॉयल एशियाटिक सोसाइटी के माध्यम से सामने आया। इनसे जुड़े ब्रिटिश शोधकर्ताओं द्वारा वेद, पुराण, स्मृतियों, उपनिषदों, कालिदास और बौद्ध भिक्षुओं के साहित्य, विभिन्न लिपियों के अध्ययन, सिक्कों के संग्रह और पुरातत्व शास्त्र के माध्यम से भारतीय इतिहास, भारतीय समाज और संस्कृति खासकर उसके प्राचीन अतीत की खोज के सुव्यवस्थित प्रयास हुए। तथ्यसम्मत इतिहास के निर्माण के जरिये भारतीय संस्कृति को भी पुनर्परिभाषित करने के प्रयास किए गए। इस प्रक्रिया में अतीत की सर्वथा एक ऐसी नई तस्वीर का निर्माण हुआ। इन सुव्यवस्थित प्रयासों और इससे सम्बद्ध इतिहासदृष्टि के फलस्वरूप भारतीय समाज और संस्कृति की एक नई पहचान सामने आई। इस पहचान का साफ असर उन्नीसवीं सदी के हिन्दी, बांग्ला व मराठी नवजागरण और सुधारवादी व सुधार विरोधी आन्दोलनों के साथ–साथ नवोदित राष्ट्रवाद के चरित्र के ऊपर भी देखा जा सकता है।

विलियम जोन्स के साथ ही अन्य प्राच्यविदों ने अपने अथक परिश्रम से भारत की प्राचीन संस्कृति को न केवल यूरोप के लिए बल्कि भारत के लिए भी पुनर्जागृत किया। अब भारत इस बात पर गर्व कर सकता था कि उसके पास भी शेक्सपीयर के बराबर का कोई महाकवि था, उसकी भाषा भी यूनानी और लातीनी से अधिक समृद्ध थी और उसके पास एक ऐसा दर्शन था जिसकी तुलना यूनानी दर्शन से की जा सकती थी। भारत के इतिहास, पुरातत्व, कला, विज्ञान और साहित्य के बारे में जितनी सही जानकारियाँ इनके प्रयास से विश्व के समक्ष आ सकीं उतनी पहले कभी नहीं आईं थीं। विलियम जोन्स ने संस्कृत, यूनानी, लातीनी, केल्टिक और तुतानी (ट्यूटानिक) भाषाओं की समानताओं के बारे में चर्चा ही नहीं की वरन् इस बात की ओर भी संकेत किया कि इन सबका स्रोत एक ही भाषा है जो आज उपलब्ध नहीं है। जोन्स से पहले तुलनात्मक भाषा–विज्ञान में पहला महत्त्वपूर्ण कार्य लाइबनित्ज का था। पैटर्सन ने अपनी किताब 'द डिस्कवरी ऑफ लैंग्वेज' में यह बताया है कि 1710 के अपने एक लेख में लाइबनित्ज ने एक भाषायी वंशावली इस मान्यता के आधार पर तैयार की थी कि यूरोप के साथ–साथ एशियाई और मिस्र की भाषा का स्रोत एक ही भाषा रही है। एशियाटिक सोसाइटी में पढ़े गए अपने तीसरे वार्षिक भाषण में विलियम जोन्स ने कहा था 'संस्कृत भाषा चाहे जितनी भी प्राचीन रही हो, उसकी संरचना विलक्षण है; यह यूनानी से अधिक पूर्ण, लातीनी से अधिक समृद्ध और इन दोनों से अधिक परिष्कृत है। धातु रूपों और वैयाकरणिक रूपों में यह इन दोनों के साथ इतना अधिक साम्य रखती है कि यह साम्य मात्र संयोग नहीं हो सकता। यह साम्य इतना स्पष्ट है कि कोई भी भाषाविद्, जिसने इन तीनों भाषाओं का अध्ययन किया हो, वह इस निष्कर्ष पर पहुँचे बिना नहीं रह सकता कि ये तीनों भाषाएँ एक समान स्रोत से विकसित हुईं हैं जो आज अस्तित्व में नहीं **(भारत के अतीत की खोज, ओमप्रकाश केजरीवाल, पृ. 79)**।'

यद्यपि यूनानी, लातीनी और संस्कृत भाषाओं के बीच साम्य की चर्चा जोन्स के पहले के विद्वान भी कर चुके थे लेकिन जोन्स से पहले और कोई भी विद्वान इस निष्कर्ष पर नहीं पहुँचा था कि ये समानताएँ इसलिए हैं कि इन सभी भाषाओं का उद्गम स्रोत एक ही भाषा है जो आज अस्तित्व में नहीं है। उस समय यूरोपीय विद्वानों के आश्चर्य की सीमा नहीं रही जब उनके सामने यह बात आई कि एक ऐसी भी भाषा है जो उनकी शास्त्रीय भाषाओं से न केवल अधिक समृद्ध है बल्कि जो प्राचीनतम मूल भाषा के भी निकटतम है। कहा जा सकता है कि एशियाटिक सोसाइटी के कारण संस्कृत एक विश्व भाषा के रूप में उभरी और पश्चिम के चेतना जगत पर उसका जो प्रभाव पड़ा, उसकी चर्चा मैक्डानल ने अपने संस्कृत साहित्य के इतिहास में इस प्रकार की है 'यूरोप में पुनर्जागरण के बाद संस्कृति के इतिहास में कोई भी घटना इतने विश्वव्यापी महत्व की नहीं हुई जितनी कि अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में संस्कृत साहित्य की खोज **(वही, पृ. 314)**।'

विलियम जोन्स की इन मान्यताओं का समर्थन आगे चलकर मैक्समूलर ने भी किया। मैक्समूलर के अनुसार विश्व की प्राचीनतम भाषा हिब्रू नहीं संस्कृत है। मूलर ने बताया कि संस्कृत ही सभी आर्यों की मूल भाषा है और संसाार भर की आर्यभाषाओं में जितने भी शब्द हैं वे संस्कृत की सिर्फ पाँच सौ धातुओं से निकले हैं। ग्रीक साहित्य और संस्कृत साहित्य पर तुलनात्मक दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हुए उन्होंने लिखा है कि 'ग्रीक साहित्य के अध्ययन का अपना उद्देश्य है और संस्कृत साहित्य के अध्ययन का अपना उद्देश्य है, परन्तु मुझे विश्वास है कि यदि समुचित भावना के साथ संस्कृत साहित्य का अध्ययन किया जाए तो हमें पता चलेगा कि वह सब प्रकार की रस सामग्री से पूर्ण है, उसमें मानव की परिमार्जित रुचियों की सर्वसुन्दर अभिव्यंजना है तथा उसमें हमें ऐसी शिक्षाएँ सुलभ हो जाती हैं जो ग्रीक साहित्य में खोजे से भी नहीं मिलेंगी (संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार की पत्रिका 'संस्कृति' के 16वें अंक में प्रकाशित जे. पी. बर्नवाल का आलेख)।'

एशियाटिक सोसाइटी के सदस्यों ने न केवल संस्कृत साहित्य की समृद्धि को उजागर किया बल्कि इस तथ्य को भी सामने लाने में सफल हुए कि इस भाषा के माध्यम से अत्यन्त प्राचीन काल में यूरोप और विश्व के इस

भाग के बीच सम्बन्धों का पता चल सकता है। एशियाटिक सोसाइटी के इन प्रयासों का यूरोप पर जो प्रभाव पड़ा, उसका उससे भी अधिक प्रभाव भारतीय जीवन और विचारधारा पर पड़ा। सोसाइटी ने न केवल भारत के विस्मृत अतीत का पुनरुत्थान किया बल्कि 1840 तक सोसाइटी ने इस तथ्य को निर्विवाद रूप से स्थापित कर दिया कि भारत एक समय उन्नत संस्कृति का स्रोत रहा था और कलाओं, साहित्य और विज्ञान में उसकी प्रगति किसी भी रूप में यूरोप से कम नहीं थी। इसका बड़ा ही दूरगामी प्रभाव हुआ। यह प्रभाव था भारत के अतीत की खोज और इसके परिणामस्वरूप यहाँ के लोगों में इतिहास के प्रति जागरूकता, जिसके कारण भारत का पुनर्जागरण काल प्रारम्भ हो सका। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने लिखा है –'इतिहास में महान पुनर्जागरण के युग वे रहे हैं जिनमें मानव ने सहसा अतीत के भंडार में विचारों के बीज की खोज कर ली हो।' इस दृष्टि से 1784–1838 के बीच का एशियाटिक सोसाइटी का समय निस्संदेह भारतीय पुनर्जागरण के आरम्भ का ही काल रहा है।

भारत के सन्दर्भ में प्राय: यह धारणा है कि प्राच्यविदों के इतिहास के क्षेत्र में अग्रसर होने से पहले यहाँ इतिहास एवं अतीत की कोई चिन्ता नहीं थी। भारतीयों के पास ऐतिहासिक दृष्टि रही है या नहीं, इस बात पर भारतीय एवं विदेशी विद्वानों में काफी विवाद रहा है। पाश्चात्य इतिहासकारों ने इस विषय पर विभिन्न प्रकार की टिप्पणियाँ की हैं और इस स्थिति की अपने-अपने ढंग से व्याख्या की है। इस दृष्टिकोण की बड़ी ही स्पष्ट व्याख्या एमोरी द रेनकोर्ट ने अपनी किताब 'द सोल ऑफ इण्डिया' में की है – 'आर्यकालीन भारत स्मृति में आस्था नहीं रखता था क्योंकि उसका ध्यान अनन्त पर था, समयबद्धता पर नहीं। भारतीय मानस के लिए परम सत्य था परमतत्व में विलीनता, समय नहीं। उसकी आस्था प्रकृति में थी, न कि समयबद्ध इतिहास में क्योंकि उसके विचार में मनुष्यों के दु:खों के कारण ही नश्वर वस्तुओं में उसकी आसक्ति है। इस दृष्टि से इतिहास और दु:ख पर्याय हुए। सांसारिक दु:खों और इतिहास की समाप्ति एक ही साथ संभव है।' **(लंदन, 1961, पृ. 26)**

आशय यह कि इतिहास के प्रति भारतीय दृष्टिकोण प्राय: आदर्शमूलक एवं आध्यात्मवादी रहा है, इसीलिए उसमें भौतिक जगत की स्थूल घटनाओं में भी आध्यात्मिक तत्वों एवं प्रवृत्तियों के अनुसन्धान की भावना रही है। भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति में प्राय: सामयिक तत्त्वों की अपेक्षा चिरन्तन मूल्यों को अधिक महत्त्व दिया जाता रहा है, अत: यहाँ के प्राचीन इतिहासकारों ने अतीत की व्याख्या भी इसी दृष्टिकोण से की, अर्थात् वे परिवर्तनशील अतीत में से भी उन प्रवृत्तियों का अनुसन्धान करते रहे जो मनुष्य को स्थायी एवं अमर बनाती हैं। उन्होंने घटनाओं एवं क्रियाकलापों की व्याख्या भौतिक उपलब्धियों एवं वैयक्तिक सफलताओं की दृष्टि से कम करके समष्टि-हित की दृष्टि से अधिक की। यद्यपि आगे चलकर बाण, कल्हण आदि इतिहासकारों ने इससे भिन्न दृष्टि को अपनाते हुए आध्यात्मिक, नैतिक एवं चारित्रिक तत्त्वों की अपेक्षा यथार्थपरक वस्तु एवं तथ्यों को अधिक महत्त्व प्रदान किया, किन्तु काव्यात्मकता एवं अलंकृति का मोह वे भी न त्याग सके। इसीलिए जहाँ प्राचीन युग में भारतीय इतिहासकारों की रचनाएँ चारित्रिक मूल्यों, नैतिक उपदेशों व आध्यात्मिक रूपकों से युक्त होकर पौराणिक रूप में परिणत हो गयीं, वहाँ परवर्ती इतिहासकारों की रचनाएँ शुद्ध इतिहास की अपेक्षा 'काव्यात्मक इतिहास' या 'ऐतिहासिक काव्य' के रूप में विकसित हुईं।

दूसरी तरफ पाश्चात्य इतिहासकार प्राय: यथार्थवादी दृष्टिकोण से अनुप्राणित रहे हैं। 'इतिहास' के प्रथम व्याख्याता यूनानी विद्वान हिरोदोतस (456–545 ई.पू.) ने इसे 'खोज', 'गवेषणा' या 'अनुसन्धान' के अर्थ में ग्रहण करते हुए इसके चार लक्षण निर्धारित किए थे–एक तो यह कि इतिहास वैज्ञानिक विद्या है, अत: इसकी पद्धति आलोचनात्मक होती है। दूसरे, यह मानव जाति से सम्बन्धित होने के कारण मानवीय विद्या है। तीसरे, यह तर्कसंगत विद्या है, अत: इसमें तथ्य और निष्कर्ष प्रमाण पर आधारित होते हैं। चौथे, यह अतीत के आलोक में भविष्य पर प्रकाश डालता है, अत: यह शिक्षाप्रद विद्या है। इसके अतिरिक्त हिरोदोतस ने यह भी स्पष्ट किया कि इतिहास का लक्ष्य प्राकृतिक या भौतिक परिवर्तन की प्रक्रिया की व्याख्या करना है। उन्नीसवीं सदी में डारविन ने अपने विकासवादी सिद्धान्त की स्थापना द्वारा इतिहास को एक नूतन दृष्टि प्रदान की। बाद के विद्वानों ने विकासवाद से प्रभावित होकर विभिन्न आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक आदि क्षेत्रों में भी विकासवादी सिद्धान्त की स्थापना करते हुए प्रमाणित किया कि सृष्टि का कोई अंग या तत्त्व एकाएक घटित या रचित न होकर क्रमश: विकसित है। अत: वैज्ञानिक दृष्टि से 'इतिहास' का अर्थ 'घटना-समूह' का संकलन न होकर 'विकास-क्रम' का विवेचन है।

इतिहासकार अरविन्द शर्मा ने अपनी पुस्तक 'हिन्दुइज्म एण्ड इट्स सेन्स ऑफ हिस्ट्री' में बताया है कि इस मसले पर विद्वानों के मतों में अन्तर होते हुए भी निष्कर्ष के धरातल पर सभी एक ही हैं यहाँ तक कि जब विद्वान अधिक सूक्ष्म दृष्टिकोण अपनाते हैं और इनके बीच अंतर करते हैं 1. कालक्रम की कमी, 2. इतिहास की कमी, एक्स. इतिहास की समझ की कमी, वाई. इतिहासलेखन की कमी, और 5. इतिहास के सिद्धांत के अभाव में, कुल प्रभाव वही है। भारत में इतिहासलेखन और इतिहास के सिद्धांत की कथित कमी केवल इतिहास की समझ की कमी के पिछले दावे को पुष्ट करती है। **(ऑक्सफोर्ड, 2003, पृ. 1)**

ओमप्रकाश केजरीवाल ने सत्रहवीं-अठारहवीं सदी के भारत के बारे में विचार करते हुए इतिहास के अभाव की भी चर्चा की है। उनके अनुसार 'इतिहास के विषय में तो स्थिति और भी खराब थी। आश्चर्य की बात है कि आज से मात्र दो सौ वर्ष पूर्व तक अधिकांश शिक्षित भारतीय भी चन्द्रगुप्त मौर्य, अशोक, समुद्रगुप्त, कनिष्क, हर्ष और यहाँ तक कि गौतम

बुद्ध के नाम तक से परिचित नहीं थे जबकि ये सभी नाम प्राचीन भारतीय इतिहास एवं संस्कृति के स्तम्भ हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि अठारहवीं शताब्दी तक आते-आते भारत के पास एक वैभवशाली अतीत तो था पर इतिहास नहीं। भारत का अतीत पुरातात्विक भग्नावशेषों, ऐतिहासिक स्मारकों, भूमिगत अवशेषों और मुद्राओं, पांडुलिपियों, शिलालेखों व लोहे की लाटों तथा ताम्रपत्रों पर उत्कीर्ण अभिलेखों के रूप में सुरक्षित तो था परन्तु उन्हें ऐतिहासिकता प्रदान करने वाली कृतियों का नितान्त अभाव था। इस ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की अनुपस्थिति में देश अपनी महान् ऐतिहासिक परम्पराओं एवं सांस्कृतिक विरासत से एकदम अनभिज्ञ था **(भारत के अतीत की खोज, पृ. 23)।'**

अपनी किताब 'भारत के अतीत की खोज' का निष्कर्ष प्रस्तुत करते हुए उन्होंने जो कुछ लिखा है उसे उद्धृत करना इस संदर्भ में जरूरी है –'द एन्लाइटनमेंट एंड द हिस्ट्री ऑफ आइडियाज' शीर्षक के अपने एक लेख में प्रसिद्ध इतिहासकार फ्रैंक मैन्युएल ने विचार व्यक्त किया है कि न्यूटन यदि जन्म लेते ही मर गए होते तो भी पाश्चात्य विज्ञान का विकास उसी प्रकार हुआ होता जैसा कि हुआ। 'ऐतिहासिक अवश्यंभाविता' अर्थात् 'जो होना है वह होकर ही रहेगा' का सिद्धांत इतिहासकारों तथा इतिहास के दार्शनिकों के बीच बहुत समय से विवाद का विषय बना हुआ है, परन्तु प्रस्तुत पुस्तक में यह दिखाने की चेष्टा की गई है कि यदि बंगाल की ऐशियाटिक सोसायटी की स्थापना नहीं हुई होती और विलियम जोन्स, हेनरी कोलब्रुक, एच. एच. विल्सन, डब्ल्यू. एच. मिल, जार्ज टर्नर तथा जेम्स प्रिंसेप सरीखे विद्वानों ने भारतीय इतिहास और संस्कृति में गहरी रुचि न ली होती और उनका अध्ययन न किया होता तो प्राचीन भारतीय इतिहास तथा इसका वैभवपूर्ण अतीत संभवत: कभी प्रकाश में नहीं आता या उसकी स्थिति वह नहीं रहती जैसी कि आज है **(वही, पृ. 299)।'**

यद्यपि भारतीय इतिहासकार शास्त्रों से ऐसे कई उद्धरण प्रस्तुत करते हैं जिनमें सांसारिक जीवन के महत्व पर जोर दिया गया है। प्राचीन भारतीय इतिहास के अनेक साहित्यिक और गैरसाहित्यिक स्रोतों जैसे धर्मग्रंथों, अभिलेखों, जीवनचरितात्मक रचनाओं, महाकाव्यों, नाटकों और पुराणों में इतिहास सम्बन्धी विभिन्न घटनाओं और व्यक्तियों के विवरण मिलते हैं। इस सन्दर्भ में वात्स्यायन की प्रसिद्ध रचना 'कामसूत्र' का भी नाम लिया जाता है। कहा जाता है कि प्राचीन भारत में इतिहास उन्नत विधा रही है। इसका महत्व इसी बात से स्पष्ट है कि इतिहास को 'पंचम वेद' कहा गया है। कौटिल्य ने तो राजा के लिए देशकाल के इतिहास का नियमित श्रवण अनिवार्य बताया है। डॉ.पी. वी. काणे के अनुसार उपनिषदों, ब्राह्मणों तथा प्राचीन भारत के संस्कृत के अन्य ग्रंथों में 'इतिहास' शब्द की पुनरावृत्ति इस बात का परिचायक है कि प्राचीन भारत में इस विधा को कितना महत्त्व दिया जाता था। विद्वानों के अनुसार विभिन्न ऐतिहासिक जीवनियाँ जैसे हर्षचरित, गौडवहो विक्रमांकदेवचरित, कुमारपाल चरित, रामचरित, पृथ्वीराज विजय और सोमपाल विलास आदि या फिर मेरूतुंग रचित 'प्रबन्ध चिंतामणि' जैसी रचनाएँ आधुनिक अर्थों में इतिहास की रचनाएँ न होने के बावजूद भारतीयों की इतिहास सम्बन्धी चेतना को ही प्रकट करती हैं।

परन्तु आधुनिक अर्थों में हम जिस इतिहास लेखन से परिचित हैं उसके अन्तर्गत बारहवीं सदी की कल्हणकृत 'राजतरंगिणी' के अतिरिक्त और कोई इतिहास सम्बन्धी रचना नहीं मिलती है। इस सम्बन्ध में इतिहासकार रमेशचन्द्र मजूमदार अपने प्रसिद्ध आलेख 'आइडिया ऑफ हिस्ट्री इन संस्कृत लिट्रेचर' में इतिहास की विश्वसनीय और प्रामाणिक रचनाओं के अभाव की चर्चा करते हुए कहते लिखा है कि-'कोई भी व्याख्या इस स्थिति का सन्तोषजनक कारण नहीं बता सकती। लेकिन एक प्रत्यक्ष सच्चाई यह है कि भारत में न तो ऐतिहासिक सामग्री और न ही इतिहास सम्बन्धी रचनाओं का अभाव था और न इतिहास को जानने की सामान्य रुचि ही पूरी तरह से अनुपस्थित थी। फिर भी ज्ञान-विज्ञान की किसी शाखा में कल्हण जैसा प्रथम कोटि का लेखक पैदा नहीं हुआ। यह किसी निश्चित कारण या कारणों का परिणाम नहीं बल्कि एक संयोग अधिक प्रतीत होता है। ऐसे किसी भी लेखक के पैदा न होने से इतिहास में जनसाधारण की दिलचस्पी भी कम हो गई। एक बार सामाजिक स्तर पर यह दिलचस्पी मर गई तो फिर ऐसे किसी लेखक के पैदा होने की सम्भावना और क्षीण हो गई।' भारत में इतिहास लेखन की परम्परा और इस परम्परा के विकास में 'राजतरंगिणी' के महत्व की चर्चा करते हुए इतिहासकार सतीश चन्द्र ने अपनी किताब 'मध्यकालीन भारत में इतिहास लेखन, धर्म और राज्य का स्वरूप' लिखा है कि-'हालाँकि भारत में इतिहास लेखन की आधुनिक परम्परा की शुरुआत भारत में ब्रिटिश शासन के आरम्भ से मानी जाती है लेकिन यह समझना महत्त्वपूर्ण है कि भारत में जिन्हें कभी-कभी इतिहास-पुराण कहा जाता है वे इतिहासलेखन की देसी परम्पराओं के सूचक हैं। इस परम्परा में न केवल राजाओं की वंश विषयक सारणियाँ और स्पष्ट ऐतिहासिक आँकड़े शामिल थे, बल्कि उनमें एक खास इतिहास दर्शन भी मौजूद था। कल्हण द्वारा बारहवीं सदी में संस्कृत में लिखा गया कश्मीर का इतिहास राजतरंगिणी ऐतिहासिक विश्लेषण में स्पष्टता और परिपक्वता का प्रदर्शन करता है और भारत में इतिहास लेखन की लम्बी परम्परा के ही विकास का संकेत देता है **(दिल्ली, 1999, पृ. 39)।'**

बाद के दौर में इतिहास सम्बन्धी अपेक्षाकृत अधिक महत्त्वपूर्ण रचनाएँ वे हैं जो अरबी-फारसी में उन लोगों के द्वारा लिखी गईं जिन्हें मुस्लिम शासकों के दरबार में रहने वाले लोगों के द्वारा लिखा गया। विभिन्न मुगल शासकों का संरक्षण प्राप्त करने या उनके दरबार में रहने वाले मिनहास सिराज, जियाउद्दीन बर्नी, शम्ससिराज अफीक, याह्याबिन अहमद सरहिन्दी, अमीर खुसरो, इसामी, शेख अब्दुल फजल, मुल्ला अब्दुर कादिर बदांयूनी, ख्वाजा निजामुद्दीन अहमद आदि प्रमुख हैं। मध्यकाल की राजनीतिक

परिघटनाओं, साम्राज्य विस्तार की नीति से प्रेरित युद्धों, छल-छद्म से बनने और टूटने वाली सत्ताओं व शासकों की वंशावलियाँ इनकी लिखी रचनाओं में मिलती हैं।

अगस्त, 1931 के 'विशाल भारत' में प्रसिद्ध इतिहासकार यदुनाथ सरकार का एक लेख छपा है -'भारत में मुसलमान'। इस लेख में उन्होंने मुसलमान इतिहासकारों के योगदान की चर्चा की है। उनका कहना है कि ऐतिहासिक साहित्य में भारत में मुसलमानों का जो दान है, उसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता है। हिन्दुओं में सांसारिक घटनाओं का इतिहास लिखने और उनके समय का हिसाब रखने का अभ्यास कौन कहे, प्रवृत्ति भी नहीं थी। हम लोग अ-काल के ध्यान में इतने मग्न रहा करते थे कि काल की गति की ओर हमारी दृष्टि ही नहीं थी। इस संसार में कौन-कौन सी घटनाएँ हुईं, किसने क्या किया, इन बातों का विवरण रखना, यहाँ तक कि उनकी ओर मन लगाना भी अमूल्य मानव जीवन का अपव्यय करना और अपने चरम लक्ष्य से भ्रष्ट होना समझा जाता था। इस मनोवृत्ति के कारण ही मुसलमानों के आगमन के पूर्व हिन्दुओं ने इतिहास की रचना नहीं की। राजाओं की प्रशंसा की प्रशस्ति या अतिरंजित काव्य कुछ हैं जरूर, किन्तु उन्हें हम इतिहास नहीं कह सकते। उनमें तिथियों का कोई क्रम नहीं है। काल निरूपण ग्रंथ तो बिल्कुल ही नहीं पाए जाते, किन्तु अरब लोग पक्के व्यवहारवादी थे और प्राकृत-वस्तुओं पर सर्वदा सजग दृष्टि रखा करते थे। इसीलिए ही उन्होंने इस्लाम के आदि युग से लेकर घटनाओं का इतिहास, राजाओं की तिथि-संवत और उनकी जीवनियाँ लिख छोड़ी हैं। उनके इस इतिहास में तिथि संवतों का पूर्ण समावेश पाया जाता है। प्रत्येक देश में मुसलमानों ने बहुत से ऐतिहासिक साहित्य की रचना की है।

उनमें यद्यपि उच्च दार्शनिक विचार या विश्लेषण नहीं मिलता फिर भी वे क्रमबद्ध रूप में सुसज्जित हैं, वास्तविक घटनाओं के आधार पर लिखे गए हैं और अनेक स्थलों पर लेखक की निज की अभिज्ञता या अनुसंधान के फलस्वरूप वर्णित हैं तथा प्रकृत ऐतिहासिक भाषा और प्रणाली द्वारा रचित हैं। अतीत युग की घटना, परम्परा, कार्य-कारण सम्बन्धी एवं देश की दशा का वास्तविक ज्ञान प्राप्त करने के लिए ये साधन अमूल्य और एकमात्र विश्वसनीय हैं। मुसलमान इतिहासकारों द्वारा रचित इन ग्रंथों से हमें उस समय की हिन्दू जाति और पार्श्ववर्ती हिन्दू राजाओं तक की सच्ची कहानी प्राप्त होती है। इसके बाद क्रमश: हिन्दू लेखकों ने मुसलमान इतिहासकारों का अनुकरण करने की शिक्षा प्राप्त की। मुगल काल में बहुत से हिन्दुओं ने फारसी भाषा में इतिहास, जीवनी, पत्रावली आदि लिखी है। हिन्दू राजाओं ने भी मुगल बादशाहों क अनुकरण में निज कीर्ति-कलाप और वंशचरित की रचना कराई। यही कारण है कि सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दियों का भारत हमारे निकट विशेष रूप से परिचित है, और उससे पूर्व का ऐतिहासिक उपकरण उसकी तुलना में प्राय: नहीं के बराबर है। प्रत्येक मुगल बादशाह और उनके पूर्व के सुलतानों में अनेक ने अपने राजत्व काल की घटनाओं को लेखबद्ध कराने के लिए वेतनभोगी लेखक नियुक्त किए थे, और उन्हें बिल्कुल सरकारी कागज-पत्र दिखाकर इन इतिहास ग्रंथों की रचना के लिए वास्तविक आधार प्रदान किए थे। इसी साहित्य ने हिन्दुओं की आँखें खोल दीं।

बाद में अंग्रेज इतिहासकार इलियट तथा डाउसन ने बाद में इन मध्यकालीन इतिहासकारों और जीवनी-लेखकों से प्राप्त सामग्री का सम्पादन कर उसे 'हिस्ट्री ऑफ इण्डिया एज टोल्ड बाई इट्स ओन हिस्टोरियंस' नाम से आठ खण्डों में छपवाया। इसकी भूमिका में इलियट ने इस सामग्री पर टिप्पणी करते हुए लिखा है-'ये इतिहासकार समाज के विषय में बिल्कुल नहीं सोचते। समाज के विभिन्न तत्वों के परस्पर सम्बन्ध क्या हैं, इनमें कौन से वर्ग और लोक संस्थाएँ हैं, लोगों के पारस्परिक सम्बन्ध कैसे होते हैं, ऐसी बातों के विषय में इतिहास चुप है। इसी प्रकार इनमें व्यापार, कृषि, पुलिस और पंचायतों की जानकारी का अभाव है।'

इतिहासकार हरबंश मुखिया ने इनके बारे में बताया है कि वे विभिन्न घटनाओं का कारण मानवीय स्वभाव और इच्छाओं के रूप में देखते थे। उनके अनुसार इन इतिहासों में समाज की जटिल संरचना को समझे बगैर घटनाओं की व्याख्या का परिणाम यह हुआ कि इतिहास को परस्पर असम्बद्ध घटनाओं के रूप में देखने के कारण वह समग्र इतिहास दृष्टि नहीं पैदा हो सकी जो विभिन्न घटनाओं के आपसी सम्बन्धों को समझने की दृष्टि प्रदान कर सके।

कहा जा सकता है कि रॉयल एशियाटिक सोसाइटी की स्थापना से पहले भी यद्यपि भारत के इतिहास और अतीत की जानकारी हासिल करने के लिए छिटपुट प्रयास हुए थे लेकिन व्यवस्थित शोध का कार्य सोसाइटी के माध्यम से ही आरम्भ हुआ। विश्वसनीय तथ्यों और ऐतिहासिक अन्वेषणों के अभाव में इस समय तक आम जनमानस में मिथक और इतिहास के बीच स्पष्ट अंतर करने की चेतना का प्रादुर्भाव नहीं हुआ था। सोसाइटी द्वारा जब विभिन्न भाषाओं में लिखे गए इतिहासों, अभिलेखों, पुरानी मुद्राओं, ताम्रपत्रों और प्राचीन स्मारकों आदि को इतिहास की शोध सामग्री के बतौर इस्तेमाल करने की शुरुआत हुई तब जाकर पौराणिक और मिथकीय चेतना पर आधारित इतिहास लेखन की इस पद्धति में बदलाव आना आरम्भ हुआ। इसके साथ ही प्राचीन साहित्यिक रचनाओं को प्रकाश में लाने और उनके महत्व को समझने से भारतीय इतिहास की प्रामाणिक खोज और उसके विकास क्रम के निर्धारण में काफी सहायता मिली।

असिस्टेंट प्रोफेसर
हिन्दी विभाग, बी.एच.यू.,
वाराणसी-221005 (यू.पी.) भारत
मो. -9435370523

मैं कहता आँखन की देखी

- अवधेश तिवारी

जन्म - 5 जनवरी 1959।
जन्म स्थान - पिपरिया रत्ती, छिंदवाड़ा (म.प्र.)।
शिक्षा - स्नातकोत्तर।
रचनाएँ - छः पुस्तकें प्रकाशित, कतिपय सम्पादित।

उस गाँव के लोगों को किसी ने बता दिया कि सूरज अँधेरे में कहीं गुम हो गया है। फिर क्या था, लोगों ने अपनी-अपनी मशालें उठाईं और सूरज को ढूँढ़ने निकल पड़े। वे ढूँढ़ते-ढूँढ़ते थक गए पर अँधेरे में गुमा सूरज न मिलना था, न मिला। वे अपनी मशालें लिए गाँव वापस लौट आए। गाँव के बूढ़े बाबा एक चबूतरे पर बैठकर चादर सिल रहे थे। उन्होंने उन लोगों को बड़े ध्यान से देखा और करुणा-भरे स्वर में पूछा, 'मिल गया अँधेरे में गुमा सूरज?' एक मशालधारी ने तपाक से उत्तर दिया, 'नहीं, आज तो नहीं मिला।'

'तो क्या कल मिल जाएगा?'

'क्यों नहीं, जब तक हमारे हाथों में मशालें हैं, एक-न-एक दिन हम अँधेरे में गुमे सूरज को ढूँढ़ ही लेंगे।' उन्हें अचरज से देखते हुए आँखों की पलकें पोंछकर बाबा शून्य क्षितिज की ओर ताकने लगे। तभी दूर एक हिरण उन्हें कुलाचें भरता हुआ, बेतहाशा दौड़ता दिखाई पड़ा। बाबा की आँखें फिर नम होने लगीं। वे अपनी पीड़ा छुपाने के लिए गुनगुना उठे-
'तेरा साँई तुज्झ में, ज्यों पुहुपन में बास।
'कस्तूरी का मिरग ज्यों, फिर-फिर ढूँढ़े घास।।'

बाबा की बात सुनकर उनमें से एक मशालधारी झुँझला कर कहने लगा-'बाबा, आप हमेशा उलझी-उलझी बातें करते हैं। आप सबसे कहते हैं, तेरा साँई तुझ में ही है। लेकिन वह साँई न किसी को दिखाई पड़ता है, न उसका कोई रंग-रूप का पता चलता है। आखिर हमारे भीतर वो होता तो कुछ तो महसूस होता न?'

बाबा ने कहा, 'महसूस होता है रे, जरूर होता है। वह दुनिया के सारे रंगों में है लेकिन उसका-अपना कोई रंग नहीं है। दुनिया के सारे रूप उसी के हैं फिर भी वो अरूप है। वो निराकार ही सारे आकारों में बसता है। वो दिखाई देता भी है और नहीं भी देता। वो 'पुहुप बास ते पातरा है, फूल की सुगंध से भी पतला है, महीन है, सूक्ष्म है।' मशालधारी प्रतिप्रश्न किया, 'वो फूल अपनी गंध लुटाता ही क्यों है बाबा, क्या इसीलिए कि आदमी उसी में उलझ कर जीता रहे?' नहीं रे', बाबा के होठों पर हल्का सुहास तैरने लगा। वे शांत स्वर में बोले, 'फूल का ये स्वभाव ही है पगले। जिस दिन फूल सुगंध से भर जाता है न, उसे हवाओं को अपनी सुगंध लुटानी ही पड़ती है। फिर वह उसे अपने पास कैद करके रखना भी चाहे तो नहीं रख सकता। ठीक वैसे ही, जैसे दीया जला तो उसका प्रकाश स्वयं फैलने लगता है। फिर वह दीए के पास बँधकर नहीं रह सकता। ये सब तुम्हें भी समय आने पर जरूर महसूस होगा। बस, महसूस करने की कोशिश करते रहो।'

मशालधारियों ने एक-दूसरे की तरफ देखा और व्यंग्य से मुस्कुराकर आगे बढ़ गए। उनमें से एक ने कहा, 'मालूम नहीं, बूढ़ा कब तक जिएगा!' दूसरा बोल उठा-'चादर नहीं, अपना कफन तैयार कर रहा है। अपने जाने की तैयारी खुद ही कर रहा है, चिंता मत करो।' बाबा अपने बूढ़े कानों से यह बात सुनकर मन-ही-मन कहने लगे, 'मैं कफ़न नहीं चादर ही बना रहा हूँ रे। देखो, मेरी सुई में धागा तो है न तुम तो बिना धागे की सुई से अपनी चादर बुन रहे हो, हुँह, सिल जाने के भ्रम में चुभते रहने का छल ये छल करते-करते खुद अपने ही हाथों से छलनी हुए जा रहे हो तुम, और मुझे कह रहे हो कि मैं मर जाऊँगा। अरे सारा संसार मर जाए तब भी मैं नहीं मरने वाला, मुझे तो वो जिलावनहारा मिल गया है। 'हम न मरहैं मरिहैं संसारा, हमको मिला जिलावन हारा।'

मशालधारी चले गए लेकिन बाबा के सामने बहुत-से प्रश्न छोड़ गए। बाबा ऐसे प्रश्नों से रोज ही जूझ रहे हैं। आज उन्हें लगा, ये मशाल नहीं, दुः ख की आग जल रही है, जो अँधेरे में गुमे सूरज को ढूँढ़ रही है। जब तक यह आग जलेगी तब तक किसी को चैन नहीं मिलेगा 'सब जग जलता देखिए, अपणी-अपणी आगि' सारा जग अपनी-अपनी आग में जल रहा है। दुःख धुआँ बनकर आसमान छू रहा है।

समझ नहीं आता, इससे कैसे बचें। इससे बचने के दो ही उपाय हैं, या ये आग पूरी तरह धधक उठे या पूरी तरह शांत हो जाए। लेकिन जब तक कोई मशाल फेंकने को तैयार न हो तब तक उसे कैसे समझाया जा सकता है? एक तो वो अपनी ये आग खुद जलाए रखना चाहता है और जब ज्वाला भड़कती है तो खुद रोता-तड़पता भी है। अरे, जब तुम स्वयं वहाँ से नहीं निकलना चाहोगे तब तक तुम्हें कोई नहीं बचा सकता।' बाबा चादर सिलते हुए सोच रहे हैं-'लेकिन बड़ी कृपा है राम की, मेरे जिलावन हार की जो मुझे आग में नहीं जलने देता.. एक दिन उसने मुझसे कहा था-'देखो, सारे आसमान में आग लगी है; धू-धू करके धरती पर वह आग बरसती जा रही है। सारा संसार जलकर राख हो रहा है लेकिन इसी आग में जलकर तुम कंचन हो रहे हो। तुम सोना हो न, तुम्हें राख नहीं, कंचन होना है। इस संसार में जो कूड़ा-कर्कट है, उसका राख हो जाना ही अच्छा है। जिसमें अपने अंदर की ताड़त न हो वह कब तक जिएगा, कैसे जिएगा? वो अपने अंतर्मन में बैठे फूलों की गंध से पतले राम को कैसे खोजेगा? लेकिन, कबीर, तुम चिंता मत करो मैं तुम्हें कसौटी पर परखता रहूँगा।'

अपने अंदर से उठे इस अनहदनाद को सुनकर बाबा गुनगुनाने लगे,

'आग लगी आकाश में, झरि-झरि परै अँगार।
कबिरा जल कंचन भया, काँच भया संसार।।'

चौराहे पर दो व्यक्ति बातें कर रहे हैं। बाबा अपने आँगन में बैठे उनकी बातें सुन रहे हैं। दोनों मैं-मैं-मैं मैं कर रहे हैं, मैंने ऐसा किया, मैंने ऐसा किया, मैंने ऐसा किया तू-तू कोई नहीं कह रहा है। सब अहं में डूबे हैं, वयं की परवाह किसी को नहीं। अब जहाँ मैं ही मैं है, वहाँ राम कैसे विराजेंगे! 'जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि हैं मैं नाहिं।' प्रेम की गली कितनी साँकरी है, वहाँ दो समा ही नहीं सकते, जैसे एक म्यान में दो तलवारें नहीं रह सकतीं। अरे यह 'मैं' मिट जाता तो समझ में आ जाता कि सब एक ही माटी के भाँडे हैं। कुम्हार के आँगन में सनी हुई मिट्टी रखी है। मिट्टी, मिट्टी जैसी ही दिखाई पड़ रही है। अब वह उस मिट्टी से घड़ा बनाता है, सुराही बनाता है, मूर्ति बनाता है, फिर बची हुई मिट्टी से हाथी बनाता है, चूहा बनाता है और उनमें रंग-रोगन कर देता है। अब चूहा, चूहा जैसा दिख रहा है, हाथी हाथी जैसा दिख रहा है, आदमी-आदमी जैसा दिख रहा है, घड़ा-घड़ा जैसा दिख रहा है। उन्हें देखकर यह लगता ही नहीं कि वे एक ही माटी से बने होंगे। बस, इसी भ्रम में यह मैं-मैं चलता रहता है और इसी में पूरी जिंदगी गुजर जाती है। कल वह हिरण बेतहाशा दौड़ रहा था न, सुगंध की खोज में, ऐसे ही इनमें से हर कोई दौड़ रहा है..

'लोगा भरम न भूलहु भाई,
खालिक ख़लक ख़लक महुँ ख़ालिक, पूरि रह्यो सब ठाँई।

आज बाबा की एक और चादर पूरी हो गई। अब चादर लेकर बाजार जाना है ताकि उसे बेचकर कुछ पैसे ला सकें। रोज कुआँ खोदना है रोज पानी पीना है न! घर में बच्चों के लिए भोजन की व्यवस्था तो करनी पड़ेगी। बाबा उठे और चादर बेचने हाट में निकल गए। लेकिन पूरा दिन बीत गया, आज उन्हें कोई ग्राहक नहीं मिला। शाम हो गई। लौटकर घर आने लगे। चलते-चलते रास्ते में एक आदमी मिला, वह पूछ बैठा, 'चादर कितने में दोगे बाबा?' बाबा ने पूछा, 'तुम ही बताओ, कितने में लोगे!' ग्राहक ने पहले चादर को देखा फिर बाबा को और कोई कीमत नहीं आँक पाया। कुछ लज्जित होकर फिर बोला, 'आप ही बता दो बाबा, कितने में दोगे।' बाबा ने फिर कहा, तुम ही बता दो कितने में लोगे। 'ग्राहक ने चादर की कीमत बताई बाबा ने हँसकर कहा, लो, ले जाओ।' ग्राहक ने बाबा को पैसे दिए और चादर लेकर आगे बढ़ गया। लेकिन बाबा ने उसे फिर पुकारा, 'सुनो!' ग्राहक ने पीछे मुड़कर देखा। सोचा, शायद पैसे के लेनदेन में कुछ गड़बड़ी हो गई है। वह बाबा के पास आया। बाबा ने कहा, 'सुनो, मैंने केवल यह कहने के लिए तुम्हें बुलाया था कि इस चादर को बड़े जतन से ओढ़ना क्योंकि इसके तार-तार में मैंने राम को बुन दिया है। ध्यान रखना, बड़े जतन से ओढ़ना, हैं।' ग्राहक हतप्रभ खड़ा है। कभी चादर को देखता है कभी बाबा को।

अर्धरात्रि का समय। बाबा अचानक चौंक कर नींद से उठे, पसीने से तरबतर। आज उन्होंने एक अद्भुत स्वप्न देखा था। उन्होंने स्वप्न में देखा कि वे नमक का पुतला बनकर समुद्र के किनारे खड़े हैं। नमक का पुतला और अहंकार इतना कि समुद्र की थाह लेना चाहता है। तो नमक का अहंकारी पुतला आखिर समुद्र की उफनती लहरों में कूद ही पड़ता है। फिर क्या था, नमक का पुतला समुद्र में गहरा उतरने लगा और समुद्र भी नमक के पुतले में गहरा उतरने लगा। कुछ देर बाद नमक के पुतले को लगा कि वह समुद्र ही होता जा रहा है। फिर कुछ और गहराई में जाने पर लगा, अरे, मैं तो वही हूँ, जो पहले भी था। आखिर धीरे-धीरे नमक का पुतला समुद्र हो गया। बाबा ने देखा, नीचे तल पर मणि-माणिक्य, हीरे-मोती, रत्न-प्रवाल बिखरे पड़े हैं। वे घबराकर वापस तट पर आना चाहते हैं, लेकिन सारा प्रयास व्यर्थ...बस, तट पर खड़े दो व्यक्तियों की आवाजें उनके कानों में सुनाई पड़ रही हैं। एक कह रहा है, 'नमक का पुतला समुद्र में समा गया।' दूसरा कह रहा है, 'शायद समुद्र ही नमक के पुतले में समा गया।' बाबा चौंक कर नींद से उठ पड़ते हैं, अपनी चादर को छूते हैं और गुनगुनाने लगते हैं-

'कहहिं कबीर पुकारि के, ई ले ऊ व्यौहार।'
'राम नाम जाने बिना, बूढ़ि गया संसार।।' (बीजक/रमैनी/1)

आज बाबा गुरुदेव रामानंद के साथ गंगा नहाने पहुँचे हैं। गंगातट पर बड़ी भीड़ है। गुरुदेव स्नान कर रहे हैं। बाबा स्नान करके एक खाली तख्त पर बैठे गुरुदेव की प्रतीक्षा कर रहे हैं। बाबा गहरे चिंतन में डूबे हैं। वे आसपास खड़े सैकड़ों स्नानार्थियों को बड़े ध्यान से देख रहे हैं। उन्हें वही बात याद आती है, मालिक खलक-खलक महुँ खालिक इतनी बड़ी भीड़ में इस सत्य को कहते तो सभी हैं पर समझता कोई बिरला ही है। असल में हम जितना जानते हैं न, उतना ही समझ पाते हैं। उससे अधिक समझने की हममें क्षमता भी नहीं। तभी गुरुदेव स्नान करके बाबा के पास आकर पूछने लगे, 'क्या सोच रहे हो कबीरा? फिर उलझ गए निराकार में?' कबीर कुछ संकुचित होकर बस इतना ही बोले, 'कुछ नहीं गुरुदेव। बस यही देख रहा हूँ, वह निराकार कितने आकारों में बैठा है।'

'जो तुम देख रहे हो, उसे और भी समग्रता में देखो वत्स।' गुरुदेव ने कहा, 'देखो, तुम्हारे अंदर जो निराकार है न, वही लोगों की इस भीड़ में नराकार हो गया है। गंगा के पानी में वही निराकार है और तुम्हारे हृदय की तरह ऊपर समस्त आकाश में वही निराकार स्वरूप में बैठा है। तुम जहाँ, जिस रूप में उसे खोजोगे, वो वहीं उसी रूप में उपस्थित है। हाँ, लोग उसे लेकर कई बातों में उलझे रहते हैं। कोई कहता है वो है; कोई कहता है नहीं है; कोई कहता है, है भी और नहीं भी है; कोई कहता है नहीं, नहीं, बिल्कुल नहीं है। हमारे विचार और विश्वास चाहे जो हों, इस तरह हम चल, स्थिर, उभय और अभावरूप में उसी परमात्मा को ही देखते हैं। फिर जिसकी जैसी दृष्टि उसकी वैसी सृष्टि। इसी को 'नेति-नेति' कहा जाता है और इससे भी बड़ा सच तुमने कहा न कि जो जितना जानता है, वो बस उतना ही समझ पाता है। और आदमी जान भी तभी पाता है जब वह स्वयं आदमी को जनाता है और जानने के बाद जाननेवाला भी उसी की तरह हो जाता है।'

बाबा गद्‌गद भाव से गुरुदेव का दमकता मुखमंडल देख रहे हैं वे सोच रहे हैं-

'सो है कहै तो है नहीं,
नाहीं कहै तो है;
है-नाहीं के बीच में,
जो है सो है।'

बाबा कबीर मन में ऐसे समा गए हैं कि उनसे जुड़े किसी एक प्रसंग की याद करो तो दूसरे कई संदर्भ आँखों के सामने चलचित्र की तरह चलने लगते हैं। जो कुछ अभी तक हमने उनके बारे में देखा है, पढ़ा और सुना है, वह उनके हर नए प्रसंग के साथ छोटा हो जाता है। बाबा कबीर को मैं अपनी प्राथमिक कक्षा से पढ़ रहा रहा हूँ और हमेशा यह सोचता हूँ कि उन्हें मैंने जान लिया है, समझ लिया है। पर जैसे-जैसे आयु बढ़ती है, अनुभव होता है कि बाबा और उनके साखी, सबद, रमैनी, बीजक मेरे साथ-साथ बड़े होते जा रहे हैं। ऋग्वेद में पुरुष-सूक्त का एक मंत्र है, सहस्त्रशीर्षा पुरुष: सहस्त्राक्ष: सहस्त्रपात सहस्त्र शीर्ष वाले उस विराट पुरुष के सामने कोई उपमान नहीं ठहर पाता। वह हमेशा हर उपमान से दशांगुल बड़ा हो जाता है। कबीर भी अपनी हर रचना के साथ मुझे कुछ और बड़े लगने लगते हैं। मुझे लगता है, मीरा, तुलसी, सूर की तरह कबीर भी अपनी कविता से भी कहीं बहुत बड़े थे। वे केवल कवि नहीं थे, केवल कविता नहीं करना चाहते थे, उन्होंने कविता को लिखा नहीं, उसका साक्षात्कार किया और जो कुछ कहा, वह कविता में केवल इसलिए कहा कि उसे कविता के अलावा और किसी माध्यम से कहना संभव ही नहीं था। जो उनकी 'आँखन की देखी' है, जो कुछ कवि ने अंतर के नैनों से देखा है, उसे कई बार कहना बहुत कठिन हो जाता है। वाणी के नेत्र नहीं है और नेत्रों की वाणी नहीं है। बस, उसे तो मन में गुनकर, होठों से गुनगुना कर और चादर में बुनकर ही जैसे-तैसे संतोष किया जा सकता है। इसीलिए उनकी झीनी चदरिया के साथ उनका गुनगुनाना देश-देशांतर के जनमन में इस तरह पहुँच जाता है कि दैनिक प्रार्थना का अंग बन जाता है।

हमारी कविता ही प्रार्थना बन जाए, इससे बड़ी उपलब्धि और क्या हो सकती है? फिर कबीर तो किसी गुरुकुल या पाठशाला गए भी नहीं थे। मसि-कागद को उन्होंने छुआ भी नहीं था, इसलिए वे 'कागद की लेखी' नहीं, 'आँखन की देखी' कहा करते थे। कुछ लोग कबीर को हठयोगी मानते हैं, पर वह हठयोगी नहीं, सहज योगी थे-'साधो, सहज समाधि भली।' उनके सहजयोग में उनके व्यक्तित्व की सहजता स्पष्ट दिखाई पड़ती है, जिसमें लय भी है, यति-गति और ताल भी है। यदि पंडित हजारी प्रसाद द्विवेदी और पंडित कुमार गंधर्व के व्यक्तित्व को आपस में मिला दिया जाए तो कबीर को एक सीमा तक समझा जा सकता है। पंडित कुमार गंधर्व तो जैसे उनके सांगीतिक पुनरावतार ही थे। कबीर ने अनहद कहा और पं. कुमार गंधर्व ने अनहद गाया। उनकी हर रचना में परमात्मा के दर्शन की तड़प है, आत्मसाक्षात्कार की ललक है, उनकी कविता तुलसी की तरह 'अन्तस्तम:शान्तये' अर्थात् अपने अंतर्मन के अंधकार की निवृत्ति के लिए स्वयं को रच रही है। कबीर कविता गढ़ते हैं और उन्हीं क्षणों में उनकी कविता भी कबीर को गढ़ रही है। इसके अलावा कबीर को और कोई परवाह भी नहीं है क्योंकि उनके पास छोड़ने के लिए भी कुछ नहीं है। जो मिल सकता था, वह उन्हें सब मिल गया है और वह डंके की चोट पर कहते हैं कि 'जो मुझे मिला है वह सबको मिल सकता है।' इतना सच्चा और निश्छल हृदय कि परमात्मा स्वयं उस

हृदय में आकर उतर जाए, यही कबीर की सर्वोच्च उपलब्धि है। यही कारण है कि बनारस से पंजाब तक, बंगाल से दक्षिण तक हर जगह कबीर किसी-न-किसी रूप में उपस्थित मिल जाते हैं। पंजाब में तो वे गुरुग्रंथ साहिब के प्रमुख स्वर में विद्यमान हैं। सारे उत्तर भारत की लोकबोलियों में भी कबीर अपनी-अपनी तरह अभिव्यक्त होते हैं। जब कोई पंजाबी में कबीरा कहता है तो कबीर पंजाब के हो जाते हैं, जब कोई निमाड़ी में गाता है तो वह निमाड़ के हो जाते हैं, जब कोई बुंदेली में गाता है तो कबीर ठेठ बुंदेलखंडी लगने लगते हैं और जब कोई छत्तीसगढ़ में उन्हें गाता है तो कबीर छत्तीसगढ़िया हो जाते हैं। जहाँ जैसा रंग मिला कि कबीर वैसे ही रंग में रँग गए। इसलिए वे कालजयी हैं। उनकी निर्गुण वाणी की अंतर्धारा लोगों के हृदय में इसीलिए सतत् प्रवाहित होती है। कबीर की वाणी में गंगा, रेवा, शिप्रा सभी सभी के जल का स्वाद है। चादर बुनते-बुनते उनकी अंतर्दृष्टि इतनी पैनी हो गई है कि उनकी 'झीनी-झीनी चदरिया' मृत्यु से भी जैसे अमृतघट छीन लेने का साहस रखने लगी है। अपनी चादर के तार-तार में राम को बुनकर कबीर विश्वजीवन में हर जगह जैसे किरण-किरण बिखरने का सामर्थ्य अर्जित कर चुके हैं। उनकी मंत्र-पूत वाणी मृत्यु को भी उत्सव में बदल देती है। कबीर ने अपनी 'झीनी-झीनी चदरिया' क्या बुनी, बुनकरी की परंपरा को भी एक नया अर्थ प्रदान कर दिया।

आज हम डिजिटल-युग में जी रहे हैं, जहाँ सूचना ही ज्ञान का स्थान लेने लगी है। लेकिन इस सतही मानसिकता के युग में बहुत-सी चीजें अप्रासंगिक होने लगी हैं। लेकिन फिर भी, हमेशा प्रकृति में कुछ-न-कुछ ऐसा विद्यमान अवश्य रहता है जो सदैव प्रासंगिक बना रहता है। आज भी सूरज उसी तरह निकलता है, उसी तरह डूबता है; समुद्र उसी तरह लहराता है, बादल उसी तरह गरजते हैं जैसा हजारों-हजार वर्ष पहले हुआ करता था। यदि आज हम यह सोचते हैं कि सूचना-क्रांति के युग में हम कबीर को कंप्यूटर के किसी एक कोने में 'सेव' करके रख समझ लेंगे। तो ऐसा संभव नहीं। कबीर जब भी हमारे घर आएँगे, हमारे हृदय में आए बिना नहीं रहेंगे। फिर वे किसी एक कोने में नहीं, जीवन के कोने-कोने तक पहुँच जाएँगे। और ऐसा केवल इसलिए कि कबीर जिस युग में जी रहे थे वह राजनीतिक और सामाजिक अस्थिरता तथा चुनौती का चरम युग था। उस युग में कबीर ने डंके की चोट पर अपना सच कहा। वैसे तो सच कहने के लिए हर समय, हर युग कठिन होता है लेकिन कबीर के युग में तो यह और भी कटीले तारों से घिरा हुआ था। उसे युग में कबीर ने अपनी 'आँखन की देखी' कहकर जिस सत्य का उद्घोष किया उसे अपने प्राणों की कीमत पर किया और हमें यह बताया कि कभी भी सत्य से समझौता मत करो क्योंकि जो व्यक्ति, जो समाज, जो राष्ट्र सत्य का साहस खो देता है वह जीते-जी मरने लगता है। इसलिए, बनारस के किसी लहरतारा-सरोवर में खिले पद्मपुष्प पर बरसती सूर्य की किरणों से कबीर भले ही जन्मे या न जन्मे हों, पर उन्हें समझने के लिए हमें अपने 'घूँघट के पट' खोलने ही होंगे।

ई-120, शिक्षक कॉलोनी,
छिंदवाड़ा -480001 (म.प्र.)
मो. - 9893025431

विशेष अनुरोध

सम्मानित सदस्यों से विनम्र अनुरोध है कि सदस्यता शुल्क मनीआर्डर, आर.टी.जी.एस / एन.ई.एफ.टी, आदि ई-बैंकिंग माध्यमों से भेजने के पश्चात् एक पोस्ट-कार्ड पर अपना पूरा नाम-पता, पिन कोड नम्बर सहित लिखकर 'अक्षरा' कार्यालय को अवश्य सूचित करें। ताकि पत्रिका प्रेषित करने / मिलने में होने वाली असुविधा से बचा जा सके।

बैंक, खाता संख्या निम्नवत् है-

Ac/ No. 50413818696, IFSC- IDIB000T610

इंडियन बैंक, हिन्दी भवन शाखा, भोपाल

मैला आँचल के सांस्कृतिक निहितार्थ

– अरुणाभ सौरभ

जन्म – 9 फरवरी 1985।
शिक्षा – एम.ए., बी.एड., पीएच.डी.।
रचनाएँ – बारह पुस्तकें प्रकाशित।
सम्मान – भारतीय ज्ञानपीठ सम्मान सहित अनेक सम्मान।
विशेष – अनुवाद में कार्य।

फणीश्वरनाथ रेणु का 'मैला आँचल' हिन्दी का बहुपठित, बहुधा प्रशंसित और बहुचर्चित उपन्यास है। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास में जो गरिमा मैला आँचल को प्राप्त हुई वह हिन्दी की दूसरी किसी कृति को नहीं। रेणु जी की किसी कृति को मैला आँचल जैसी ख्याति नहीं मिली। मेरी नजर में परती परिकथा, मैला आँचल से ज्यादा व्यवस्थित उपन्यास है मगर मैला आँचल की ख्याति इतनी हुई कि रेणु जी के सभी उपन्यास कहीं न कहीं दब गए। साथ ही रेणु जी के अक्षय कीर्ति आधार सिद्ध हुआ–मैला आँचल। अभाव, गरीबी और बुनियादी सुविधाओं से वंचित मिथिला समाज का कोना–कोना रेणु ही झाँक सकते थे और इसी क्षमता के साथ मैला आँचल का सृजन हुआ है।

आजादी के बाद के भारतीय समाज का जैसा जीवंत चित्रण रेणु ने किया है वह भारतीय साहित्य में दुर्लभ है। मैला आँचल भारतीय उपन्यास का प्रतिमान रचता है। इस उपन्यास की सफलता का कारण भारतीय गाँवों का वह यथार्थ है जिसकी परतें रेणु जी ही खोल सकते थे और उन्होंने खोला भी है। लोक जीवन, लोक आस्था और ग्रामीण समाज का ऐसा दुर्लभ चित्र हिन्दी ही नहीं समग्र भारतीय साहित्य में अनुपस्थित है। इस उपन्यास में मिथिला के गाँव की कथा है। वह गाँव जो आजादी के बाद भी विकास की मुख्यधारा से सर्वथा कटा हुआ है। मैला आँचल सांस्कृतिक भूगोल को समग्रता में और समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण के साथ रचने वाली कृति है जिसका सांस्कृतिक भूगोल मिथिला है। उस मिथिला के विपन्न समाज का सांस्कृतिक कोलाज है–मैला आँचल।

रेणु ने स्वयं इस उपन्यास को आंचलिक उपन्यास कहा है। 'यह है मैला आँचल, एक आंचलिक उपन्यास। कथांचल है पूर्णिया। पूर्णिया बिहार राज्य का एक जिला। मैंने इसके एक हिस्से के एक ही गाँव को पिछड़े गाँवों का प्रतीक मानकर इस किताब का कथाक्षेत्र बनाया है।' **(मैला आँचल, राजकमल प्रकाशन-भूमिका)** एक अंचल विशेष की सभ्यता–संस्कृति और इतिहास की तहों में जाकर लोकवृत्त का समूचा ताना–बाना बुनना उपन्यासकार की मंशा है। इन सबके केन्द्र में मिथिला है, मिथिला का छोटा सा गाँव–मेरीगंज और उसके आस–पास के गाँव है। इस गाँव को केन्द्र में रखकर समूचे बदलते भारत के गाँव को देखना लेखक का दृष्टिकोण है। यहाँ मिथिला समाज अपनी तमाम खूबियों और खामियों के साथ दर्ज हुआ है। कहीं भी कुछ भी दिव्य या भव्य जैसा कुछ नहीं है। जो है उसे यथावत् प्रस्तुत करना रेणु की ताकत है और उस यथातथ्य के विवेचन में भी लेखक की ईमानदार पहल है। यह ईमानदार लेखन ही रेणु को एक व्यापक संस्कृति चिंतक का स्वरूप देता है। रेणु के ही शब्दों में –

'पूर्णिया जिलादेशी–विदेशी जमीन्दारों का गथा। अंग्रेज जमीन्दारों के नाम पर कई गाँव और कस्बे बने हुए हैं। फोर्ब्स साहब के नाम पर फोर्ब्सगंज (फारबिसगंज), एक साहब की मेम के नाम पर मेरीगंज। कई राजे, दर्जनों 'कुमार' और बहुत से नवाबों के गढ़ और हवेलियाँ आज भी मौजूद हैं। जिले में ऐसे भी बड़े–बड़े किसान हैं जिनके पास दो–दो हवाई जहाज हैं और दूसरी ओर वहीं पचहत्तर प्रतिशत भूमिहीन अभी भी बड़े, छोटे और मझोले किसानों के शोषण के लिए मौजूद हैं।' **(एक साक्षात्कार में, रेणु रचनावली -4, पृ. 421)**

गौरतलब है कि मिथिला का ग्रामीण समाज आजादी के बाद आजतक मुख्यधारा से कटा है। बाढ़ आज भी केन्द्रीय समस्या है। विकास की तथाकथित मुख्यधारा से इस समाज का जीवन बिल्कुल कटा हुआ है। मिथिला के विपुल सांस्कृतिक भंडार की पहचान और जो पड़ताल रेणु करते हैं, वह भारतीय साहित्य में दुर्लभ है। कथानक के केन्द्र में पूर्णिया है। पूर्णिया मिथिला क्षेत्र का एक महत्त्वपूर्ण जिला है, संभाग है। वह पूर्णिया जहाँ गरीबी–यथावत और भुखमरी के बीच भी

धूल-धूसरित भूमि की असंख्य लोक कथाएँ पल रही होती हैं; उन कथाओं को एकीकृत कर तात्कालीन समाज का स्वरूप प्रस्तुत करना रेणु की इच्छा है। इसीलिए इस सांस्कृतिक लोकवृत्त के साथ-साथ उपन्यास में मिथिला समग्रता में दर्ज है। रेणु के उपन्यासों की कलात्मकता पर अज्ञेय जी ने लिखा-'रेणु के उपन्यासों में गाँवों की समस्त बुराई, कमीनगी और गलाजत के बीच एक अखंड मानवीय विश्वास की चिंगारी सुलगती दिखती है।' **(फणीश्वरनाथ रेणु : साहित्य चिंतन, रचना विवेक और कथा दृष्टि-रामनिहाल गुंजन, आलोचना, 64)**

रेणु की भाषा सर्वथा विरल है। रेणु ने मैथिली भाषा में भी लिखा है। कुछ कहानियाँ और कुछ संस्मरण रेणु ने मैथिली में लिखे हैं। रेणु की घर की भाषा, अपने बच्चों में पत्राचार की भाषा मैथिली रही है। उपन्यास और कथा साहित्य में रेणु ने उस मैथिली के टोन को हिन्दी पर उतारकर अलग मिश्रित और मीठी भाषा का ईजाद किया है। मेरीगंज, पूर्णिया और मिथिला के ही नहीं भारत के किसी गाँव की यह कथा हो सकती है। पर जहाँ की यह कथा है उसमें यही मिथिला अपनी संपूर्ण सांस्कृतिक चेतना के साथ उपस्थित है। जहाँ गरीबी है, भुखमरी, अंधविश्वास, शोषण और अशिक्षा है-उस गाँव और इलाके के लोग अपने जीवन को उल्लासमय ढंग से जी लेते हैं जो एक सकारात्मक संकेत है। इन सब पर रेणु की नजर है। एक बारीक दृष्टि और पैनी नजर जिससे लेखक बदलते गाँव को ताक रहा है।

इतिहासकार सदन झा ने लिखा है :-'रेणु के गाँव को और उनके शिल्प को यदि समझना है तो आधुनिकता के समय केन्द्रित विमर्श से बाहर आना होगा। देश को देखने की तकनीक से अपने को दूर हटाना होगा। यहाँ साहित्य और गाँव की अन्त:क्रिया को परिभाषित करने के लिए नए सवाल गढ़ने होंगे। समय के बदले केंद्र में जगह और उसकी स्थानिकता को रखना होगा। देश के एबस्ट्रेक्ट स्पेस की जगह प्लेस की बात करनी होगी। रेणु का लेखन हमें ले जाता है राष्ट्र से प्रांत की ओर। एक प्रांत जो आधुनिक के साथ-साथ अपनी विरासत का भी इस्तेमाल कर रहा है। किसी और समय में नहीं अपने समकालीन समय में अपनी शर्तों पर। यह इच्छित समय है जो आधुनिकता भी चाहता है, विकास भी चाहता है। खुला अतीत और उसकी स्मृति भी। **(समय के बदले जगह और राष्ट्र के बदले प्रांत : रेणु और आंचलिक आधुनिकता, देवनागरी जगत की दृश्य संस्कृति का अध्याय, सदन झा)**

मैला आँचल में मिथिला के लोकगीत, लोककथाएँ, लोकपर्व, लोकपात्र, लोकचरित और लोकवृत्त का समूचा कोलाज उपस्थित हुआ है। बाढ़, विस्थापन और गरीबी की तरफ भी लेखक ने ध्यान आकृष्ट किया है। एकाध जगह ध्यान एक किताब को पढ़ने से आपके मिथिला समाज की संपूर्णता का अध्ययन हो जाए, वैसी किताब है-मैला आँचल। मिथिला समाज का संपूर्ण दस्तावेज है जिसमें धूल भी है, फूल भी है और शूल भी। साथ ही मुख्यधारा से कटे हुए भी लोगों का संपूर्ण आख्यान है-मैला आँचल! उस आख्यान में आजाद भारत का एक गाँव अपनी संपूर्ण सांस्कृतिक चेतना के साथ मौजूद है। नलिन विलोचन शर्मा को इस उपन्यास को आलोचना की मुख्यधारा में लाने का श्रेय है। इस उपन्यास की पहली समीक्षा करते हुए नलिन विलोचन शर्मा ने लिखा-'हिन्दी के उपन्यास साहित्य में यदि गतिरोध था, तो इस कृति से वह हट गया है।' **(5 एवं 6 फणीश्वरनाथ रेणु व्यक्तित्व और कृतित्व, भारत, पृ.72-74)** नलिन जी लिखते हैं- 'मैला आँचल फणीश्वरनाथ रेणु का प्रथम उपन्यास है। यह ऐसा सौभाग्यशाली उपन्यास है कि लेखक की प्रथम कृति होने पर भी उसे ऐसी प्रतिष्ठा प्राप्त करा दे कि वह चाहे तो कुछ और न ही लिखें। मैंने इसे 'गोदान' के बाद हिंदी का वैसा दूसरा महान उपन्यास माना है। इसके लेखक को चित्रणीय जीवन का आत्मीयतापूर्ण ज्ञान है, व्यापक दृष्टि है, परकाया-प्रवेशवाली उपन्यासकारोचित सामर्थ्य है और सर्वोपरि है, चित्रांकन के समय एकांतिक तटस्थता और निर्लिप्तता बनाए रखनेवाली कलाकारोचित प्रतिभा! रेणु ने अपने हृदय की सारी ममता और करुणा उड़ेलकर ही अपने गाँव और वहाँ रहने वालों को जाना होगा। मैं यहीं यह भी कह दूँ कि अपनी संपूर्णता में काव्य का प्रभाव उत्पन्न करनेवाले इस उपन्यास में यही वह अधिक से अधिक कवितापन है, जिसकी छूट लेखक ने अपने को दी है। मैला आँचल केवल आंचलिक ही नहीं है। अनगिनत गरीब और धनी, अशिक्षित और उच्च शिक्षित, स्त्री और पुरुष पात्रों से संकुल हुए उपन्यास का चित्रित जीवन किसी स्थल में अविश्वसनीय नहीं होता-वहाँ भी नहीं, जहाँ नाटकीय घटनाएँ घट जाती हैं-क्योंकि लेखक ने उस सत्य का चित्रण अपना लक्ष्य रखा है जो कभी-कभी गल्प में भी सचमुच ही विचित्रतर होता है।'

रेणु की पूरी आस्था भारतीय समाजवाद में रही। जयप्रकाश नारायण से उनकी नजदीकी किसी से छिपी नहीं है। रेणु ने नेपाली समाजवादी क्रांति में कोइराला परिवार के साथ मिलकर लड़ाई लड़ी। उस भारतीय समाजवादी अवधारणा के साथ लेखक पूरे उपन्यास में उपस्थित है। एक जगह स्वयं पात्रों के बीच लेखक औराही हिंगना का सोशलिस्ट

बनकर उपस्थित होता है।

मैला आँचल जैसा उपन्यास हिन्दी में दोबारा नहीं लिखा गया। कुछ लोगों ने इस उपन्यास पर शचीनाथ भादुड़ी के बांग्ला उपन्यास ढोडाइचरित मानस की नकल का आरोप मढ़ दिया। जिन लोगों ने भादुड़ी का उपन्यास और मैला आँचल दोनों पढ़ा है वही वास्तविक अंतर को रेखांकित कर सकते हैं। मैला आँचल से पूर्व बांग्ला के कई महत्त्वपूर्ण उपन्यास मिथिला समाज के यथार्थ को रेखांकित करते हैं। इसका यह अर्थ नहीं कि मैला आँचल उन सबकी नकल है। तेलुगु साहित्य में अल्लम राजेय्या ने तेलंगाना के किसान आंदोलन को केन्द्र में रखकर उसी तरह का स्थानीय संस्कृति को केन्द्र में रखकर उपन्यास लिखा। काटीपट्टनम रामाकांत ने उत्तरी समुद्री आंध्रभाषा में तेलुगु का महत्त्वपूर्ण उपन्यास लिखा। इसका यह अर्थ यह नहीं कि इन उपन्यासों पर मैला आँचल का प्रभाव है।

नेमिचन्द्र जैन ने लिखा है– 'निस्संदेह उसने हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में न केवल नई मान्यताओं की प्रतिष्ठा की है, बल्कि नए दिशाएँ खोल दी हैं, नई सम्भावनाओं के क्षेत्र उजागर कर दिए हैं।' **(अधूरे साक्षात्कार – नेमिचन्द्र जैन, पृ. 39)**

मैला आँचल मिथिला के लोकजीवन का महाकाव्य है। इस महाकाव्य का केन्द्रीय रस करुण है। यह रस जीवन के परिपाक से निर्मित हुआ है, जहाँ अतिंम साँस तक जीने की तमीज़ है और जिंदगी। यह पूर्णिया को समझने और जानने का दस्तावेज है। यह मिथिला की चन्दनवर्णी धूल से निर्मित धूल भरा मैला सा आँचल है जिसमें भारत माता जार–बेजार हो रही है। जहाँ बारहों बरन की स्थिति जार–बेजार है। जहाँ एक कवि है–विद्यापति। उस विद्यापति के गीतों को लोकसंस्कृति में पिरोकर विदापत नाच की परंपरा है। सहरसा के गैनू मिरदंगिया का चेला है। मृदंग की थाप है, झाल है, करताल है, कीर्तन है, नटुआ नाच है। उन सभी सांस्कृतिक प्रतीकों को रेणु ने मजबूती से उकेरा है। और है एक पूर्णिया अब अररिया जिला और उसका मेरीगंज! वह पूर्णिया जो बुनियादी चीजों से कटा हुआ, जहाँ मलेरिया सेंटर का खुलना एक ऐतिहासिक घटना सिद्ध हुआ है। साथ ही कई प्रेम कहानी इसके इर्द–गिर्द बनती हैं। विनोद तिवारी लिखते हैं–'तो यह है 'मैला आँचल' के शुरू होने की कहानी। एक प्रेम कहानी। प्रशांत और कमली की प्रेम कहानी। और इस प्रेम कहानी के भीतर, इर्द–गिर्द न जाने कितनी प्रेम कहानियाँ। ममता और प्रशांत की कहानी। बालदेव और लछमी की कहानी। मंगला और कालीचरण की कहानी। खलासी बाबू और फुलिया की कहानी। फुलिया और सहदेव मिसिर की कहानी। और इन सबसे पुरानी कहानी अंग्रेज नीलहे साहब मार्टिन और गोरी मेम मेरी की कहानी।' **(मैला आँचल में प्रेम और काम–विनोद तिवारी, संवेद जुलाई, 2020)**

मैला आँचल में मिथिला की जीवंत लोक संस्कृति का बिन्दुवार विश्लेषण करें तो हम पाते हैं –

• मैला आँचल में मिथिला के लोकगीत, लोकनृत्य, लोक कलाओं की पूरी हड़ताल है।

• मैला आँचल में मिथिला की संस्कृति का सम्पूर्ण वितान खींचा गया है।

• स्थानीय व्यंजनों, ध्वनियों, लोककथाओं और लोककलाओं की अनुगूँज है।

• स्थानीय धुनों की यात्रा है और वाद्ययंत्रों की ध्वनियाँ भी।

• मैथिली की छाप पूरे उपन्यास के विन्यास का विस्तार है। भाषा यहाँ मैथिली मिश्रित हिन्दी है। जिससे वाक्य विन्यास में मधुरता आती गई है। साथ ही स्थानीय मुहावरों की प्रचुरता है।

• मैला आँचल मिथिला की संस्कृति का समूचा इनसाइक्लोपीडिया है।

• लेखक उपन्यास की शक्ल में उसे भंग नहीं करता बल्कि उपन्यास को समूचे सांस्कृतिक प्रतीकों से भर देता है।

• मिथिला की संस्कृति के चित्रण में लेखक का दृष्टिकोण आलोचनात्मक है।

• पूरे उपन्यास में मिथिला का रचनात्मक चित्रण प्रस्तुत करना लेखक का धर्म है।

• स्थानीय समाज की हर जातियों और धर्म की समस्त मान्यताओं को प्रस्तुत करने में लेखक ने कोई कोर–कसर नहीं छोड़ी है।

• संस्कृति के प्रति लेखक का नजरिया समाजवादी है और तदनुरूप उसको कथानक में पिरोता जाता है।

• मैला आँचल हिन्दी उपन्यास में मील का पत्थर है जिसके केन्द्र में मिथिला की समस्त उपलब्धियों, सीमाओं और क्षुद्रताओं का यथातथ्य विवरण प्रस्तुत किया गया है।

मैला आँचल संस्कृति के सामाजिक पक्षों को पूरी तन्मयता से प्रस्तुत करता हुआ उपन्यास है। यहाँ उपस्थित मिथिला के लेखक के लिए ऑब्जरवेशन टूल है जिसमें धूल है, फूल है और शूल भी। यह

संस्कृति का सामाजिक पक्ष आईने के रूप में हमारे सामने उपस्थित है। रेणु के पात्र सीधे-सरल और भोले-भाले हैं तो शातिर भी। आजादी के बाद के भारत के गाँव के लोगों की मानसिकता को रेणु ने समझा है। यही कारण है रेणु जी पूरे उपन्यास के सांस्कृतिक दृश्यों और बिम्बों से भर देते हैं। यह दृश्य बिम्ब हमारी आँखों के आगे नाचता हुआ चलता है। इस चलने में गति है, लय है और यति भी। लेखक फणीश्वरनाथ रेणु इस चलने से समझते हैं। उस समझ के आधार पर रेणु का पूरा कक्षा संसार निर्मित होता है। उस कथा संसार में हाशिये के लोगों की संस्कृति अपनी चेतना के साथ उपस्थित है।

कथाकार निर्मल वर्मा विशिष्ट सौंदर्य-बोध के कारण रेणु को संत कथाकार मानते हैं- 'हाँ मैं संत शब्द का उसके सबसे मौलिक और प्राथमिक अर्थों में इस्तेमाल कर रहा हूँ। एक ऐसा व्यक्ति जो दुनिया की किसी चीज को त्याग और घृणास्पद नहीं मानता-हर जीवित तत्व में पवित्रता और सौंदर्य और चमत्कार खोज लेता-इसलिए नहीं कि वह इस धरती पर उगने वाली कुरूपता, अन्याय, अँधेरे और आँसुओं को नहीं देखता बल्कि इन सब को समेटने वाली अबाध प्राणवत्ता को पहचानता है, दलदल को कमल से अलग नहीं करता, दोनों के बीच रहस्यमय और अनिवार्य रिश्ते को पहचानता है। सौंदर्य का असली मतलब मनोहर चीजों का रसास्वादन नहीं बल्कि गहरे अर्थों में चीजों के पारस्परिक सार्वभौमिक दैवी रिश्ते को पहचानना होता है, इसलिए उसमें एक असीम साहस और विवेक तथा विनम्रता छिपी रहती है।' **(समग्र मानवीय-दृष्टि-निर्मल वर्मा, रेणु : संस्मरण और श्रद्धांजलि, संपादक, प्रोफेसर राम बुझावन सिंह, रामवचन राय, पृ. 12)**

हिन्दी आलोचना के समकालीन महत्त्वपूर्ण आलोचक विनोद तिवारी लिखते हैं- 'गोदान' की तरह से 'मैला आँचल' को भी समाज-विज्ञान के कई विद्वानों ने समाजशास्त्र के विद्यार्थियों के लिए एक उपयोगी किताब के रूप में संस्तुत किया है। मैंने इस लेख में 'मैला आँचल' की पूरी कथा को-प्रेम, काम और देश-कथा के रूप में प्रस्तावित और विश्लेषित करने का प्रयास किया है। देश-भावना, स्वतन्त्रता-समीक्षा, राजनीतिक यथार्थ, आंचलिकता, आदि का विवेचन तो खूब किया गया है। परंतु प्रेम और काम भावना के साथ स्त्री-पुरुष सम्बन्धों के आलोक में ग्राम्य समाज और उसके मनोविज्ञान और साथ ही साथ लिंग भेद के चलते स्त्रियों पर पुंसवादी नैतिकता के आरोपण की दृष्टि से अध्ययन-विश्लेषण न के बराबर हुआ है।' **(मैला आँचल में प्रेम और काम : विनोद तिवारी, संवेद, जुलाई-2020)**

मैला आँचल के तमाम पक्ष-विपक्ष पर हिन्दी आलोचना में पर्याप्त वाद-विवाद-संवाद हुए हैं। आजतक यह उपन्यास अकादमिक जगत, बौद्धिक जगत और आलोचकों के लिए पर्याप्त खुराक है जिसपर चर्चा किए बिना हिन्दी उपन्यास का कोई क्रम अधूरा होगा। चिर-परिचित आलोचक कमलानंद झा लिखते हैं -

'मैला आँचल का भारत 'अतुल्य भारत' नहीं है और न ही 'शाइनिंग इंडिया' है। यह तो भारत के भीतर का वह भारत है जहाँ जिंदगी अपनी सारी विद्रूताओं के बाद भी खूबसूरत है। मैला आँचल की भारतमाता गौरवर्णी, त्रिशूलधारी, श्वेतवसना नहीं है। इसके वस्त्र तो फटे-पुराने मिट्टी में सने हुए हैं। यह भारतमाता अपने बच्चों के साथ है, बच्चों की खुशी में खुश और बच्चों के दु:ख में दुखी। इसीलिए तो मैला आँचल की 'भारतमाता' जार-बेजार रोती रहती है।' **(मैला आँचल : लोकवृत्त का कथा आख्यान, कमलानंद झा)**

मैला आँचल की विशिष्टता उसमें व्याप्त परिवेश की सांस्कृतिक विशिष्टता है। यहाँ मिथिला का सांस्कृतिक भूगोल समग्र रूप में उपस्थित है। उस भूगोल में संस्कृति का कोना-कोना संरक्षित है। रेणु की सांस्कृतिक चेतना में आह मिथिला! या अहो मिथिला! नहीं है-लेखक उस समाज के प्रति अनावश्यक कृतज्ञता ज्ञापित नहीं करता। अपने संपूर्ण आलोचनात्मक विवेक के साथ उसका मूल्यांकन करना उचित समझता है। यही आलोचनात्मक सांस्कृतिक विवेक और जाग्रत चेतस सौंदर्यबोध रेणु को विशिष्ट बनाता है और यही आलोचनात्मक दृष्टि उन्हें हिन्दी के शीर्ष लेखकों में शामिल करने हेतु पर्याप्त है। विपन्न, सुविधाहीन समाज का अपनी संस्कृति के साथ ऐसा रागात्मक सम्बन्ध रेणु ने प्रस्तुत किया है जो रेणु को अजर-अमर बनाता है। मैला आँचल का सांस्कृतिक निहितार्थ इतना व्यापक और विराट है कि उसे हम एक समाज, एक गाँव के बहाने सम्पूर्ण देश की वस्तुस्थिति का आकलन एवं मूल्यांकन कर सकते हैं। उस मूल्यांकन से भी सास्कृतिक प्रतीकों को समझकर व्यापक सामाजिक पड़ताल कर सकते हैं।

सहायक प्राध्यापक,
सामाजिक विज्ञान एवं मानविकी
शिक्षा विभाग क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान,
एन. सी. ई. आर. टी, श्यामला हिल्स,
भोपाल-462002 (म.प्र.)
मो.-9871969360

लोकसंग्रह एवं उनकी प्रासंगिकता : श्रीमद्भगवद्गीता

- योगेश्वर कुमार साहू, भगवन्त सिंह

जन्म - 16 सितंबर 1985।
जन्म स्थान - अरमरीकला, बालोद (छ.ग.)।
शिक्षा - बी. एससी., एम.ए.।
रचनाएँ - पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित।

भारतीय ऋषियों, मनीषियों एवं महापुरुषों ने भौतिक जीवन की चकाचौंध से दूर तपोवन के शान्त वातावरण में रहकर आत्मचिन्तन किया और श्रेष्ठतम् ज्ञान प्राप्त किया। उन्होंने ज्ञान प्राप्त कर लेने के पश्चात् इसे अपने पास सहेज कर ही नहीं रखा वरन् उस ज्ञान को संपूर्ण मानव जाति को प्रदान कर समाज में फैली अज्ञानता को दूर करने का भी प्रयास किया। उनके जीवन का मुख्य उद्देश्य था समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार, कुप्रथाओं, अज्ञानता एवं अन्य विषमताओं को दूर करना। उन्होंने सभी मनुष्यों में सदाचार, सद्भावना, विश्व बन्धुत्व एवं लोककल्याण की भावना जागृत करने के लिए मानव समाज को प्रेरित किया। चाहे वह धार्मिक, आध्यात्मिक, राजनीतिक अथवा सामाजिक दृष्टिकोण से हो। श्रीमद्भगवद्गीता के मुख्य उपदेशों में से एक महत्त्वपूर्ण उपदेश 'लोकसंग्रह' भी है जिसका उद्देश्य संपूर्ण मानवजाति के मन में प्राणिमात्र के प्रति कल्याण की भावना जागृत कर देना है।

'लोकसंग्रह' मूलत: दो शब्दों से मिलकर बना है 'लोक' तथा 'संग्रह'। यहाँ 'लोक' शब्द का अर्थ अन्यान्य लोकों से न होकर संपूर्ण 'मानवजाति' से है तथा 'संग्रह' का अर्थ इकट्ठा करना, पालना, नियमन करना आदि है । इस प्रकार 'लोकसंग्रह' का अर्थ 'लोगों को एकत्र, सम्बद्ध करके इस प्रकार से उनका पालन पोषण एवं नियमन करना कि उनकी परस्पर अनुकूलता से उत्पन्न होने वाला सामर्थ्य उनमें आ जावे एवं उसके द्वारा उनकी सुस्थिति को स्थिर रखकर उन्हें श्रेय प्राप्ति के मार्ग में लगा देना।' **(तिलक, बाल गंगाधर गीता रहस्य पृ. 331)**

संसार में बहुत से ऐसे लोग होते हैं जो अपने भौतिक चरम लक्ष्य को प्राप्त करने में सफल हो जाते हैं तथा इस सफलता के साथ ही वह संतुष्ट हो जाते हैं किन्तु कुछ ऐसे लोग भी होते हैं जो परिवार, समाज एवं राष्ट्र के दायित्वों का भलीभाँति निर्वहन करते हुए 'प्राप्तस्य प्राप्तं' अर्थात् जो प्राप्त करना था, वह प्राप्त कर लेने के पश्चात् भी लोकहित के लिए जीवन जीते हैं। लोकसंग्रह, ज्ञानयुक्त कर्मयोगी की लोककल्याण की भावना से नि:स्वार्थ किया हुआ कर्म है जिसमें कर्म करने वाले का मुख्य प्रयोजन यही रहता है कि विश्व का सभी प्रकार से कल्याण हो। वह अपने व्यक्तिगत सुखों का त्याग कर, दूसरों के दु:खों को अपना समझ उसके निवारण का मार्ग ढूँढ़ता है।

श्रीमद्भगवद्गीता में लोकसंग्रह परायण पुरुष के विषय में भगवान श्री कृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि-'**नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन। न चास्य सर्वभूतेषु कश्चिदर्थव्यपाश्रय:।।' (श्रीमद्भगवद्गीता 3/18)**
अर्थात् उस महापुरुष का इस विश्व में न तो कर्म करने से कोई प्रयोजन रहता है और न कर्मों के न करने से ही कोई प्रयोजन रहता है तथा सम्पूर्ण प्राणियों में भी इसका किंचिन्मात्र भी स्वार्थ का संबंध नहीं रहता।

'तस्मादसक्त: सततं कार्यं कर्म समाचर:।
असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पुरुष:।।' (वही 3/19)
अर्थात् इसलिए तू निरन्तर आसक्ति से रहित होकर सदा कर्तव्यकर्म को भलीभाँति करता रह क्योंकि आसक्ति से रहित होकर कर्म करता हुआ मनुष्य परमात्मा को प्राप्त हो जाता है। राजा जनक एवं अन्य ज्ञानीजनों का उदाहरण देते हुए भगवान श्री कृष्ण कहते हैं कि :-

'कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादय:।
लोकसंग्रहमेवापि सम्पश्यन्कर्तुमर्हसि।।' (वही 3/20)
अर्थात् जनकादि ज्ञानीजन भी आसक्ति रहित कर्मद्वारा ही परम सिद्धि को प्राप्त हुए थे, इसलिए तथा लोकसंग्रह को देखते हुए भी तू कर्म करने के ही योग्य है अर्थात् तुझे कर्म करना ही उचित है।

'यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जन:।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ।।' (वही 3/21)
अर्थात् श्रेष्ठ पुरुष जो-जो आचरण करता है, अन्यपुरुष भी वैसा-वैसा ही आचरण करते हैं। वह जो कुछ प्रमाण कर देता है, समस्त मनुष्य समुदाय उसी के अनुसार बरतने लग जाता है। ऐसे महापुरुष संसार के लिए आदर्श बन जाते हैं जिनके कार्य-व्यवहार का अनुकरण संपूर्ण समाज करता है।

महाभारत के वन पर्व में यक्ष एवं युधिष्ठिर जी के बीच संवाद का वर्णन है जिसमें यक्ष, धर्मराज युधिष्ठिर जी से प्रश्न करते हैं जिसमें से एक प्रश्न यह भी है कि कौन सा मार्ग श्रेष्ठ है? उत्तर में धर्मराज युधिष्ठर कहते हैं कि–**'धर्मस्य तत्वं निहितं गुहायां, महाजनो येन गतः स पन्थाः।' (महाभारत के वन पर्व 3/13/315)**
अर्थात् धर्म का तथ्य अत्यंत गूढ़ है इसलिए महापुरुषों द्वारा प्रतिपादित मार्ग ही उचित होता है। महापुरुष जिस पथ पर गमन करते हैं वही श्रेष्ठ मार्ग होता है। भगवान श्रीकृष्ण श्रीमद्भगवद्गीता में आगे कहते हैं कि –

'न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किंचन।
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि।।' (श्रीमद्भगवद्गीता 3/22)
अर्थात् हे अर्जुन! मेरा इन तीनों लोकों में न तो कुछ कर्तव्य है और न कोई भी प्राप्त करने योग्य वस्तु अप्राप्त है, तो भी मैं कर्म में ही बरतता हूँ। भगवान श्री कृष्ण स्वयं ईश्वर हैं। उनके लिए तीनों लोकों में ऐसा कोई किया जाने वाला कर्तव्य कर्म शेष नहीं है तथा ऐसी कोई वस्तु नहीं है जिसे उन्होंने प्राप्त न किया हो किन्तु फिर भी वह लोकसंग्रह के लिए अर्थात् संसार के कल्याण हेतु कर्तव्य कर्म किए हैं। भगवान श्रीकृष्ण की यह शिक्षा एवं कर्म सभी सामान्य मनुष्यों के लिए प्रेरणास्रोत है।

तत्त्वज्ञानी अर्थात् मुक्त पुरुष के कर्म बन्धनकारक नहीं होते क्योंकि वह उसे अनासक्त भाव से करता है। उनका व्यक्तिगत जीवन नम्रता, शान्ति, पवित्रता तथा आनन्द से परिपूर्ण होता है। उसकी चिन्तनशीलता निष्क्रियता में नहीं रहती। कुछ ऐसे लोग हैं जो जीवन में कम से कम कर्म करते हैं 'जीवन-यात्रार्थम' और कुछ लोग 'लोकसंग्रहार्थम्' अर्थात् लोक कल्याण के लिए कर्म करते हैं। वे अनासक्त भाव से कर्म करते हैं तथा उसके सभी कर्म लोकसंग्रह के लिए ही होते हैं। उस मुक्त पुरुष में बुरे कर्म सम्भव नहीं हैं। पाप-अनैतिकता की सम्भावना स्वार्थपूर्ण कर्मों से होती है परन्तु मुक्तात्मा के पास कोई भी कार्य उद्देश्यपूर्ति के लिए शेष नहीं रहता क्योंकि वह सब कुछ प्राप्त कर चुका होता है तो भी वह संसार में लोकसंग्रह अर्थात् कल्याण की भावना से कर्म करते हैं।

भगवान श्रीकृष्ण अपने कर्तव्य पालन के विषय में अर्जुन से कहते हैं कि :-
'यदि ह्यहं न वर्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रितः।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः।।' (वही 3/23)

क्योंकि हे पार्थ! यदि कदाचित् मैं सावधान होकर कर्मों में न बरतूँ तो बड़ी हानि हो जाए क्योंकि मनुष्य सब प्रकार से मेरे ही मार्ग का अनुसरण करते हैं।
'यदि उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम्।
संकरस्य च कर्ता स्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः।।' (वही 3/24)

इसलिए यदि मैं कर्म न करूँ तो ये सब मनुष्य नष्ट-भ्रष्ट हो जाएँ और मैं संकरता का करने वाला होऊँ तथा इस समस्त प्रजा को नष्ट करने वाला बनूँ।
'सक्ताः कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वन्ति भारत।
कुर्याद्विद्वांस्तथासक्तश्चिकीर्षुर्लोकसंग्रहम्।।'(वही 3/25)
अर्थात् हे भारत! कर्म में आसक्त हुए अज्ञानीजन जिस प्रकार कर्म करते हैं, आसक्तिरहित विद्वान भी लोकसंग्रह करना चाहता हुआ, उसी प्रकार कर्म करे। इस प्रकार महापुरुषों को चाहिए कि अपने ज्ञान के द्वारा परार्थ की भावना से किए गए कर्म की ज्योति को प्रकाशित करें ताकि इस पृथ्वी पर जितने भी जीवधारी हैं सबमें प्रेम, निष्ठा, सदाचार की भावना उत्पन्न हो सके तथा सभी स्वार्थ की भावना से ऊपर उठकर लोकसंग्रह के लिए कर्म करें।

प्रकृति जगत् में भी यह स्पष्टतः दिखाई पड़ता है कि सृष्टि के प्रायः सभी तत्व प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से लोककल्याण एवं परोपकार से प्रेरित हैं। उदाहरणार्थ-सूर्य स्वयं प्रकाश का भंडार है किन्तु वह प्रकाश को अपने तक सीमित नहीं रखता बल्कि सृष्टि के कल्याणार्थ सबको प्रदान करता है। यह उसका सहज स्वभाव होता है वैसे ही महापुरुष भी लोकहित के लिए अपना जीवन जीते हैं। सुभाषितम् में कहा भी गया है –
'वृक्ष कबहुँ न फल भखै, नदी न संचै नीर।
परमारथ के कारने, साधुन धरा शरीर।।'
अर्थात् वृक्ष कभी अपना फल ग्रहण नहीं करते, नदियाँ कभी अपना जल नहीं पीतीं उसी प्रकार साधु-संत एवं महापुरुष अपना सर्वस्व जीवन एवं ज्ञान का प्रयोग परमार्थ के लिए करते हैं। अतः मनुष्य मात्र को भी चाहिए कि वह अपना जीवन आदर्शयुक्त एवं परोपकारी बनाने का प्रयास करें।

'साधु पुरुष मन में लोककल्याण करने का हेतु रख कर, लोककल्याण नहीं किया करते। जिस प्रकार प्रकाश फैलाना सूर्य का स्वभाव है, उसी प्रकार ब्रह्मज्ञान से मन में सर्वभूतात्मैक्य का पूर्ण परिचय हो जाने पर लोककल्याण करना तो इन साधु पुरुषों का सहज स्वभाव हो जाता है और ऐसा स्वभाव बन जाने पर सूर्य जैसे दूसरों को प्रकाश देता हुआ अपने आप को प्रकाशित कर लेता है, वैसे ही साधुपुरुष के परार्थ उद्योग से ही उसका योगक्षेम भी आप ही आप सिद्ध होता जाता है। परोपकार करने के इस देह-स्वभाव और अनासक्त बुद्धि के एकत्र हो जाने पर ब्रह्मात्मैक्य बुद्धिवाले साधु पुरुष अपना कार्य सदा जारी रखते हैं।' **(तिलक, लोकमान्य श्रीमद्भगवद्गीता रहस्य अथवा कर्मयोगशास्त्र. पृ. 385)**

प्रत्येक मनुष्य मे ईश्वरनिर्मित प्रकृति, स्वभाव और गुणों के अनुरूप जो भिन्न-भिन्न प्रकार की योग्यता होती है, उसे ही अधिकार कहते हैं। वेदान्तसूत्र में वर्णन है कि –

'यावदधिकारमवस्थितिरधिकारिणाम्' (वेदान्त सूत्र 3/3/32)

'इस अधिकार के अनुसार प्राप्त कर्मों को ब्रह्मज्ञानी हो करके भी लोकसंग्रहार्थ मरणपर्यन्त करता जावे, छोड़ न दें।' लोकसंग्रह के विषय में महाभारत के शांतिपर्व में धर्मराज युधिष्ठिर से पितामह भीष्म ने कहा है–

'लोकसंग्रहसंयुक्तं विधात्रा विहितं पुरा।
सूक्ष्मधर्मार्थनियतं सतां चरितमुत्तमम्।।'

(महाभारत, शांतिपर्व 258/25)

'अर्थात् लोकसंग्रहकारक और सूक्ष्म प्रसंगों पर धर्मार्थ का निर्णय कर देनेवाला साधु पुरुषों का उत्तम चरित्र स्वयं ब्रह्मदेव ने ही बनाया है।' श्रीमद्भगवद्गीता में 'लोकसंग्रह' एक उच्चस्तरीय आध्यात्मिक अवधारणा है जो यह बताता है कि –मनुष्य को किस प्रकार अपने स्वार्थभाव से ऊपर उठकर लोककल्याण के लिए कर्तव्यकर्म का निर्वहन करना चाहिए। वह विवेकज्ञान द्वारा कर्तापन के अभिमान को दूर कर अनासक्त भाव में प्रतिष्ठित होकर तत्वज्ञान प्राप्त कर सकता है। जब तक मनुष्य अनासक्त भाव में प्रतिष्ठित नहीं होगा तब तक वह तत्वज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता। अहं एवं अज्ञानता का भाव आवरण रूप में उसमें विद्यमान रहता है इसलिए गीता द्वारा प्रतिपादित तत्त्वज्ञान की साधना, साधक के लिए अपरिहार्य है।

इससे आत्मज्ञान तत्पश्चात् परमात्मबोध हो जाने पर साधक के लिए जीवन में और कुछ करना शेष नहीं रह जाता। इस अवस्था को प्राप्त हुआ योगी पुरुष केवल लोकसंग्रह के लिए शेष जीवन को अर्पित कर देता है।

वर्तमान में मनुष्य का धार्मिक, सामाजिक एवं राजनैतिक जीवन स्वार्थपरता में लिप्त तथा अहंवादी हो गया है। ऐसी स्थिति में मानव मन में ऐसी विचार की आवश्यकता है जो उन्हें सामाजिक कल्याण की ओर उन्मुख कर सके। आन्तरिक एकता की भावना भरकर स्नेह, सौहार्द, सहानुभूति और सदाचार आदि सद्गुणों को उत्पन्न कर सके। केवल आत्मोन्नति की चेष्टा करना एक प्रकार का स्वार्थ है। सभ्यता की पहली सीढ़ी यहीं से प्रारम्भ होती है कि हम केवल स्वार्थपरक आवेग में ही न डूबे रहें वरन् समाज के हित के लिए भी कार्य करें। व्यक्ति स्वयं सफलता की चरमसीमा को प्राप्त कर लेने के पश्चात् दूसरे किसी असफल व्यक्ति को सफलता प्राप्त करने में सहायता प्रदान करे। परिणामस्वरूप कर्तव्यपरायण एवं ज्ञान से युक्त होने के कारण वह स्वयं में असीम संतोष एवं आनन्द का अनुभव करेगा। इस सम्बन्ध में भगवान श्रीकृष्ण गीता में कहते हैं कि–'ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रता:' अर्थात् 'वे सम्पूर्ण भूतों के हित में रत और सबमें समान भाववाले योगी मुझको ही प्राप्त होते हैं।' **(श्रीमद्भगवद्गीता 3/19)** उसे परमतत्त्व के वास्तविक स्वरूप का जब ज्ञान हो जाएगा तो वह सारे ईर्ष्या-द्वेषादि द्वन्द्वों से मुक्त हो कर परमसिद्धि को प्राप्त हो जायेगा। यह क्षमता गीतोक्त 'लोकसंग्रह' के आदर्श में पूर्णरूप से निहित है।

योगेश्वर कुमार साहू
ग्राम एवं पोस्ट अरमरीकला, तह. गुरुर,
जि. बालोद-491222 (छ.ग.)
मो.-8358922188

प्रो. भगवन्त सिंह, से.नि. आचार्य एवं अध्यक्ष,
दर्शन एवं योग अध्ययनशाला,
पं. रविशंकर शुक्ल वि.वि.,
रायपुर (छ.ग.)

गुना जिले में मध्य प्रदेश राष्ट्र भाषा प्रचार समिति की इकाई द्वारा प्रतिभा प्रोत्साहन प्रतियोगिता का आयोजन

स्त्री पक्ष के विविध आयाम-समकालीन युग के विशेष संदर्भ में

- लेखा. पी.

जन्म - 19 अक्टूबर 1974।
जन्म स्थान - कन्नूर (केरला)।
शिक्षा - एम.ए., पीएच.डी.।
रचनाएँ - पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित।
सम्मान - अनेक संस्थाओं द्वारा सम्मानित।

समकालीन शब्द अंग्रेज़ी शब्द contemporary का पर्यायवाची है। समकालीन शब्द का प्रयोग कई रूपों में प्राप्त है जैसे समकालिक, समसामयिक आदि। साहित्य में समकालीनता का प्रयोग कालविशेषकों सूचित करना, जागरण करना आदि के लिए प्रयुक्त है। स्त्री जीवन सामयिक संदर्भ में प्रमुख एवं चिंतनीय विषय है। पुरुष और स्त्री का सम्मिलित अस्तित्व होने पर भी कभी-कभी स्त्री पिछड़ गई है। उन्हें कई समस्याओं का एक साथ सामना करना पड़ता है।

स्त्री का सामाजिक जीवन :- समकालीन युग में स्त्री अपने समाज में या जीवन में प्रत्याशित सुख एवं प्रगति पा नहीं सकी है। समाज में स्त्री आर्थिक स्वतंत्रता से स्वावलंबी बन जाती है। शिक्षित, कामकाजी नारी ज़िंदगी को आगे बढ़ाने में सक्षम हैं। फिर भी शोषण का शिकार हो जाती है। उषा प्रियंवदा के उपन्यास 'पचपन खंभे लाल दीवारें' की सुषमा का कथन देखिए-'एम.ए. करने के बाद मैंने एक प्राइवेट कॉलेज में नौकरी की। यहाँ के सेक्रटरी नगर के पुराने रईसों में थे। उन्होंने किस वस्तु का प्रलोभन नहीं दिया मुझे, पर मैंने नौकरी छोड़ दी।' **(पचपन खंभे लाल दीवारें-उषा प्रियंवदा-पृ.56, कालिन्दी एक अध्ययन-डॉ. श्रीमती अनिता संग्रथन पत्रिका अप्रैल-94, पृ. 19)**
अत: स्पष्ट है कि स्त्री स्वावलंबी होने पर भी शोषण का शिकार हो गयी है।

एक बात स्पष्ट है कि स्त्री जीवन की प्रगति को रोककर आगे बढ़ना समाज के लिए असंभव है। सामाजिक संस्कारों का दबाव भी नारी पर ज़्यादा है। पति के वियोग की पीड़ा, परंपरागत संस्कारों के दबावों से उत्पन्न पीड़ा आदि इसके लिए उदाहरण हैं।

शिवानी के 'कालिन्दी' उपन्यास के संदर्भ में श्रीमती अनिता की राय है-'कालिंदी शीर्षक से ही स्पष्ट हो जाता है कि लेखिका ने उपन्यास के अंतर्गत बहुत कुछ करना चाहा है, जो प्रमुखत: नारी जीवन से संबंधित है। उपन्यास के सभी पात्र कालिंदी के आसपास ही घूमने लगते हैं। एक ओर लेखिका ने कालिंदी के स्वतंत्र अस्तित्व को महत्व दिया है, तो दूसरी ओर देवेन्द्र एवं अन्नपूर्णा के कथनों द्वारा यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि नारी का एकाकी जीवन सर्वथा असंभव है। पुरुष का सहयोग उसके लिए अवश्यंभावी है।' **(महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में नारीवादी दृष्टि डॉ. अमर ज्योति-अन्नपूर्णा प्रकाशन-कानपुर-1999)**

भारतीय समाज में विवाह एक पवित्र बन्धन के रूप में माना जाता है। पारिवारिक सुदृढ़ता के लिए यह अनिवार्य भी है। डॉ. अमर ज्योति का कथन है-'भारतीय स्त्री विवाह में जन्म-जन्मांतर के संबंधों को नहीं मानती। अत: इस संबंध में नवीन मूल्य विकसित हुए। इस काल में प्रेम विवाह, विधवा विवाह, विजातीय विवाह में स्त्रियों का विश्वास तेज़ी से बढ़ा है। विवाह के प्रसंग में भारतीय स्त्री स्वयं को अब जाति, वर्ग एवं आयु के बन्धनों में बाँधने को तैयार नहीं है।' **(हिंदी की महिला उपन्यासकारों की मानवीय संवेदना-उषा यादव- पृ. 136)** स्त्रियों को अपने परिवार में भी अवहेलना सहना पड़ती है।

स्त्री का आर्थिक जीवन :-जीवन की अधिकांश समस्याओं का प्रमुख कारण अर्थ ही है। आज स्त्रियाँ कामकाजी-स्वावलंबी होने पर भी पराधीनता की गुलाम हैं। नारी पर शोषण एवं अत्याचार चलता रहता है। नए-नए रूपों में शोषण का रूप परिवर्तित रहता है। शारीरिक रूप, मानसिक रूप, पारिवारिक रूप और वैयक्तिक रूप में शोषण का रूप प्रभावी होता रहता है।

दाम्पत्य जीवन के पराजय का प्रभाव पारिवारिक जीवन पर पड़ता है। श्रीमती उषा यादव का कथन देखिए-' भारतीय परिवेश में दाम्पत्य जीवन को प्राय: पुरुष की प्रधानता के रूप में अंगीकार किया जाता है। कहने को स्त्री-पुरुष परिवार रूपी गाड़ी के दो पहिए हैं, पर यथार्थ में आज भी परिवार में पुरुष की हुकूमत चलती है।' **(आवाँ चित्रा मुद्गल-पृ. 232)**

स्त्री कितनी शिक्षित एवं स्वावलंबी होने पर भी वह पुरुष पर आश्रित रहना चाहती है। ऐसी चिंता है कि पुरुष के बिना स्त्री का अस्तित्व अधूरा रह जाता है। मध्यवर्गीय परिवार की स्त्रियाँ भी सामाजिक, पारिवारिक एवं वैयक्तिक समस्याओं का शिकार हो जाती हैं। इसके लिए उदाहरण है 'तत्सम' की वसुधा। वे पति के वियोग से मानसिक द्वन्द्व एवं परंपरागत संस्कारों के दबाव का शिकार हैं। वे सोचती हैं- 'ही वास ए पार्ट आफ हर' **(एक पत्नी के नोट्स, ममता कालिया-पृ. 30)** आर्थिक अभाव ज्यादातर स्त्रियों पर ही पड़ता है।

स्त्री का पारिवारिक एवं वैयक्तिक जीवन :-समकालीन स्त्री के जीवन की और एक प्रमुख समस्या है -उसकी अस्मिता की खोज। समकालीन नारी अपनी अस्मिता को कायम रखने के लिए स्वावलंबी बनना चाहती है। इसके लिए उदाहरण है चित्रा मुद्गल के उपन्यास की नारी पात्र नमिता। वे स्वतंत्र अस्मितावाली नारी हैं। समकालीन युग की स्त्रियाँ कठिन परिस्थितियों से लड़ने वाली हैं।

परिवार में भी नारियाँ पीड़ित दिखायी देती हैं। 'आवाँ' में चित्रा जी पीड़ित नारियों का उदाहरण देतीं हैं। 'हर रात उसने क्रूर पिता के उन्मादी बूटों के तले माँ को कुटते देखा था।' यहाँ पति के शारीरिक एवं मानसिक उत्पीड़न से गौतमी की माँ त्रस्त है।

वेश्या के रूप में स्त्री का जन्म असंभव है। साहचर्य ही नारी को वेश्या का रूप देता है। इसका मुख्य कारण आर्थिक विपन्नता ही है। 'आवाँ' उपन्यास की नारी पात्र अनीसा का भी यही अनुभव है। नारी जीवन की बहुआयामी स्थितियों का चित्रण 'आवाँ' में है। परस्त्रियों के प्रति पति का आकर्षण परिवार में झगड़े का कारण है। 'एक पत्नी के नोट्स' नामक उपन्यास के पात्र संदीप का कथन इसके लिए उदाहरण है-'मैंने अपनी बहन की याद में आपके बालों का स्पर्श किया था। आपकी शक्ल मेरी उस छोटी बहन से बहुत मिलती है जो पिछले साल कैंसर से चल बसी।' नारी जीवन पर पीड़ा पहुँचाने में दूसरी स्त्रियों का संबन्ध भी प्रमुख कारण है।

प्रेम विवाह के बाद दम्पतियों में होनेवाले परिवर्तन का सुंदर चित्रण ममता जी ने 'एक पत्नी के नोट्स' में प्रस्तुत किया है। सन्देह दाम्पत्य जीवन के विघटन का एक कारण है। यहाँ कविता द्वारा संपूर्ण आत्मसमर्पण करने पर भी संदीप उस पर शक करता है। पति-पत्नी के बीच के परस्पर विश्वास नष्ट होने पर जो यातनायें होती हैं, इसका चित्रण इस उपन्यास में विद्यमान है।

स्त्री की विभिन्न स्थितियाँ :- मन्नू भंडारी के कथा साहित्य में नारी जीवन की भिन्न-भिन्न स्थितियाँ विद्यमान हैं। मन्नू जी के स्त्री पात्र जीवन की यथास्थिति को स्वीकार कर लेते हैं। उनका साहित्य नारी चरित्रों पर आधारित है। नारी की आशा, निराशा, तृप्ति, अतृप्ति, कुंठा, आकांक्षा, प्रेम, समर्पण आदि सभी नारी चरित्रों पर आधारित हैं। मन्नू जी की कहानियों में रिश्ते एवं संबंधों की जो टूटन हैं, वह उनके जीवन से भी मिलती-जुलती हैं। मन्नू जी की कहानियों की स्त्रियाँ महानगरों में जीकर आर्थिक रूप से मजबूत हैं पर भी कहीं-कहीं विवश दिखाई देती हैं। 'आपका बंटी' उपन्यास में नायिका शकुन और बेटे के आपसी संवादों से शुरू होता है। उसमें बंटी अपनी माँ से सवाल करता है कि उसे दूसरे पिता के हाथों क्यों परवरिश करने दिया था? पुरुष का कठोर बंधन नारी को स्वीकार नहीं है। मन्नू जी की 'जीती बाजी की हार' कहानी की मुरला की सहेलियों के माध्यम से यह समस्या प्रकट है।

'भारतीय नारी के पुनर्जागरण का इतिहास है जहाँ नारी चौके और शयनकक्ष के गवाक्ष खोलकर बाह्य जगत की ओर आकृष्ट हुई। मन्नू भंडारी का कहानी संसार स्त्री विमर्श को बारीकी से सामने लाता है। उनकी कहानी स्त्री अस्मिता को नयी उँचाई तक ले जाने में सफल है। आधुनिक जीवन की त्रासदी, टूटन, प्रेम सम्बन्ध सभी उनकी कहानियों में प्रकट हैं। मुक्त नारी का वैचारिक चिंतन एवं आर्थिक रूप से संपन्न होने की इच्छा से बिखरती वैवाहिक अभिव्यक्ति आपका बंटी उपन्यास में प्रकट है। 'त्रिशंकु', 'आते जाते यायावर', 'दरार भरने की दरार' जैसी कहानियाँ स्त्री-पुरुष संबंधों को कई तरह परिभाषित किया है। मन्नू जी के स्त्री पात्र स्वभाव से विद्रोही हैं। अन्याय और शोषण के विरुद्ध वे आवाज उठाते हैं। कुछ स्त्री पात्र आधुनिक, शिक्षित, बुद्धिमान, आर्थिक आदि रूपों में स्वतंत्र हैं। परंपरा और आधुनिकता के बीच मन्नू स्त्री संवेदन शीलता को प्रभावी रूप से अभिव्यक्त करती हैं।

कहा जा सकता है कि समकालीन स्त्रियों के जीवन में कई समस्यायें विद्यमान हैं। समकालीन नारियाँ स्वतंत्र अस्मिता की आकांक्षी होने के नाते वे परिस्थितियों से जूझती रहती हैं। स्त्रियों के मोहभंग, जीवन की दुरूहता आदि से उत्पन्न यातनायें स्त्रियों की मर्यादाओं में जो परिवर्तन बनाती हैं उसके लिए भी समकालीन स्त्रियाँ साक्षी बनकर आगे की ओर अग्रसर हैं।

सह आचार्या
पी.आर.एन.एस.एस. कॉलेज
मट्टन्नूर, कन्नूर -670702 (केरला)
मो.- 9446739173

छत्तीसगढ़ में साहित्य सृजन की परंपरा और राजनाँदगाँव का साहित्य इतिहास

- हरिशंकर झाराय, सुनीता तिवारी

जन्म - 15 जुलाई 1965।
जन्मस्थान - राजनाँदगाँव (छ.ग.)
शिक्षा - एम.ए.।

छत्तीसगढ़ में साहित्य सृजन की परंपरा गाथा युग से ही पाई जाती है। लिपि के अभाव में यहाँ का साहित्य प्रामाणिकता नहीं पा सका। यदि हम राजनाँदगाँव अंचल की बात करते हैं तो यहाँ साहित्य सृजन की परंपरा महंत राजा हिमाचल दास (1830 ई.) से प्रारंभ मानी जाती है। खैरागढ़, छुईखदान, कवर्धा रियासतों में साहित्य के प्रति रुझान देखने को मिलता है और बैरागी राजाओं के कालखंड में वीरगाथा व मुक्तक शैली की रचनाओं के साथ कृष्णभक्ति की गीतात्मक शैली की रचनाएँ इस काल में मिलती हैं। भारतीय स्वातंत्र्य आंदोलन काल में भी यहाँ सृजन होता रहा। साहित्य वाचस्पति पदुमलाल पुन्नालाल बक्शी, डॉ. बलदेव प्रसाद मिश्र, कुंज बिहारी चौबे इस कालखंड में सक्रिय थे। 1960 से गजानन माधव मुक्तिबोध यहाँ सक्रिय लेखन कर रहे थे। इनके बाद मेघनाथ कन्नौज, नंदूलाल चोटिया, डॉ. शिवकुमार 'मलय', डॉ गणेश खरे, विनोद कुमार शुक्ल, शरद कोठारी, रमेश याज्ञिक, डॉ. शरद गुप्ता, डॉ. गजानन शर्मा का नाम उल्लेखनीय है। वर्तमान में गिरीश बक्शी, डॉ. दादूलाल जोशी, कुबेर सिंह, वीरेंद्र बहादुर सिंह, शुभदा मिश्र, डॉ. जीवन यदु 'राही', डॉ. पीसीलाल यादव, डॉ. राजन यादव, डॉ. चंद्रशेखर शर्मा, डॉ. सूर्यकांत मिश्र सक्रिय हैं।

छत्तीसगढ़ में साहित्य सृजन की परंपरा आदिकाल से ही रही है। यह अलग बात है कि वह लिपिबद्ध नहीं हुआ। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कहा है-'जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञान दशा कहलाती है, उसी प्रकार हृदय की यह मुक्तावस्था रसदशा कहताली है। हृदय की इसी मुक्ति की साधना के लिए मनुष्य की वाणी जो शब्द-विधान करती आयी है, उसे कविता कहते हैं।' **(आचार्य शुक्ल रामचन्द्र-श्रेष्ठ निबन्ध-प्रका. लोकभारती, पृ.91)**

साहित्यकार के अंतस से निकली यह वाणी युग चेतना होती है। यही युग चेतना साहित्य सृजन का आधार बनती है। इससे ही साहित्य का सृजन होता है। 'छत्तीसगढ़ में साहित्य सृजन को वैज्ञानिक दृष्टिकोण के आधार पर विभिन्न साहित्यकारों एवं विद्वानों ने तीन भागों में विभाजित किया है -

1) गाथायुग-सन् 1000 ई. से सन 1500ई. तक।
2) भक्तियुग-सन् 1500 ई. से सन 1900 ई. तक
3) आधुनिक युग-सन 1900 ई. से अब तक।

(वर्मा डॉ. नरेन्द्र देव-छत्तीसगढ़ भाषा का उद्विकास पृ.97)

1.**गाथा युग** (1000-1500) इतिहास कालीन गाथायुग को छत्तीसगढ़ का स्वर्ण युग कहा गया है। यह गाथायुग मौखिक परंपरा का उद्घोष करता रहा। छत्तीसगढ़ में यह काल बौद्ध धर्म का एक महान केन्द्र माना जाता था। इस धर्म के पतन के पश्चात् छत्तीसगढ़ में भारी राजनीतिक उथल-पुथल हुई जिसे हैहयवंशीय (कलचुरी राजवंश)ने इसे स्थिरता प्रदान की और कलचुरी राजवंश के पुत्र रत्नदेव ने ही रतनपुर की नींव डाली। सन 1000 से 1500 ई. तक इसी राजवंश काल में विभिन्न गाथाओं की रचना हुई। ये गाथायें प्रेम व वीरता के भाव से परिपूर्ण रही। इन गाथाओं को प्रमुख रूप से तीन भागों में वर्गीकृत किया गया है-

1) प्रेम प्रधान गाथा,
2) धार्मिक प्रधान गाथा,
3) पौराणिक प्रधान गाथा।

1) **प्रेम प्रधान गाथा :**-छत्तीसगढ़ की प्राचीन प्रेम प्रधान गाथाओं में अहिमन रानी, रेवारानी, राजावीर सिंह और लोरिक चंदा की गाथायें प्रमुख हैं। ये गाथाएँ नारी जीवन के चरित्र सुख-दु:ख, भटकाव, लौकिक पारलौकिक तथा दु:ख पूर्ण पक्षों पर प्रकाश डालती हैं। जिसमें तंत्र-मंत्र की शाक्तियों को भी चित्रित किया है।

2) **धार्मिक प्रधान गाथा :**– धर्म प्रधान गाथाओं में फुलबासन और पंडवानी लोककथा ही अधिक प्रचलित हैं। फुलबासन में सीता तथा लक्ष्मण की कथा है, जिसमें सीता द्वारा स्वप्न में देखे गये फुलबासन नामक फूल को लक्ष्मण से लाने का अनुरोध करती हैं। लक्ष्मण अनेक कठिनाइयों से जूझते हुए वह फूल लेकर लौटता है जिससे सीता की इच्छाएँ पूरी होती हैं। **(सं. यादव जगदीश जनपदीय भाषा साहित्य पृ. 8)** पंडवानी पांडवों की कथा है। इस कथा के माध्यम से हरतालिका व्रत और तीजा के महत्व को द्रौपदी के मायके जाने के माध्यम से छत्तीसगढ़ी नारियों की आस्था और विश्वास को दृढ़ किया है। **(वही)**

3) पौराणिक गाथा :– पौराणिक प्रधान कथायें छत्तीसगढ़ की माटी को जीवंत कर दिया है। यह गाथाएँ मौखिक रूप से ऐतिहासिक काल से छत्तीसगढ़ लोक जीवन का अभिन्न अंग बन गया है। इन पौराणिक गाथाओं में सरवन गाथा (श्रवण कुमार की कथा) राजा मोरध्वज की कथा (महाभारत काल), आल्हा–उदल, ढोला–मारू, लोरिक–चन्दा आदि प्रमुख हैं। इसकी जीवंतता हमें बाँस गीत बसदेवा गीत व देवार–गीत में देखने को मिलता हैं। ये पौराणिक गाथाएँ आध्यात्मिक पक्ष को उजागर करने के साथ–साथ परोपकार एवं मानव कल्याण की भावना को प्रेरित करने का कार्य करती हैं। ये लोक गाथायें चाहे किसी भी स्थान विशेष की हों लेकिन छत्तीसगढ़ ने इसे बड़ी आत्मीयता से अपनाया है।

2. भक्तियुग (1500–1900) : – मध्यकाल के प्रारंभ में छत्तीसगढ़ पर बाहरी आक्रांताओं का आतंक सिर चढ़कर बोल रहा था। उनके आतंक से छत्तीसगढ़ के राजा और प्रजा दोनों त्रस्त थे। इन्हीं संघर्षों के बीच धार्मिक भावनाओं से ओत–प्रोत जिस छत्तीसगढ़ी साहित्य का सृजन हुआ उसे विद्वानों ने तीन भागों में विभक्त किया है–1) मध्य युग की वीरगाथाएँ, 2) धार्मिक एवं सामाजिक गीतधारा 3) स्फुट रचनाएँ।**(वर्ल्यानी जे.आर., साहनी व्ही.डी.–पृ. 257)**

1. मध्ययुग की वीरगाथाएँ :– छत्तीसगढ़ी साहित्य में मध्यकाल के वीरगाथओं में प्रमुख रूप से कल्याण साय की गाथा, फूलकुँवर की गाथा, देवीगाथा, नगेसर कईना आदि हैं। इसके अतिरिक्त गोपल्ला गीत, रायसिंग के पवांरा, बोध गीत लोकशैली में प्रसिद्ध हैं।

'कल्याणसाय गाथा में राजा बाहरेन्द्र का पुत्र कल्याण साय की वीरता, पराक्रम व शौर्य की गाथा हैं। गोपल्ला गीत में गोपाल राय मल्ल की असाधाराण प्रतिभा को दर्शाया गया है, वहीं फूलकुँवर गाथा में राजा जगत की बेटी फूलकुँवर के शौर्य, वीरता का गुणगान है।

(शुक्ल, दयाशंकर–छत्तीसगढ़ी लोक साहित्य का अध्ययन–पृ. 239)

2.धार्मिक एवं सामाजिक गीतधारा :– मध्ययुगीन छत्तीसगढ़ वासी मुगल आंतकियों के बार–बार आक्रमण से त्रस्त रही। इन विषम परिस्थितियों में उनमें ईश्वर के प्रति लगाव होना स्वाभाविक था। वे संत महात्माओं के शरणागत होने लगे। इन्ही संत महात्माओं में छत्तीसगढ़ के संत धरमदास (कबीरदास के शिष्य) के अनुयायी होकर वे अपने दु:ख, क्लेश को मिटाने, इसमें डुबकी लगाने लगे।

संत धरमदास–बांधवगढ़ के एक धनी वैश्य (कसौधन) परिवार में सन 1395 ई. में अवतरित संत धर्मदास ने कवर्धा में कबीरपंथ का विस्तारण किया। उनके गुरु महान संत कबीरदास ने भी उन्हें अपने पंथ विस्तार के लिए आशीर्वाद दिया था, वे कहते हैं –

'धर्मदास सुनियों चित्त लाई, तुम जनि शंका मानहु भाई।

हमारे पंथ चलाओं जाई, वंश बयालीस अटल अधिकाई।।'(कबीर वाणी, पृ. 140)

संत धर्मदास की वाणी में बड़ी विनम्रता है एवं उनके सादगी भरे गीत में कबीर के भाव निहित हैं। ठेठ् छत्तीसगढ़ी बोली में कविता करने वाले संत धर्मदास को विभिन्न विद्वानों एवं साहित्यकारों ने उन्हें छत्तीगसढ़ का प्रथम कवि निरूपित किया है।

गुरु घासीदास : – सतनाम के प्रवर्तक ज्ञानमार्गी संत गुरु घासीदास ने छत्तीसगढ़ के लोक जीवन में व्याप्त छुआ–छूत, ऊँच–नीच, झूठ – कपट व सामाजिक विंसगतियों, विद्रूपताओं को दूर कर समरसता का पाठ पढ़ाया। रायपुर जिले के ग्राम गिरौदपुरी में 18 दिसम्बर सन 1756 ई. को जन्म लिये बालक ने अपने जीवन के प्रारंभिक सोपान में ही जन कल्याण हेतु गहन तप साधना में लीन हो गये। उनकी सत्यगाथा सतनाम भक्ति सतनाम पंथी –मंगल लोक गायकों को निरंतर अनुप्राणित करती हैं। संत गुरु घासीदास ने छत्तीसगढ़ को संत –साहित्य और साधना के इतिहास में विश्व–शिखर पर पहुँचाया है। **(संकलन–संपादन–पंकज गिरीश, शर्मा डॉ. सुधीर–छत्तीसगढ़ के पितृ पुरुष–पृ. 7)** उनकी रचनाएँ मूलत: सांसारिक संबंधों की असारता और ईश्वर कृपा की प्राप्ति की अभिलाषा का चित्रण करती है।

गुरु घासीदास के व्यक्तित्व एवं कृतित्व की तुलना अन्य अंचलों के महान संतों से करने पर यह तथ्य ज्ञात होता हैं कि जो प्रसिद्धि पंजाब के गुरु नानक देव को, महाराष्ट्र में संत ज्ञानेश्वर को, गुजरात के नरसिंह भगत को और बंगाल में चैतन्य महाप्रभु को प्राप्त हुआ वही प्रसिद्धि छत्तीसगढ़ में गुरु घासीदास को प्राप्त है। **(बेहार डॉ. रामकुमार– छत्तीसगढ़ी संस्कृति और विभूतियाँ–पृ. 44)**

3.**स्फुट रचनाएँ** :-'छत्तीसगढ़ में भक्ति काव्यधारा की परम्परा को और अधिक परिपुष्ट करने में यहाँ के ख्यातिनाम साहित्यकारों का अनुकरणीय योगदान है। इनमें रतनपुर रियासत के हैहयवंशी राजा राजसिंह के दरबारी कवि गोपाल चन्द्रमिश्र (सन 1635-1702) का नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इनकी रचनाओं में प्रमुख रूप से 'खूब तमाशा', 'जेमिनी अश्वमेध', 'सुदामा चरित्र,' आदि हैं।' **(गुप्ता, मदनलाल-छत्तीसगढ़ दिग्दर्शन, द्वितीय भाग-पृ. 151)** सन 1686 ई. में रचित शुद्ध खड़ी बोली काव्य में उन्होंने छत्तीसगढ़ की महिमा का बखान किया है।

'तिन में दक्षिण कोशल देसा।

जहं हरि ओतु केसरी बेसा।।

. . . .

तातु मध्य छत्तीसगढ़ पावन।

पुण्य भूमि सुरमूनि मन भावना।।'

(उपाध्याय, बसंतवीर-छत्तीसगढ़ अतीत की अनुगुँज-पृ. 36)

रतनपुर राज दरबार के ही बाबू रेवाराम (सन 1813-1873ई.) भी संस्कृत के साथ-साथ हिन्दी के भी एक अच्छे साहित्यकार थे। उन्होने कुल13 ग्रंथ लिखे जिनमें प्रमुख रूप से 'गंगा लहरी', 'विक्रम विलास', 'रत्न परीक्षा', 'दोहावली', 'माता के भजन' इत्यादि प्रसिद्ध ग्रंथ हैं। इनके समकालीन कवि शिवदत्त शास्त्री का 'इतिहास 'समुच्चय', और तेजनाथ शास्त्री का 'रामायण सार', संग्रह नामक ग्रंथ भी प्रकाश में आया है। रायगढ़ (सारगढ़) के कवि प्रहलाद दुबे (सन 1723) का 'जय चन्द्रिका' व गंगाधर मिश्र का 'कोसलानंद' नामक काव्य ग्रंथ भी कलम बद्ध हुआ है।

राजनाँदगाँव अंचल के परिप्रेक्ष्य पर विचार करने पर हम पाते हैं कि 'साहित्य सृजन की दृष्टि से यह अंचल इस युग में अछूता न रहा। यहाँ के महंत (बैरागी) राजाओं का भी इस धरा के साहित्येतिहास में उल्लेख मिलता है। राजनाँदगाँव रियासत के शिष्य प्रधान वंश परम्परा में महंत राजा हिमा चलदास कृष्ण भक्त संत कवि थे। वे (महंत हिमाचल दास -1830 ई.) एक अच्छे संगीतज्ञ भी थे। उन्होने 'गीत गोविंद' के पद्यबद्ध रूप का हिन्दी में अनुवाद भी किया था। इस रियासत के अष्टम राजा महंत घासीदास (सन 1860-1883 ई.) भी स्वयं एक अच्छे साहित्यिक विद्धान एवं साहित्यकारों के आश्रयदाता थे। महंत घासीदास के दामाद दाऊ गोवर्धनदास कृष्ण भक्ति धारा के कवि थे। उन्होंने 'हरि भक्ति प्रकाशिका बाल विनय' की रचना की थी। जिसका प्रकाशन उनकी पुत्री कुँवरी बाई ने सन 1932ई. में कराया था।'**(गुप्ता, मदनलाल-छत्तीसगढ़ दिग्दर्शन द्वितीय भाग-पृ.143)** दाऊ गोवर्धनास ने अपने पदों में कृष्ण के विभिन्न लीलाओं का गान किया है।

'महंत राजा घासीदास के निधन पश्चात् उनके पुत्र महंत बलरामदास राजनाँदगाँव रियासत के गद्दीनशीन हुये। राजा बलराम दास का काल (1887-97 ई0) पुनर्जागरण का काल रहा। हिन्दी साहित्य में जो कार्य भारतेन्दु जी ने किया था, वही कार्य राजनाँदगाँव के साहित्य इतिहास में महंत राजा बलरामदास ने किया। उनके श्वसुर दाऊ कृष्ण किशोर दास भी कृष्ण भक्ति धारा के कवि थे। उन्होंने अनेक पद रचनाएँ की हैं जिनमें उनका एक वृहद ग्रंथ 'राधा कृष्ण चंद्रिका' प्राप्त हुआ है।'**(सिंह प्रो. खड्ग बहादुर-राजनांदगाँव जिले का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास पृ. 169)** यह 550 पृष्ठों का फुल स्केप आकार का है। जिसे महंत बलरामदास ने प्रकाशित कराया था। महंत बलराम दास की प्रेरणा से ही श्री सांरग पाणी मुदलियार ने यहाँ 'बलराम प्रेस' की स्थापना की और श्री भगवान दास सिरोठिया ने अपने संपादन में 'प्रजा हितैषी' नामक दैनिक पत्र का प्रकाशन (सन् 1889-90ई.) भी कराया था। जबकि इस काल में भारत देश में इने-गिने दैनिक समाचार-पत्र ही छपते थे। महंत बलराम दास ने हिन्दी के प्रसार के लिए 'हिन्दी वक्तव्य उत्तेजक सभांरभ' नामक एक संस्था की स्थापना भी की थी। इस समय तक न तो 'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' की स्थापना हुई थी और न ही प्रयाग की 'अखिल भारतीय हिन्दी सम्मेलन' जैसी संस्था की। इस साहित्यिक संस्था में देश के प्रसिद्ध विद्वान भाग लेते थे, जिनमें पं. अम्बिका प्रसाद, पं. माधवराव सप्रे, बैरिस्टर प्यारेलाल मिश्र, प्रज्ञाचक्षु श्री गटटूलाल जी आदि के नाम उल्लेखनीय है। इस काल में राजनाँदगाँव के अन्य साहित्यकारों में एक बाबू परमानन्द सुहाने थे, जिन्होंने 'नखशिख हजारा', 'षड्ऋतु हजारा' और 'पावस कवित्त रत्नाकर' आदि ग्रंथों की रचना की। बिसाहु लाल उर्फ बसंतलाल ने पद्यबद्ध 'बसंत रामायण' की रचना की। इस तरह राजनाँदगाँव के साहित्य सृजन में उत्तरोत्तर वृद्धि होती रही।

'राजनाँदगाँव अंचल के साहित्यिक अवदान में खैरागढ़ के चारण कवियों का मुक्तक काव्य महत्त्वपूर्ण है। इस रियासत में नौ चारण कवि एक ही वंश के हुए। जिन्होंने विक्रम संवत् 1544 (सन् 1487) से लेकर बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ तक खैरागढ़ के 24 विभिन्न राजाओं के आश्रय में रहकर साहित्य सृजन किया। इनके पूर्वज का नाम दलराम राव था, और अन्तिम कवि कमलराव हुए।'**(गुप्त प्यारेलाल-प्राचीन छ.ग. पृ.302)** कवि कमलराव ने इस बात का उल्लेख अपनी काव्य रचना में भी किया है-

'मम पूर्वज दलराम राव हम राह में आये,

तिनके सुत दलवीर राव कहियत मन भाये।

तिन सुत मानिक तासु कवि सुन्दर गायें,

तिन सुत हरिनाथ राव आनन्द मनाये।

धनसिंग राव तिनके तनय तासु बिसाहुराव भाये।।'

('आदर्श' सिंह ब्रजभूषण-छत्तीसगढ़ के साहित्यकार-पृ. 8)

इन चारण कवियों के काव्य में प्रयुक्त शुद्ध खड़ी बोली का प्रयोग अपने-आप में एक आश्चर्य का विषय है। विद्वानों के अनुसार चारण कवियों ने मौखिक परंपरा का निर्वहन ही अधिक किया था।

'खैरागढ़ की साहित्य सृजन परंपरा को बनाये रखने में बख्शी कुल का योगदान अविस्मरणीय हैं। भारतीय हिन्दी साहित्याकाश के नक्षत्र डॉ. पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी जी के प्रपितामह उमराव बख्शी खैरागढ़ राज के प्रधान होने के साथ-साथ नीति-निपुण राजनीतिज्ञ एवं कुशल कवि व साहित्यकार थे। आपकी 'जानकी पंचाशिका' नाम की रचना लखनऊ के श्री नवल किशोर प्रेस से प्रकाशित हुआ था। 'पंच देवाष्टक' कविता को स्वंय बख्शी जी ने प्रकाशित करवाया था।'**(श्रीवास्तव डॉ. नलिनी-पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी खंड 1, पृ. 9)** इनके अन्यग्रंथों में 'रासलीला', 'सतसई टीका', 'काव्यबोध', 'फतेह विनोद', 'फतेह विलास' आदि मुख्य हैं।

राजनाँदगाँव अंचल के साहित्य सृजन में छुईखदान रियासत के महंत राजाओं का साहित्यिक योगदान भी अद्वितीय है। इस रियासत के छठवें राजा महंत लक्ष्मणदास (सन 1845 ई.) की धार्मिकता तथा भक्तिभाव ने आपकी साहित्यक अभिरुचि को और भी प्रगाढ़ कर दिया था। आपके द्वारा रचित 'श्रीकृष्ण-लीलामृत', 'लक्ष्मण दोहवली', 'कृष्ण चरित्र' प्रमुख ग्रंथ हैं। ईश्वर आराधना एवं भक्ति पर आपका अटूट विश्वास था। आपकी सात्विक प्रवृत्ति निम्न रचना में दृष्टव्य है –

'जनम मरन दुख दूर करै, जो हृदय भजत मुकुंद।

लछिमन चित नित ध्यान धरै, छोड़ि सकल छल छंद।'(सिंह प्रो. खड्ग बहादुर-राजनाँदगाँव जिले का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास पृ.208)

महंत राजा लक्ष्मण दास के काव्य में तुलसी, सूर, विद्यापति, बिहारी, रहीम के समान दैन्य, साख्यभाव, नखशिख का वर्णन तथा भक्ति परक दोहे का समन्वय मिलता है।

3. आधुनिक युग :- इस युग के रचनाकारों में राजनाँदगाँव की साहित्यिक त्रिवेणी कहे जाने वाले पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, डॉ. बलदेव प्रसाद मिश्र, और गजानन माधव 'मुक्तिबोध' के साथ स्व. कुंजबिहारी चौबे को याद किया जाता है। अन्य रचनाकारों में डॉ. रतन जैन, पं.लोचन प्रसाद पाण्डेय, पं.मुकुटधर पाण्डेय, पं. शुकलाल प्रसाद, पं. सुन्दरलाल शर्मा, गिरिवर दास वैष्णव, पं.कपिलनाथ मिश्र इत्यादि अनगिनत नामचीन साहित्यकार हैं जिन्होंने हिन्दी, छत्तीसगढ़ी साहित्य को सँवारा। पद्य साहित्य-20 वीं. शताब्दी के आरंभ में शिक्षा के प्रचार-प्रसार से देश की बदलती तस्वीर का साहित्यिक क्षेत्र में एक नई चेतना का जागरण हुआ। पं. लोचन प्रसाद पाण्डेय ने अपने संपादकीय में स्वयं रचित नाटक 'हिन्दी मास्टर' और 'कलिकाल' (1904) के कुछ अंश को प्रकाशित करवाया था। सन 1909 में उन्होंने छत्तीसगढ़ी वंदना-गीत की रचना की।

छत्तीसगढ़ी भाषा को आत्मसात करने वाले पं. सुन्दर लाल शर्मा की 'छत्तीसगढ़ी दानलीला' छत्तीसगढ़ी काव्य की अनुपम कृति हैं जिसकी रचना ठेठ छत्तीसगढ़ी में हुई है। इनके समकालीन रचनाकार राजनाँदगाँव निवासी स्व. कुंज बिहारी चौबे जी की रचना में धधकती ज्वाला के शब्द ब्रिटिश हुकूमत के विरुद्ध फूट पड़ते हैं। वे कहते हैं-

'अंग्रेज तैं हमला बनाये कंगला।

हमरे रकत ला पी के रे गोरा।

लाल-लाल करे अपन अंग ला।

अंग्रेज तैं हमला बनाये कंगला।।' (सं. चौबे अविकल कुमार-अवशेष पृ. 199)

इस काल के पद्य साहित्यकारों में बंशीधर पांडे, गया प्रसाद बसोदिया, मेदिनी प्रसाद पाण्डेय, पं. प्रहलाद दूबे, दिगम्बर शर्मा, अनंतराम पाण्डेय इत्यादि के नाम उल्लेखनीय हैं।

'गद्य साहित्य-यद्यपि छत्तीसगढ़ में हिन्दी और छत्तीसगढ़ी भाषा गद्य साहित्य इतिहास आधुनिक काल के पूर्वार्ध में दंतेवाड़ा का शिलालेख और आरंग का अभिलेख अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है, परन्तु गद्य को सक्रियता प्रदान करने में हीरालाल काव्योपाध्याय का स्थान सर्वोपरि हैं। इनके द्वारा लिखित छत्तीसगढ़ी व्याकरण (सन 1890 ई.) गद्य साहित्य के उत्थान को परिभाषित करता है। छत्तीसगढ़ में हिन्दी और छत्तीसगढ़ी साहित्य के विकास में अनेक ऐसे मूर्धन्य साहित्यकार हुए हैं जिनमें-माधवराव सप्रे, का-'एक टोकरी भर मिट्टी' (1901), पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी कृत 'झलमला' (1934), गजानन माधव 'मुक्तिबोध' कृत 'काठ का सपना' (2003), डॉ.

बलदेव प्रसाद मिश्र कृत 'मानस माधुरी' (1958), आदि के नाम उल्लेखनीय है। इनके समकालीन कथाकारों में सीताराम साव, डॉ. रामनिरंजन पाण्डेय, बिसाहुराम सोनी, रज्जूलाल शर्मा, को याद किया जा सकता है।' **(सिंह प्रो. खड्ग बहादुर-राजनाँदगाँव जिले का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास पृ. 172)**

'अस्सी के दशक में छत्तीसगढ़ी और हिन्दी के प्रगतिवादी कथाकारों में प्रमुख रूप से रामानुजलाल श्रीवास्तव, रमेश याज्ञिक, मेघनाथ कन्नौजे, शरद कोठारी, हरिठाकुर, डॉ. शिवकुमार, 'मलय', विनोद कुमार शुक्ल, रवि श्रीवास्तव आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।'**(वही. पृ. 196,198)**

इक्कीसवीं सदी के आरंभ में ग्राम्य जागरण सामाजिक प्रतिबद्धता से जुड़ी चुनौतियों को स्वीकार करती हिन्दी और छत्तीसगढ़ी भाषा साहित्यकारों में परमानन्द वर्मा, केयूर भूषण, डॉ. गणेश खेर, डॉ. गजानन शर्मा, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद मिश्रा, श्री चन्द्रशेखर शास्त्री, संजीव बख्शी, लोकबाबू, शरद कोकास, कुबेरसिंह, गिरीश बख्शी, डॉ.जीवन यदु 'राही', डॉ.पी.सी.लाल यादव, रमाकान्त श्रीवास्तव, जय प्रकाश साव, आदि कथाकार छत्तीसगढ़ के साथ-साथ राजनाँदगाँव अंचल के साहित्य सृजन में अपना अमूल्य योगदान दे रहे हैं।

उपरोक्त तथ्यों के आधार पर निष्कर्षत: यह कहना समीचीन होगा कि छत्तीसगढ़ में साहित्य का सृजन गाथायुग में प्रारंभ होते हुए भी उसकी महत्ता नहीं रही। उसका कारण, इन गाथाओं की लिपि बद्धता का अभाव क्योंकि गाथायुग में 'गाथा' मौखिक परंपरा का उद्घोष करता है और साहित्य लिखित की प्रामाणिकता पर अवलंबित हैं। तात्पर्य यह कि छत्तीसगढ़ में साहित्य का सृजन गाथायुग में इस अभाव में जीता है। परन्तु इस अभाव की पूर्ति भक्ति युग के रचनाकारों ने पूरा किया।

हर्ष, विषाद, दु:ख, क्लेश, हताश में मनुष्य की वाणी से उसके हृदय के उद्गार प्रस्फुटित होते हैं। भक्ति काल भी ऐसे ही युग का बोध कराता है। विदेशी आततायियों के अत्याचार से व्यथित जन-मानस उससे निजात पाने अपने आराध्य के चरण में शरण ले भक्ति के पद गाने लगे और यहीं से छत्तीसगढ़ में भक्ति कालीन साहित्य सृजन का उदय हुआ। इन 'गाथा-गीतों' में देवी-देवताओं की आराधनाओं के साथ वे अपने तत्कालीन आश्रयदाताओं के गुणगान में उनकी वीरता का बखान करने लगे। जिसमें कल्याण साय की गाथा, गोपल्ला गीत, फूल कुँवर की गाथा, नगेसर कईना के गीत लोकशैली में प्रसिद्ध हुये। धार्मिक व सामाजिक 'गीतधारा' के पट कबीरदास के शिष्य कवर्धा निवासी संत धर्मदास ने खोले। इसी क्रम में सतनाम पंथ के प्रवर्तक संत गुरु घासीदास के शिष्यों ने पंथी गीत से मंगल गान कर लोक-जीवन को अनुप्राणित किया। छत्तीसगढ़ के साहित्य सृजन परंपरा को और अधिक परिपुष्ट करने में रतनपुर रियासत के दरबारी कवियों में गोपाल चन्द्र मिश्र, माखन मिश्र, बाबू रेवाराम और रायगढ़ के प्रहलाद दूबे का योगदान चिर-स्मरणीय है।

इसी तारतम्य में राजनाँदगाँव अंचल भी साहित्य सृजन की दृष्टि से अछुता न रहा। यहाँ के महंत (बैरागी) राजाओं का साहित्यिक योगदान अतुलनीय है। जिनमें महंत हिमाचल दास, महंत घासीदास, दाऊ गोवर्धनदास, महंत बलरामदास, दाऊ कृष्ण किशोरदास एवं अन्य साहित्य बिरादरियों के साथ खैरागढ़ के चारण कवियों और राजा कमल नारायण सिंहं को भी स्मरण किया जाता है। खैरागढ़ के ही बख्शी कुल के साहित्यिक सदस्यों के वंशज प्रख्यात साहित्यकार पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी तथा डॉ. बलदेव प्रसाद मिश्र, गजानन माधव 'मुक्तिबोध', स्व. कुंज बिहारी चौबे व उनके समकालीन साहित्यकारों ने इस धारिणी को साहित्यिक पहचान दी।

आधुनिक युग में राजनाँदगाँव अंचल की साहित्यिक गतिविधियाँ उत्तरोत्तर वृद्धि करती रहीं। इस युग के कथाकार व अन्य विधा के पुरोधा में मेघनाथ कन्नौजे, नन्दूलाल चोटिया, डॉ. शिव कुमार 'मलय', डॉ. गणेश खरे, विनोद कुमार शुक्ल, शरद कोठारी, रमेश याज्ञिक, डॉ. शरद गुप्ता, डॉ. गजानन शर्मा इत्यादि साहित्यकारों ने इस मिट्टी को अमर कर दिया।

वर्तमान परिदृश्य में गिरीश बख्शी, डॉ. दादूलाल जोशी, कुबेर सिंह, वीरेन्द्र बहादुर सिंह, शुभदा मिश्र, डॉ. जीवन यदु 'राही', डॉ. पीसीलाल यादव, डॉ. राजन यादव, डॉ. चन्द्रशेखर शर्मा, डॉ. सूर्यकांत मिश्र जैसे अनेक हिन्दी व छत्तीसगढ़ी भाषा के साहित्यकार इस दिशा में कार्य कर रहे हैं। अतएव छत्तीसगढ़ में साहित्य सृजन की परंपरा में राजनाँदगाँव अंचल का योगदान भी अनुकरणीय है।

द्वारा झाररराय स्टील
बसंतपुर चौक,
राजनाँदगाँव-491441 (छ.ग.)
मो.- 7999830218

दर्दजा : एक सच यह भी

- लक्ष्मी एल, सदानंद

जन्म - 20 जुलाई 1995।
जन्म स्थान - दिल्ली।
शिक्षा - बी.ए., एम.ए., पीएच.डी.।
रचनाएँ - पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित।

जयश्री रॉय का उपन्यास 'दर्दजा' स्त्री सुन्नत से जुड़ी पीड़ा से प्रतिरोध तक की यात्रा का वर्णन करता है। 'दर्दजा' को पढ़ते समय न जाने कितने ही प्रश्न हृदय में कौंध जाते हैं। शुरू से स्त्री के जीवन को हम सभी देखते आये हैं न जाने कितने ही संघर्षों की उत्पत्ति है स्त्री योनि। समाज द्वारा उसी योनि का ऐसा क्रूर रवैया जिसे कुछ शब्दों में अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता। स्त्री होने का गुनाह उसकी देह को ही नहीं बल्कि उसके मन को भी लहूलुहान करती है। सोमालिया (अफ्रीका) की माहरा की यह कथा खून के धब्बों की दास्ताँ है। जयश्री रॉय लिखती हैं -'मैं बिना कुछ कहे अपनी विस्फारित आँखों से जाबरा को देखती रही जो मेरी फैली हुई टाँगों के बीच बैठी ठंडी आँखों से मेरा मुआयना कर रही थी। फिर मैंने देखा था उसके हाथ में ब्लेड का वह टुकड़ा जो दूसरे ही पल मेरी नर्म त्वचा में जाने कहाँ तक उतर गया था। मेरी आँखों के आगे अचानक बिजली के नीले-पीले फूल-सा कुछ कौंधा था और मैं हलक फाड़ कर चिल्लाती चली गयी थी! दर्द का ऐसा भीषण अनुभव मुझे पहले कभी नहीं हुआ था। जाबरा के उठते-गिरते हाथ के साथ मेरे शरीर में तेज़ पीड़ा की लहरें उठ रहीं थीं, विस्फोट-से हो रहे थे। कभी जाबरा के हाथ में चाकू होता, कभी पत्थर के टुकड़े तो कभी ब्लेड। भय, पीड़ा से अवश होते हुए मैंने देखा अपने दोनों गन्दे हाथों के लम्बे नाखून मेरे भीतर खुबा दिये थे। दर्द के अथाह समुद्र में डूबते हुए मैंने महसूस किया था, वह अपने नाखूनों से मुझे नोच-खसोट रही है, चीर-फाड़ रही है, कुतर रही है! उस के नाखून जाग की सलाइयों-से मेरी जाँघों के बीच चल रहे थे। लग रहा था ढेर सारी जंगली, विषैली चीटियाँ मेरे अन्दर घुस गयी हैं और मुझे खोद-खोद कर खा रही हैं। या फिर कोई बिच्छू लगातार डंक मार रहा है। तेज जलन हो रही है। मेरे दोनों पैर बुरी तरह थरथरा रहे हैं, पूरा शरीर पसीने से भीग गया है। चिल्ला-चिल्ला कर गला फट गया है।'

(जयश्री रॉय, हव्वा की बेटियों की दस्तान दर्दजा, पृ.15-16)

स्त्री सुन्नत यानी स्त्री की योनि की काट-छाँट करना। यौनांग के बाहरी हिस्से को काट कर सिल देना ताकि स्त्री नैसर्गिक कामेच्छा से उत्पन्न सुख को महसूस न कर, महज बच्चे जनने की मशीन में बदल जाए। इसे अफ्रीका के 28 प्रदेशों के साथ-साथ दक्षिण अमेरिका, मध्य-पूर्व के कुछ कबीलाई प्रदेशों में किया जाता है। फीमेल जेनिटल मयूटीलेशन अंग्रेजी में सुन्नत के नाम से जानी जाती है। धर्म, परंपरा, यौनिकता के नाम पर चल रही यह अमानवीय क्रूरता इन प्रदेशों में न जाने कितने वर्षों से की जा रही है। इस अमानवीय परंपरा के विरुद्ध विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO)और यूनेस्को (NESCO)जैसी विश्व संस्थाओं की हिस्सेदारी भी है।

इस विषय में आलोचक अभय कुमार दुबे लिखते हैं -'अपनी समाज-वैज्ञानिक विषय-वस्तु के बावजूद प्रथम पुरुष में रची गयी जयश्री रॉय की कलात्मक आख्यानधर्मिता ने स्त्री की इस जद्दोजहद को प्रकृति के ऊपर किये जा रहे अत्याचार के विरुद्ध विद्रोह का रूप दे दिया है। सुन्नत की भीषण यातना से गुज़र चुकी माहरा अपनी बेटी मासा को उसी तरह की त्रासदी से बचाने के लिए पितृसत्ता द्वारा थोपी गयी सभी सीमाओं का उल्लंघन करती है। अफ्रीका के जंगलों और रेगिस्तानों की बेरहम जमीन पर सदियों से दौड़ते हुए माहरा और मासा के अवज्ञाकारी क़दम अपने पीछे मुक्ति के निशान छोड़ते चले जाते हैं। माहरा की बग़ावती चीख एक बेलिबास रूह के कलाम की तरह है। हमारे कानों में गूँजते हुए वह एक ऐसे समय तक पहुँचने का उपक्रम करती है जिसमें कैक्टस अपने खिलने के लिए माकूल मौसम का मोहताज नहीं रहता।' **(जयश्री रॉय, हव्वा की बेटियों की दस्तान दर्दजा, कवर)**

उपन्यास माहरा के जीवन पर केंद्रित है किन्तु माहरा से जुड़े वह सभी चरित्र उपन्यास की प्रत्येक घटना को बोझिल नहीं होने देती। माहरा की माँ जो सुन्नत की इस क्रूरता को अपनी तेरह वर्षीय बेटी से होते देख गर्व का महसूस करती है। लेखिका इस विषय में लिखती हैं -'माँ का चेहरा मुझ पर झुका हुआ है और उन्होंने मुझे बुरी तरह जकड़ रखा है। उनकी आँखों

में इस समय अजीब-सी चमक और मुग्धता है! जैसे कोई धार्मिक अनुष्ठान देखते हुए लोगों की आँखों में अक्सर होती है। एक समय के बाद खून के बहाव को रोकने के लिए जाबरा मेरे जख्म पर जानवरों की लीद और मिट्टी डालने लगती है। आह! मृत्यु यह इस जघन्य पीड़ा, इस नरक से कहीं बेहतर है। उस क्षण मैं सचमुच मर जाना चाहती थी। यह एक बेहतर विकल्प था। उस ठंडे, काले, निविड़ शून्य को मैंने किस आवेग से स्वयं में निर्बाध उतरने दिया था न जाने कितनी देर बाद मेरी आँखें खुली थीं। मैं मरी नहीं थी, जिन्दा थी। ओह! यह प्रतीति कितनी भयावह थी मेरे लिए! जीवन यानी पीड़ा और पीड़ा! मेरे कमर से नीचे का हिस्सा नरक बन गया है। एक धधकता हुआ कुंड! ऐसे जल रहा है कि जैसे किसी ने ताज़े ज़ख्म पर नमक छिड़क दिया है। अन्दर कुछ धप-धप कर रहा है।' **(जयश्री रॉय, हव्वा की बेटियों की दस्तान दर्दजा, पृ.16)**

एक स्त्री होकर दूसरी स्त्री के दुख का कारण बनना इस उपन्यास में जगह-जगह है। धार्मिक अनुष्ठान का ऐसा क्रूर वर्णन उपन्यास के अनेक हिस्सों में स्त्री पीड़ा की न खत्म होने वाली अभिव्यक्ति को बताता है। बचपन से ही इन स्त्रियों को यह बताया जाता है कि औरतों पर हव्वा के गुनाह की गाज टूटी है। जिसे आज तक भुलाया नहीं जा सका। सबीला की दादी अक्सर औरत के गुनाहों को लेकर सामने आ जाती हैं वह औरतों के तीन दुखों को मुख्य मानती हुई कहती हैं-'दादी गौरव से भर कर गिनातीं-दुख तो अनगिनत हैं औरत के भाग्य में, मगर तीन दुख खास हैं-एक तो पहला सुन्ना, दूसरा जब शादी की रात उसे फिर काट कर खोला जाता है और तीसरा जब प्रसव के समय काटा जाता है। मैं सुनती हूँ और भीतर ही भीतर थरथराती हूँ। अब मेरे लिए शादी की रात के मायने खूबसूरत जोड़ा, मेहँदी और गहने नहीं हैं। अब मुझे सुहाग के बिस्तर का खून, यातना और दुल्हन के आँसू दिखते हैं। जिस शादी की कल्पना कभी मुझे हिना की मादक गन्ध से भर देती थी, नसों में लहू की रवानगी को रोक देती है। आज मैं सोचती हूँ, हर माँ अपनी बेटी को दुल्हन बनने का श्राप क्यों देती है!' **(जयश्री रॉय, हव्वा की बेटियों की दस्तान दर्दजा, पृ. 32)**

स्त्री पीड़ा की यह दास्ताँ कब प्रतिरोध तक की यात्रा तय करने लगती है। वह इस उपन्यास में बखूबी चित्रित है। इस उपन्यास का हर एक चरित्र स्त्री जीवन की त्रासदी का मर्मात्माक रूप है। माहरा के जीवन से शुरू हुई यह यात्रा कब समस्त स्त्रियों की पीड़ा से प्रतिरोध तक की यात्रा की अभिव्यक्ति बन जाती है, यह पता ही नहीं चलता। भिन्न-भिन्न देशों में महिलाओं की योनि से जुड़ी न जाने कितनी ही कुप्रथाओं को सामाजिक परंपरा का नाम दिया जाता रहा है। जिसमें एक महिला खतना है।

इसी उपन्यास में लेखिका माहरा के इस असहनीय दर्द को अभिव्यक्त करते हुए लिखती हैं -'मैंने सिहर कर उस तरफ से अपनी आँखें फेर ली थीं और दायीं तरफ देखा था। सामने पत्थरों और झाड़ियों में मेरे शरीर के छोटे-छोटे टुकड़े-चमड़ी, बोटी-बिखरे पड़े थे! धूप में सूख कर काला पड़ते हुए चारों तरफ खून के छींटे, धब्बे जैसे अक्सर किसी वधस्थल में होता है! माँस के कतलों पर नीली मक्खियाँ भिनभिना रहीं थीं। एक कौआ मेरे देखते ही देखते चमड़ी का एक टुकड़ा उठा कर टीले के ऊपर जा बैठा। देखकर मेरे अन्दर कुछ घुलने लगता है। मुँह में उल्टी से पहले जैसा पानी भर आता है। अपनी उबकाई रोकते हुए मैं देखती हूँ, मेरे पैरों के पास जाबरा अपने सामने कैकसिया पेड़ के बड़े-बड़े काँटों की ढेर लगाये बैठी थी। उसके हाथ में सफेद धागे का बंडल था। उसके इशारे पर माँ और मौसी एक बार फिर मेरे आसपास घिर आयी थीं। इस बार मैंने कोई प्रतिरोध नहीं किया था। मुझमें कोई ताकत भी नहीं बची थी इसके लिए। जाबरा मेरे कटे हुए जिस्म को काँटे और मोटे धागे से सी रही थी। ताज़े कटे हुए माँस में काँटे से छेदकर उसमें धागा डालती और उसे कसकर सी देती। मेरा गला पूरी तरह से बैठ चुका था। थोड़ी देर गोंगिया कर मैं फिर से अचेत हो गयी थी। अचेत होते हुए मैंने प्रार्थना की थी कि इस बार मैं सचमुच मर जाऊँ।' **(जयश्री रॉय, हव्वा की बेटियों की दस्तान दर्दजा, पृ. 17)**

स्त्री जीवन में न जाने कितनी ही ऐसी त्रासदियाँ हैं जिनका वर्णन बेहद कम हुआ है। सुन्नत की यह प्रथा न जाने कितने वर्षों से इन देशों में छोटी-छोटी अबोध लड़कियों के जीवन को नरक बना मौत के घाट उतार रही है। इसमें सिर्फ माहरा नहीं है बल्कि माहरा जैसी न जाने कितनी लड़कियाँ हैं जिन्हें परंपरा के नाम पर सुन्नत के लिए तैयार किया जाता है। संयुक्त राष्ट्र संघ समेत अनेक वैश्विक संगठनों की लगातार कोशिशों के बावजूद सुन्नत प्रथा के प्रचलन में कमी का प्रतिशत बेहद कम है। माहरा की योनि उस भोथरी मरणांतक प्रक्रिया के पश्चात् पूरी बदल दी जाती है। तमाम औरतें इस अमानवीय क्रूरता के कारण एड्स जैसी न जाने कितनी अन्य गंभीर बीमारियों की चपेट में आ जाती हैं। न जाने इन देशों में कितनी औरतें भयानक संक्रमण (इंफेक्शन्स) के कारण शव की तरह सड़ती जा रही हैं। जयश्री रॉय माहरा का वर्णन करती लिखती हैं कि 'टट्टी-पेशाब भी उसी अवस्था में। पहली बार जब अपने ताजे घाव के साथ मैंने पेशाब किया था, लगा था किसी ने जख्म में तेजाब डाल दिया है। तभी मुझे पहली बार पता चला था, मेरा गुप्तांग पूरी तरह से बन्द कर दिया गया है। बस एक माचिस की तीली की नोक बराबर छेद-पेशाब और माहवारी के रक्तस्राव के लिए। बड़ी दीदी जमीन पर एक छोटा गड्ढा बना देतीं जिसमें एक करवट लेटकर मुझे पेशाब करना पड़ता। एक-एक बूँद-15-20 मिनट तक! अन्त तक मैं

इतनी निढाल हो जाती कि मेरी आँखों के आगे अँधेरा छाने लगता। इन दिनों मैं लगभग हर वक्त रोती ही रहती थी। एक दिन जब मैं तेज बुखार में अचेत-सी पड़ी थी मेरे शरीर के निचले हिस्से में चींटियाँ ही चींटियाँ बड़े-बड़े थक्कों में लगी हुई हैं-लाल, विषैली, गिजबिजाती हुई मेरे शरीर से खून बह रहा था, मगर मैं कुछ महसूस नहीं कर पा रही थी। मुझे अब दर्द नहीं होता था। सब कुछ जैसे शून्य हो गया था।' **(जयश्री रॉय, हव्वा की बेटियों की दस्तान दर्दजा, पृ.18-19)**

माहरा, मासा, सबा जैसी न जाने कितनी स्त्रियों का जीवन सुन्नत से बदल जाता है। रिसते हुए पेशाब की गंध, शारीरिक व मानसिक रूप से त्रस्त जीवन; ये औरतें दिन-प्रतिदिन ख़त्म होने की राह पर हैं। माहरा, सबा, मासा, माहरू, फातिमा बीबी, खाला, माहरा की माँ जैसी न जाने कितनी स्त्रियाँ इस दोजख में सड़ते हुए माँस की तरह जीने के लिए अभिशप्त हैं। संघर्ष में अक्सर बाहरी दुनिया से मिली रोशनी तब तक शामिल नहीं होती जबतक वह प्रतिरोध का रुख नहीं अपना लेती। इन औरतों के लिए नई दुनिया खोजने का अर्थ परिवार, समाज और उनकी परंपरा से संघर्ष करना है। ऐसे कई देश हैं जहाँ यह नृशंसता भिन्न-भिन्न रूपों में प्रचलित है और यहाँ तक कि इन परंपराओं को लेकर समाज का रवैया अडिग है। केन्या, इथियोपिया, सोमालिया समेत विश्व के 28 देशों में स्त्री में धर्म के नाम पर ऐसे अत्याचार जारी हैं जिनसे लगभग 14 करोड़ औरतें प्रभावित हैं और इनमें अफ्रीकी औरतों का अनुपात सर्वाधिक है। इन देशों की महिलाओं ने न जाने कब से इस पीड़ा को अपने जीवन का अभिन्न हिस्सा माना हुआ है। लेखिका उपन्यास में एक स्थान पर इन महिलाओं के जीवन के विषय में लिखा है 'एक नेक औरत का फर्ज बनता है कि वह दीन के बताये हुए रास्ते पर चले, अपनी औरत होने की जिम्मेदारी को समझे ऊपर वाले ने हमें औरत बनाया है, इसलिए हमारे जिस्म में जो मर्दाना हिस्सा है, उससे हमें पूरी तरह से निजात पा लेना चाहिए, जैसे मर्द अपने जिस्म से खतना के जरिये औरत वाला नाजुक हिस्सा अलग करवा लेता है और मुकम्मल मर्द बन जाता है।'

(जयश्री रॉय, हव्वा की बेटियों की दस्तान दर्दजा, पृ. 20)

स्त्री के लिए यह मर्दों वाला हिस्सा न जाने कब से उनकी मृत्यु का कारण बना हुआ है। इन देशों में औरत मात्र एक योनि है। एक ऐसी योनि जो सुन्नत की प्रक्रिया से गुजरती हुई किसी अधेड़ उम्र के बूढ़े व्यक्ति कीसेज का हिस्सा बनती है और अंत में बच्चे जनने की मशीन बनकर अपना जीवन समाप्त कर लेती है। लेखिका एक स्थान पर लिखती हैं- 'मर्दोंवाला हिस्सा! कौन-सा?' मुझे माँ की बातें समझ नहीं आतीं। मुझे किसी तरह समझते न देख आपा माँ की मदद के लिए बातों का सिरा सँभालतीं- 'औरतों के जिस्म को नहीं समझती! अरे, गुप्तांग के जो बाहरी हिस्से हैं, वे सब मर्दाना हिस्से हैं। जो अन्दरूनी कोमल हिस्सा है, वही जनाना हिस्सा है! वही ऊपरवाले ने औरत को माँ बनने के लिए दिया है। हमें हमारे जिस्म का इस्तेमाल सिर्फ माँ बनने के लिए करना चाहिए, न कि यौन का विकृत आनन्द उठाने के लिए।' **(जयश्री रॉय, हव्वा की बेटियों की दस्तान दर्दजा, पृ. 20)**

एक अन्य औरत इसी बात को आगे बढ़ाते हुए कहती है -'छोरी! जाने किस गुनाह की वजह से कुदरत ने हमारी टाँगों के बीच यह गन्दी-सी चीज़ डाल दी है! जितनी भद्दी दिखती है, उतनी खतरनाक भी है। औरत का शरीर ही उसका पाप। जाने कब आबरू में धब्बा लग जाए। ये दो अंगुल की चीज सारे ईमान पर भारी, जब तक देह से जुड़ी है, किसी को चैन नहीं। तो पाप को जड़ से ही खत्म कर दिया जाए! न रहेगा बाँस, न बजेगी बाँसुरी।' **(जयश्री रॉय, हव्वा की बेटियों की दस्तान दर्दजा, पृ.20-21)**

अलग-अलग देशों में कई तरह से सुन्ना करवाया जाता है। इसे भिन्न-भिन्न देशों में अलग-अलग नामों से भी जाना जाता है। थिओपिआ में इसे 'फालाशास' कहते हैं जो नवजात बच्ची पर किया जाता है। अमहारा में जन्म से आठवें दिन, ओरोमो में चार साल से किशोरावस्था तक की लड़कियों का। सोमालिया में चार से नौ साल तक की बच्चियों का। कुछ लोग शादी से पूर्व भी यह करते हैं और कहीं-कहीं प्रथम गर्भ के ठीक पहले या तुरन्त बाद। किन्तु इनके लिए यह करना बेहद जरूरी होता है। गेद्दा अर्थात् सुन्ना करने वाली महिलाओं के अतिरिक्त लड़कियों की माँ, दादियाँ या महिला रिश्तेदार भी यह जघन्य कार्य इन बच्चियों के साथ किया करती थीं। नाइजीरिया तथा इजिप्ट जैसे स्थानों पर तो मर्द लड़कियों का सुन्ना करते हैं। अफ्रीका के कई देशों में सुन्ना की यह प्रथा प्रचलित है। ये अलग है कि हर जगह इसे अलग-अलग नाम से जाना जाता है। ईजिप्ट में ताहारा, माली में बोलोकोली सुदान में ताहुर, काकिआ में बुनडु। 'बोलोकोली का अर्थ है पवित्र करना। बुनडु शब्द भी काकिआ के एक धार्मिक सम्प्रदाय से आया है।' ऐसे कई विशेष तरह के खतना भी प्रचलित हैं जिसे कुछ देशों में सुन्ना भी कहते हैं। सुन्ना करने की यह प्रक्रिया हर स्थान पर अलग-अलग है। जैसे सुदान में जहाँ महिला जननांग के एक खास हिस्से को आधा काट दिया जाता है, इसे सुन्ना काशफा कहते हैं। इसी देश के कुछ हिस्सों में एक अलग तरह का सुन्ना किया जाता है। जिसमें जननांग का लगभग पूरा बाहरी हिस्सा काटकर अलग कर दिया जाता है। जिसे उनकी भाषा में 'मातवासात' कहा जाता है। यह सिर्फ मुसलमानों

में ही नहीं बल्कि कुछ देशों में ईसाइयों तथा पिछड़ी जातियों में भी प्रचलित है।

जिन प्रथाओं को यह धर्म का हिस्सा मान बैठे हैं, न जाने कितने लाखों, करोड़ों महिलाओं के जीवन का इससे अन्त हो गया। यह सब देखकर अक्सर ख्याल आता है, क्या वाकई औरत की योनि में जन्म लेना गुनाह है। उपन्यास में एक स्थान पर वर्णन मिलता है कि– 'बड़े मस्जिद का मौलवी कहता है मादर जात पर अताब–ए–इलाही टूटा है। उन्हें अट्ठारह सजाएँ मिली हैं। अपने गुनाहों की–हामिला होना, तलाक मिलना, तलाक न दे सकना, मर्दों की चार शादी का हक, औरतों को नहीं, गवाही में दो औरतों को एक मर्द के बराबर माने जाना वगैरह–वगैरह! औरतें खता की पुतली होती हैं, कुन्द जेहन होती हैं। हज़ार खासियतों में से सिर्फ एक खासियत औरत में होती है, बाकी सब मर्दों में। मर्द की एक बायीं पसली से बनी औरत की औकात भी उतनी ही है और हमेशा उतनी ही रहेगी।' **(जयश्री रॉय, हव्वा की बेटियों की दस्तान दर्दजा, पृ. 53)** औरत की यह योनि न जाने कब से पीड़ा सहने के लिए अभिशप्त है।

स्त्री के जीवन में विवाह का महत्त्वपूर्ण स्थान है। विवाह से जुड़े न जाने कितने सपने हर स्त्री देखती आई है। माहरा भी उन्हीं लड़कियों में है। विवाह पश्चात् वह पहली रात व माहरा के जीवन के दूसरे सबसे दर्दनाक दिन का वर्णन लेखिका कुछ इस प्रकार करती हैं 'अपने नये घर में आज मेरी पहली रात थी। थोड़ी देर मेरी तरफ एकटक देख कर उसने अचानक मेरे कपड़े में हाथ डाल कर मेरा शरीर टटोलना शुरू कर दिया था। मैं चिहुँक कर पीछे हटी थी, मगर जहीर ने बिस्तर पर चढ़कर मुझे दबोच लिया था। उसकी अँगुलियाँ हड़ियल थीं जिनसे वह मुझे मसल रहा था। मेरी देह की अविकसित रेखायें दर्द से टीस उठी थीं। जाने वह क्या चाहता था! किसी अन्धे की तरह मुझे टटोले जा रहा था जैसे कोई प्रेतात्मा ही मुझ पर झपट्टा मार रही हो। उसने थोड़ी ही देर में मेरे शरीर से लगभग सारे ही कपड़े नोंच फेंके थे। अब वह मुझे बुरी तरह से नोच–खसोट रहा था। ऐसा करते हुए उत्तेजना में उसके मुँह से साँप की तरह 'हिश–हिश' आवाज निकलने लगी थी। अब वह मेरी जाँघों के बीच हाथ डालने की कोशिश करने लगा था। सिलाई के बाद शायद मेरे शरीर के भीतर का हिस्सा लगभग पूरी तरह से मुँद गया था। घाव भी पुर आया था। मगर आज अपने लम्बे नाखून सहित अँगुली डालकर जहीर ने मेरे जख्म को उधेड़ दिया था। उसने अपने मुँह से मेरे मुँह को बन्द कर रखा था। मेरा मुँह पूरी तरह से उसके मुँह के भीतर था जिसे वह धीरे–धीरे चबा रहा था। उसकी साँसों की तेज दुर्गन्ध मेरे फेफड़ों में भर गयी थी। इस समय उत्तेजना से हाँफते हुए, वह अपनी रोमस जाँघों से मेरी दोनों टाँगों को चाँप कर मेरे भीतर प्रविष्ट करने का प्रयास कर रहा था। ओह मेरे खुदा! इतनी घुटन! इतनी पीड़ा! मुझे प्रतीत हो रहा था, कोई जलती हुई सलाख से मुझे छेद रहा है। जहीर किसी भूखे दरिन्दे की तरह मुझ पर सवार मुझे बेरहमी से भंभोरे जा रहा था। गहरा अँधेरा, गर्मी, घुटन और जानलेवा दर्द मैं लगातार गोंगियाये जा रही थी।' **(जयश्री रॉय, हव्वा की बेटियों की दस्तान दर्दजा, पृ. 82–83)**

नि:संदेह यह उपन्यास महिला सुन्नत की बयानगी मात्र नहीं है बल्कि स्त्री पर पुरुष का जबरन अधिकार, उसके साथ अमानवीय तरीके से सेक्स करना, उसकी योनि को क्षत–विक्षत कर उसको मृत्यु के द्वार पर बिलखता छोड़ देना भी है। महिला जननाग को बार–बार क्षति पहुँचाना इस उपन्यास के मूल में है। सुहाग रात की वह पहली रात माहरा की बिलखती रूह न जाने कब तक बिस्तर पर बेजान तड़पती रही। बहुत देर कोशिश करने के पश्चात् जब जहीर कामयाब नहीं हुआ, आखिर में झल्ला कर उठ कमरे से बाहर निकल जाता है। 'कुछ देर चुपचाप खड़ी रहकर माँ ने मुझे अचानक धकेलकर खुद से परे किया था। मैंने स्तब्ध होकर देखा था, मेरी टाँगों को चौड़ा कर माँ मेरे ऊपर झुक गयी हैं। तेज, भयानक पीड़ा के बीच मैंने इतना ही समझा था, माँ मेरे जननांग के लगभग बन्द पड़ गये छेद को उस भोथरे चाकू से काट कर खोलने का प्रयास कर रही हैं। भीतर सब मलीदा बनता जा रहा था–कीचड़ का दलदल! मेरी जाँघों के बीच कुछ गरम, चिपचिपा–सा फैल रहा था। खून होगा! मेरे गले से अब आवाज़ नहीं निकल रही थी। मैं अचेत थी कि तन्द्रा में पता नहीं। शायद भोर रात के करीब जहीर फिर कमरे में आया था। आते ही वह मुझ पर चढ़ाई कर बैठा था। मैंने चीखने की एक असफल कोशिश की थी, मगर गले से बस एक घरघराहट की–सी आवाज़ निकल कर रह गयी थी। वैसे भी ज़हीर ने अपने पंजे से मेरा मुँह दबा रखा था। मैं अपने खून में लिथड़ी पड़ी थी और ज़हीर पूरी ताकत से मेरे ताज़े कटे हुए जननांग में प्रविष्ट होने की कोशिश कर रहा था।' **(जयश्री रॉय, हव्वा की बेटियों की दस्तान दर्दजा, पृ.85)**

असिस्टेंट प्रोफेसर
मोतीलाल नेहरू महाविद्यालय (सांध्य)
दिल्ली विश्वविद्यालय, बेनिटो जुआरेट मार्ग,
दिल्ली–110021
मो.–8802141761

मनीषा कुलश्रेष्ठ की कहानियों में आर्थिक परिवेशगत यथार्थ

– रतिराम गढ़ेवाल, रमणी चंद्राकर

जन्म – 27 जनवरी 1975।
जन्म स्थान – बिलासपुर (छ.ग.)।
शिक्षा – एम.ए.।
रचनाएँ – पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित।

प्रत्येक युग का सामाजिक, राजनीतिक जीवन अर्थ प्रक्रिया से प्रभावित रहा है। विकास का आधार अर्थ ही है। समाज की आर्थिक प्रवृत्तियाँ संपूर्ण जीवन को प्रभावित करती हैं। जीवन का नियामक आज अर्थ है। जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु अर्थ आवश्यक है। किंतु बदलती परिस्थितियों में आर्थिक संपन्नता ही जीवन का ध्येय हो गया है। जब मूलभूत आवश्यकताएँ पूरी हो जाती हैं, तब मनुष्य उससे कुछ अधिक करना चाहता है जिससे भौतिक आवश्यकताएँ उत्पन्न होती हैं। इस भौतिकवादी चेतना के कारण फिर आपसी संबंधों को निर्धारित करने वाली धुरी अर्थ बन जाता है। जिससे परंपरागत मूल आस्थाएँ क्षीण होती जाती हैं। आधुनिक साहित्य किसी एक वाद या चर्चा का साहित्य नहीं है, बल्कि आज के साहित्य में विषयों की विविधता परिलक्षित होती है।

मनीषा कुलश्रेष्ठ उन कहानीकारों में से एक हैं जो किसी पूर्वधारणा से बँधी नहीं हैं। उनकी कहानियाँ अलग-अलग रंगों में रँगी हुई हैं। लेखिका अपनी कहानियों को आधार बनाकर आर्थिक परिवेशगत यथार्थ का चित्र पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करती हैं, वे चित्रित करती हैं कि किस प्रकार से आर्थिक विषमताओं के चलते परिवार में आज बिखराव हो रहा है। वर्तमान समय में समाज में परिवार का विघटन किस प्रकार से अपनी चरम सीमा पर है। मनीषा कुलश्रेष्ठ ने अपनी कहानियों में आर्थिक परिवेशजन्य समस्याओं को व्यक्त किया है, जिसमें आर्थिक विघटन, वेश्यावृत्ति, बेरोज़गारी, आर्थिक संकट व आतंकवाद, धन पर केंद्रित होता मनुष्य, भ्रष्टाचार आदि समस्याओं को वर्णित किया है। मनीषा कुलश्रेष्ठ ने कहानियों में इसी आर्थिक परिस्थिति के कारण सामाजिक जीवन में आये बदलाव को भी चित्रित किया है।

भारत देश पहले कृषि एवं धर्म प्रधान था लेकिन वर्तमान में अर्थ प्रधान हो गया है और आने वाले कुछ वर्षों में भारत अर्थव्यवस्था में दुनिया के तीसरे नंबर का देश हो जाएगा। आज पन्चानबे प्रतिशत लोगों का पैसा पाँच प्रतिशत लोगों के पास है। अर्थव्यवस्था समाज का एक महत्त्वपूर्ण अंग माना गया है। जीवन कार्य परिवेश के साथ बदलते रहते हैं। इसे समाज में रहकर अनुभव किया जा सकता है। आजकल आर्थिक व्यवस्था ही जीवन को गति दे रही है। विश्व में निर्धनता सामाजिक, नैतिक तथा बौद्धिक समस्या है। अर्थ की असमानता या असमान वितरण के कारण गरीबी जन्म लेती है। आर्थिक रूप से गरीब व्यक्ति अपनी मूलभूत आवश्यकताएँ तथा रोटी, कपड़ा और मकान की पूर्ति नहीं कर पाता है। आर्थिक निर्धनता से विवश हो व्यक्ति वेश्यावृत्ति आतंकवाद, बेरोज़गारी जैसी समस्याओं का सामना करता है।

देश और समाज के उन्नति में अर्थव्यवस्था की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। समय के परिवर्तित होने के साथ-साथ आर्थिक बदलाव भी स्वत: ही होने लगते हैं। आर्थिक व्यवस्था के साथ ही महानगरीय ढाँचा भी परिवर्तित होता है। लघु उद्योगों का स्थान कुटीर उद्योग लेने लगते हैं तब कई विषमता उत्पन्न होती है। इस विषमता के कारण बेरोजगारी और मँहगाई बढ़ने लगती है और यह विषमता ही लोगों के जीवन में जहर घोलने का काम करती है। 'औद्योगीकरण व्यापक रूप से आर्थिक विकास और रहन-सहन के स्तर में सुधार की कुंजी माना जाता है। निर्माण उद्योग के रूप में औद्योगीकरण को आर्थिक स्थिरता व निर्धनता के समाधान के लिए संजीवनी माना गया है।' **(सिंह, वी एन, सिंग जनमेजय 'नगरीय समाजशास्त्र' पृ. 101-102)** लेकिन वास्तविकता इसके बिल्कुल विपरीत होती है। इनके कारण औद्योगिक नगरों के विभिन्न वर्गों में विषमताएँ दिखाई देने लगती हैं। महानगरीय समाज तीन वर्गों में विभाजित हो जाता है-उच्च वर्ग, मध्यमवर्ग और निम्न वर्ग। उच्च और मध्यम वर्ग शोषक बन जाते हैं और निम्न वर्ग शोषित हो जाता है।

अर्थ, समाज की केंद्रीय शक्ति है। संसार के सभी कार्यकलाप अर्थ पर ही आधारित हैं। सामान्यत: आर्थिक दृष्टि से उन्नत समाज को ही विकसित समाज कहा जाता है। वर्तमान में सामाजिक संबंधों का

आधार प्रमुखत: अर्थ बन गया है। 'अर्थ ही समाज की शिराओं में बहने वाला रक्त है जो सम्पूर्ण समाज का जीवन संचालित करता है। प्रत्येग युग का सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक जीवन अर्थ प्रक्रिया से प्रभावित रहा है। विकास का मूल आधार अर्थ ही है।'

(पानेरी, हेमेंद्र कुमार, स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास पृ. 204)

स्वतंत्रता के बाद देश का लक्ष्य सामाजिक और आर्थिक विषमता दूर करना था। किन्तु समाज का खिंचाव अर्थ के प्रति अधिक होने के कारण हमारा पूरा ध्यान सिर्फ अर्थ प्राप्ति ही रहा। इस कारण हमारे सामाजिक, नैतिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों का विकास उतना नहीं हो पाया जितना कि आर्थिक स्तर पर हुआ। आर्थिक कठिनाइयों में फँसकर दो जून की रोटी भी दुर्लभ है। इस विषमतापूर्ण जीवन संघर्ष की अभिव्यक्ति, मनीषा कुलश्रेष्ठ ने अपनी कहानियों में किया है। उन्होंने आर्थिक निर्धनता के कारण गरीबी में जीते लोगों तथा जीविकोपार्जन के लिए संघर्षरत लोगों का चित्रण किया है। 'कालिन्दी, खरपतवार, एक मुट्ठी छाँव, स्वाँग, मास्टरानी, रक्स की घाटी और 'शब-ए-फितना', 'कुरजा', 'कठपुतलियाँ' और 'अवक्षेप' कहानियों में गरीबी और उसके कारणों का चित्रण किया है। आर्थिक विपन्नता के विविध पक्ष लेखिका की कहानियों में आए हैं जिनका विवरण निम्नलिखित बिन्दुओं में दिया गया है –

वेश्यावृत्ति में किसी प्रकार का भावात्मक लगाव न होकर धन कमाना ही एक मात्र उद्देश्य है। पुरुष अपनी यौन संतुष्टि पाने के लिए स्त्रियों के शरीर का खरीदार बनता है और स्त्रियाँ धन कमाने के उद्देश्य से अपने शरीर को बेचा करती हैं। वेश्यावृत्ति एक सामाजिक कोढ़ है। 'वेश्यावृत्ति को हालाँकि सामान्यत: किसी स्त्री द्वारा किसी पुरुष से संबंधों की स्थापना के विनिमय स्वरूप धन-संपदा शुल्क प्राप्त करने के अर्थों में परिभाषित किया जाता है।' **(बी मोरी 'वर्तमान सामाजिक समस्याएँ, कारण एवं निवारण' पृ. 126)**

औद्योगीकरण और भौतिकवाद ने समाज में आर्थिक विषमता उत्पन्न कर दी। निर्धनता इसका सबसे बड़ा कारण है। पैसे की आवश्यकताओं, बेरोज़गारी तथा निर्धनता के कारण ही स्त्रियाँ गलत कार्य करती हैं। अर्थ के लिए वे अपनी मान-मर्यादा सब कुछ बेच देती हैं भले ही परिणाम भयावह हो किन्तु वर्तमान आवश्यकता को पूरा करने के लिए वे अपना भविष्य बर्बाद कर देती हैं। मनीषा कुलश्रेष्ठ की 'कालिन्दी' कहानी में इस घृणित कार्य का चित्रण मिलता है। इस कहानी में पेट की भूख को शान्त करने के लिए अपना शरीर बेचती स्त्री तथा वेश्यावृत्ति से निकलने के लिए अन्य विकल्पों की खोज का चित्रण किया गया है। निर्धनता व्यक्ति के लिए एक बहुत बड़ी विडम्बना है। निर्धनता में गरीब स्त्री का जीवन और भी कष्टकारी हो जाता है। समाज की आँखें सदैव ऐसी औरतों को अपना शिकार बनाती आई हैं। निर्धनता के कारण स्त्रियाँ अपनी देह बेचने को विवश हो जाती हैं। रोजमर्रा की जरूरतों को पूरा करने के लिए कुछ वेश्याएँ बन जाती हैं और 'कुछ ऐसी, जो चुपचाप अपने बच्चों से छिपकर, पति या पिता की सहमति से दैहिक सुख के बदले में घर का खर्च चला रही थीं। बहुत कम कीमत पर।' **(कुलश्रेष्ठ, मनीषा 'गंधर्व-गाथा' पृ. 30)**

अत: स्त्रियों को घर चलाने के लिए विवशतावश अपना शरीर बेचना पड़ता है। न चाहते हुए भी पिता या पति द्वारा प्रताड़ित हो, वे इस कुकृत्य को करती हैं। पैसे की कमी के कारण तलाकशुदा नारी, विधवा नारी या अकेली नारी का अपना व अपने बच्चों का पेट भरना कठिन हो जाता है। अनपढ़ होने के कारण या अन्य काम में निपुणता न होने के कारण उन्हें कोई काम भी नहीं मिलता। विवश हो स्त्री वेश्यावृत्ति को अपनाती है। 'कालिन्दी' कहानी की 'जमना' की माँ अपना शरीर बेचकर अपने दोनों बच्चों का पेट पालती थी। उसकी माँ वेश्यावृत्ति को अपनाकर अपना व अपने बच्चों का गुजारा करती। जमना को यह सब करना पसंद नहीं था। जमना अपनी माँ की दयनीय स्थिति को बताती है कि 'मैं देखती माँ के बदन पर तरह-तरह के निशान। सिगरेट के जले सलेटी निशान, नीले-जामुनी निशान और बहुत बुरी तरह डर जाती। मुझे माँ पर गुस्सा आता। यह बर्तन झाड़ू क्यों नहीं कर लेतीं। दस-दस रुपये के लिए मर्दों से खुद को कुचलवाती क्यों हैं।' **(वही पृ. 40)**

लेखिका ने इस कहानी के माध्यम से स्त्रियों को अन्य उपाय अपनाने की बात भी की है। गरीब अकेली स्त्री कभी किसी के घर झाड़ू-बर्तन कर, तो कभी सेल्स गर्ल बन अपना जीवन यापन भी करती है। जब वहाँ पर भी उसके वेश्या समाज से होने का पता चलता है तो उन्हें काम छोड़कर वहाँ से जाना पड़ता है। जमना के माध्यम से लेखिका ने वेश्या समाज से संबंधित स्त्री की विवशता का चित्रण किया है। इस कहानी में जमना छोटे-मोटे काम करने के उपरान्त एक मॉडल बन जाती है। हालाँकि हमारे भारतीय परिप्रेक्ष्य में ऐसी स्त्री को अच्छा नहीं समझा जाएगा जो 'मॉडलिंग' करे। लेकिन फिर भी अपने शरीर को कुचलवाने से कई गुना अच्छा है 'मॉडल' बन जाना। लेखिका ने इस कृत्य को ऐसी स्त्रियों के आत्मनिर्भर बनने में सहायक

बताते हुए धन कमाने के बेहतर उपाय भी माना है। इस कार्य को करने में भी जमना को काफी मेहनत करनी पड़ती। आर्ट कॉलेज में प्रोफेसर बच्चों को इसके बारे में बताते हुए कहते हैं कि, 'ये कोई फैशन मॉडल्स थोड़े ही है, न किसी ब्यूटी कांटेस्ट की देन हैं, ये हर आकार, लिंग और आयु के साधारण लोग हैं, जो यथार्थवादी कला को जन्म देने में हमारी मदद करते हैं। यहाँ नग्नता मायने ही नहीं रखती। आप कला की बारीकियों में उलझ जाते हैं, प्रकाश, छाया, कटावों और कोणों के उकेरने की तकनीकी में उस वक्त आप कला के बारे में सोच रहे होते हो। यहाँ ये प्रदर्शन के लिए नहीं बिठाए जाते हैं, ये तो 'सुपर प्रोफेशनल्स' हैं।' **(वही पृ. 42)**

जिस स्त्री के शरीर को वेश्यावृत्ति में केवल कामना पूर्ति करने की वस्तु समझा जाता है, वहीं आर्ट गेलरी में कला रूप में देखा जाता है। अत: लेखिका ने न केवल वेश्या बनती अकेली व गरीब स्त्री की स्थिति का चित्रांकन किया है अपितु उसके साथ ही व्यक्ति को स्वयं प्रयास कर उस गरीबी से निकलने के लिए निरन्तर प्रयासरत भी बताया है। कहानी सकारात्मक मोड़ लेती है और जमना बिना वेश्यावृत्ति को अपनाये हुए न केवल निर्धनता से बाहर निकलती है अपितु अपने बेटे को भी उज्ज्वल भविष्य देती है। उसने अपने पितृविहीन बेटे को भी उस माहौल से निकालकर क्रमश: एक मॉडल और बाद में विज्ञापन फोटोग्राफर बनने का अवसर प्रदान किया। यह कहानी आज के जमाने में भी आदर्शोन्मुख यथार्थवाद का एक समकालीन उदाहरण प्रस्तुत करती है। वेश्यावृत्ति एक सामाजिक कोढ़ है, जिसने स्त्री की अस्मिता को पूर्णतया निगल लिया है। स्त्री विक्रय जैसे अमानवीय कृत्य से स्त्री सम्मान को जहाँ ठेस लगी है, वहीं पुरुष की कुरूपता भी उजागर हुई है।

वर्तमान युग में इस कथन के माध्यम से बेरोज़गारी के कारण बिखरते परिवारों का बोध होता है। केवल गाँव के ही युवाओं का पलायन नहीं हो रहा है। बल्कि शहरों से भी युवा देश छोड़ विदेशों की ओर पलायन कर रहे हैं। शिक्षित व अशिक्षित दोनों वर्गों के लिए नौकरी पाना कठिन हो गया है। वर्तमान में खड़ी इस जटिल समस्या को लेकर लेखिका ने 'अनामा' कहानी में चिंता व्यक्त की है। इस कहानी में अनामा जब विदेश से भारत लौटती है तो, यहीं रहकर नौकरी करने का निर्णय लेती है और शम्भू दयाल से कहती है कि 'आज के दिनों में नौकरी खोजना! एक चैलेंज है।' **(वही पृ. 19)**

बेरोज़गारी के कारण मनुष्य को धन के अभाव में जीवन गुजारना पड़ता है। गरीब बेरोज़गार व्यक्ति की विवशता को लेखिका ने 'एक मुट्ठी छाँव' कहानी में अभिव्यक्त किया है। कहानी का पात्र सूर्जमल नामक मजदूर काम की तलाश में अपने तीन बच्चों के साथ अपना घर छोड़ दूसरे शहर में इधर-उधर भटक रहा था। सूर्जमल गरीब है। मजबूरी में देहाड़ीमिस्त्री का काम करके अपने परिवार का पेट पालता है। सूर्जमल अपनी पत्नी के इलाज़ के लिए अपनी ज़मीन गिरवी रख पैसा लाता और सारा पैसा पत्नी के इलाज में लगा देता है। पत्नी के भाई से भी उधार लेकर पत्नी का इलाज करवाता है। सूर्जमल अपनी पत्नी के इलाज के लिए उसे घर से दूर शहर के अस्पताल में भर्ती करवाता है, जहाँ सारा पैसा खत्म हो जाता है। जिसके कारण बच्चों और अपने लिए खाना व सिर छुपाने की व्यवस्था नहीं कर पाता। सूर्जमल अपनी विवशता बताते हुए कहता है कि 'मजदूरी का काम मिल जाएगा तो ये बच्चे लेके चला आया काम ढूँढ़ने। कल रात एस.एम.एस. अस्पताल के जनाना वारड नरस ने मेरी घराली को पलँग पे से ज़मीन पे डाल दिया है। परसों ऑपरेसन हुआ है? रसौली का। वो कभी होस में रहती है, कभी बेहोस हो जाती है। हस्पताल में किसके भरोसे छोड़ता बच्चे?' **(वही पृ. 104)**

भारत में अनेक ऐसे मजदूर हैं जो मेहनत-मजदूरी करके कठिनाई से दो वक्त की रोटी जुटा पाते हैं, उस पर यदि घर का कोई सदस्य बीमार हो जाए तो वह कर्ज लेने को विवश हो जाता है। बेरोज़गार व्यक्ति अपने आपको बेसहारा समझता है। रोज़गार पाने के लिए गाँव से नगर, नगर से महानगर और महानगर से दूसरे देशों में भटकता रहता है।

समाज में बढ़ती बेरोज़गारी का एक कारण आतंकवाद भी है। आतंकवादी घटनाएँ कहीं-न-कहीं घटित होती रहती हैं। कश्मीर ऐसा क्षेत्र है यहाँ शायद ही कोई ऐसा दिन होगा कि गोलीबारी या बम विस्फोट न हो। कश्मीर में चल रही इन सभी गतिविधियों का प्रभाव वहाँ के पर्यटन तथा व्यवसाय पर पड़ा है। कश्मीर एक पर्यटन स्थल है यहाँ पर बहुत से बाग-बगीचे झरने, झीलें, ऐतिहासिक स्थल आदि हैं जिन्हें देखने के लिए दूर-दूर से लोग अन्य देशों या राज्यों से आते हैं। असंख्य पर्यटक यहाँ भ्रमण करने के लिए आते हैं। पर्यटकों के आवागमन से वहाँ के लोगों की आजीविका चलती है। परन्तु जब वहाँ आतंकवादी गतिविधियाँ होती हैं तो पर्यटकों का आवागमन कम हो जाता है जिसके कारण वहाँ के लोगों की जीविका पर प्रभाव पड़ता है। आतंकवाद के कारण भी लोग बेरोज़गारी की समस्या का सामना कर रहे हैं। बहुत से लोग पथभ्रष्ट हो धन कमाने के लिए कभी-कभी आपराधिक रास्तों को भी अपना लेते हैं। आतंकवादी बेरोज़गार युवाओं को पैसों का लालच देकर आतंकवादी बनने को विवश कर देते हैं। कश्मीर में बहुत-से युवा बेरोज़गारी के कारण आतंकवादी घटनाओं को अन्जाम देते हैं। उपर्युक्त संदर्भ से युग यथार्थ का बोध

होता है कि व्यक्ति धन के अभाव में गलत राह अपनाकर अपने परिवार का भरण-पोषण करता है। अन्यथा बदहाली का जीवन जीने के लिए विवश है। मनीषा कुलश्रेष्ठ ने 'रक्स की घाटी और शब-ए-फितना' कहानी में आतंकवाद के कारण आये आर्थिक संकट, गरीबी तथा भूखमरी का जीवन जीते लोगों की दयनीय स्थिति का मार्मिक चित्रण किया है।

आतंकवाद के कारण ऐसी दुर्दशा हो गई है कि वे अपनी मौत का इंतजार कर रहे हैं। जब तक साँसे हैं जो भी रूखा-सूखा जला हुआ मिलता है, उसे निगल रहे हैं और गुजर-बसर कर रहे हैं। खाना खरीदने के लिए अर्थ की आवश्यकता होती है, जोकि बिना किसी रोजगार के संभव नहीं। 'रक्स की घाटी और शब-ए-फितना' में इसी गरीबी, भुखमरी की त्रासदी काबड़ा कारुणिक चित्रण है-'एक लकड़ी का टुकड़ा चूल्हे में सरका दिया और उसे कुछ खाने को दिया, मुरब्बे में फफूँद लगी थी और रोटी जली हुई थी। डर, गरीबी और भूख ने बाहर-भीतर सब ध्वस्त कर दिया, उसने पहला गुस्सा तोड़ा और निगल लिया।' **(वही पृ. 69)**

मजहबी आतंकवाद के कारण बेरोजगारी में रह रही गजाला कंप्यूटर सिखाना और पढ़ाना छोड़ एक अधेड़ व्यक्ति से विवाह करना चाहती है और कहती है कि 'मैं किसी भले, अमीर आदमी से शादी कर लूँ, लड़कियों को किताब पढ़ाना और खुद कंप्यूटर पढ़ना बंद कर दूँ?' **(वही पृ. 70)**

भारत में गरीबों की जनसंख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। अमीर अधिक अमीर और गरीब और गरीब होता जा रहा है। पढ़-लिखकर भी व्यक्ति रोजगार से वंचित है। वर्तमान समय में बेरोज़गारी की समस्या इतनी जटिल व प्रबल हो चुकी है कि लोग कुण्ठित हो आत्महत्या तक कर बैठते हैं। 'मौसमों के मकान सूने हैं' कहानी में बेरोजगारी के कारण आत्महत्या करते लोगों का वर्णन है। कहानी में एनोनिमस अपनी निराशाजनक परिस्थिति तथा आत्महत्या का कारण बताते हुए लिखता है कि 'मैं 40 साल का अकेला कुँवारा हूँ। मुझे माइग्रेन के दौरों और टॉपर होते हुए बेरोज़गारी ने बरबाद कर रखा है।' **(वही पृ. 86)**

बेरोजगारी के कारण युवाओं को लगता है कि पढ़-लिखकर, उच्च श्रेणी प्राप्त करने पर भी यदि नौकरी न मिले तो पढ़कर क्या करना है। अत: बेरोज़गारी वर्तमान युग की गम्भीर व जटिल समस्या है। बेरोज़गारी के कारण व्यक्ति अपना गुजारा करने में असमर्थ है। इसके साथ ही कुछ लोग आपराधिक घटनाओं से जुड़ते जा रहे हैं। बेरोज़गारी के कारण ही लोग निर्धनता का जीवन जीने को मजबूर है।

अर्थ-केंद्रिता के परिणाम स्वरूप आज वृद्धों के अकेलेपन की समस्या खड़ी हो गयी है। बहुत से बच्चे धन कमाने के लिए अपने माता-पिता को को छोड़ दूसरे शहरों में बस जाते हैं या फिर विदेशों में चले जाते हैं। कुछ बच्चे अपने माता-पिता को वृद्धाश्रम भी छोड़ आते हैं। कुछ ऐसी भी संतानें हैं, जो अपने काम में व्यस्त रहते हुए माता-पिता के लिए भौतिक सुविधाएँ उनके कमरे में पहुँचाकर अपनी जिम्मेदारी से मुक्त हो जाते हैं। परन्तु वे यह नहीं समझ पाते कि वृद्धावस्था में व्यक्ति को जो स्नेह, जो लगाव अपने बच्चों से चाहिए वो सब भौतिक वस्तुओं से प्राप्त नहीं हो सकता है।

लेखिका ने 'परिभ्रान्ति', 'एक मुट्ठी छाँव' तथा 'प्रेत कामना' कहानी में वृद्धों के इसी अकेलेपन को दिखाया है। परिभ्रान्ति कहानी में वृद्ध पिता भौतिक सुख-सुविधाओं से युक्त कमरे में अकेले रहता है और कोई उन्हें पूछने भी नहीं आता। उन्हें 'अपना बड़ा-सा सर्वसुविधायुक्त कमरा बच्चों ने मुहैया करवा रखा था। ए.सी., टी. वी., फलों व स्वस्थ्य पेयों व उनकी दवाओं से घिरा छोटा फ्रिज, दो अखबार, स्टडी टेबल, बेड साइड लैम्प कमरे से लगा गर्म-ठंडे पानी की सुविधा वाला बाथरूम। इससे अधिक आदर्श स्थिति क्या हो सकती थी एक एकाकी विधुर की अपने बेटों के घर में !' **(कुलश्रेष्ठ, मनीषा 'कठपुतलियाँ' पृ. 76)** इन सभी सुविधाओं को लेकर लेखिका ने आदर्श स्थिति कहकर, अर्थकेन्द्रित समाज पर व्यंग्य किया है। उन्हें यह लगता है कि मनुष्य से अधिक महत्त्वपूर्ण भौतिक सुख-सुविधा के प्रसाधन है। अपने मन के भावों की अभिव्यक्ति वस्तु से नहीं अपितु अपने अपनों से की जाती है। केवल भौतिक सुविधाएँ उपलब्ध करवाकर अपने वृद्ध माता-पिता के प्रति कर्तव्य से पल्ला झाड़ लेना व्यक्ति में व्याप्त अर्थकेन्द्रिता को अभिव्यक्त करता है। मनीषा कुलश्रेष्ठ की इस कहानी से बच्चों में अर्थ की महत्ता के कारण माता-पिता के प्रति दायित्वहीनता का बोध होता है। अत: मनीषा कुलश्रेष्ठ की 'ओ मरियम, अनामा, परिभ्रान्ति, प्रेतकामना' तथा 'एक मुट्ठी छाँव' कहानियाँ आत्मकेन्द्रिता तथा उसके प्रभाव व परिणामों से पाठकों को अवगत करवाती है।

'भ्रष्टाचार का शब्दकोशीय अर्थ है, जिसका आचार बिगड़ गया हो, आजकल की वह बहुत बिगड़ती हुई स्थिति जिसमें अधिकारी तथा कर्मचारी विहित कर्तव्यों का पालन निष्ठापूर्वक, भली-भाँति और समय पर नहीं करते बल्कि मनमाने ढंग से, विलंब से तथा अनुचित रूप से करते हैं।'

(वर्मा, रामकुमार 'मानक हिंदी कोश खंड चार' पृ. 251)

'भ्रष्टाचार सार्वजनिक हित की अवहेलना करता है और व्यक्तिगत स्वार्थों की पूर्ति हेतु व्यक्ति को प्रोत्साहित करता है, जिसके कारण अनुचित साधनों का प्रयोग करता है। आज भारत में राजनीति, प्रशासनिक, आर्थिक, सामाजिक आदि विभिन्न क्षेत्रों में भ्रष्टाचार की वृद्धि हुई है।'

(शर्मा, देवनारायण, 'साठेत्तरी हिंदी उपन्यासों में सामाजिक समस्याएँ' पृ. 251)

मनीषा कुलश्रेष्ठ की 'मास्टरानी' कहानी में शिक्षा विभागों में स्थानांतरण को लेकर चल रहे व्यवसायीकरण का पर्दाफाश किया गया है। सुषमा अपने परिवार के साथ रहने के उद्देश्य से अपने ही जिले में स्थानांतरण करवाना चाहती है, परन्तु शिक्षा विभाग के चक्कर काटने के बावजूद भी उसका स्थानांतरण नहीं हो पाता, तब वह मंत्री से मिलने का निर्णय लेती है। वहाँ पर भी लालची लोगों की जीभ लपलपाती है। शिक्षा मंत्री से मिलाने वाला व्यक्ति सुषमा को कहता है कि– 'मैडम, मंत्री के खास आदमी मेहता जी, तो मिल गए, दोपहर एक बजे तक यहीं पहुँच भी जाएँगे। थोड़े स्पष्टवादी कह रहे थे काम तो हो जाएगा पर रिर्वाड चाहिए। यानी पैसा।

'कितना धनजंय जी?'

'आपसे रियासत भी की तो तीस हजार तो हैं ही।'
पर मैं इन्तजाम के साथ नहीं आई।'

(कुलश्रेष्ठ, मनीषा 'कुछ भी तो रूमानी नहीं' पृ. 72)

रिश्वत लेने वाले तो भ्रष्टाचार को बढ़ावा देते ही है लेकिन देने वाले भी भ्रष्टाचार को बढ़ाते हैं। परन्तु देने वालों की भी विवशता है, यदि नहीं देंगे तो कोई और दे करके अपना काम निकलवा लेगा और न देने वाले को कोई पूछेगा भी नहीं। उसे कहीं दूर–दराज में फेंक दिया जाएगा। शिक्षा व्यवस्था में रिश्वतखोरी के इस यथार्थ को स्पष्ट करते हुए सुषमा का पति उससे कहता है कि 'इस शिक्षा विभाग के ट्रान्सफरों की भी भली चलाई, आज तुम करवा लोगी रिश्वत से तो दूसरी जाकर स्टे ले आएगी, फिर वो जुट जाएगी तुम्हें उखाड़ने में।'

(वही पृ. 99)

अत: पूरी की पूरी व्यवस्था में भ्रष्टाचार की दीमक लग चुकी है। जिसने व्यवस्था को भीतर से खोखला कर दिया है। भ्रष्टाचार ने अपनी जड़े प्रत्येक क्षेत्र में फैलाई है। भ्रष्टाचार हर क्षेत्र में देखने को मिलता है। मनीषा कुलश्रेष्ठ ने बड़ी बेबाकी से प्रशासनिक भ्रष्टाचार का चित्रण किया है।

अत: कहा जा सकता है कि धन के प्रति मनुष्य के जीवन में बढ़ती महत्ता ने मनुष्य को खुदगर्ज बना दिया है। धन के माध्यम से व्यक्ति अपनी मूलभूत जरूरतों की पूर्ति करता है भौतिक सुख–सुविधा धन द्वारा ही प्राप्त की जा सकती है। लेखिका ने अपने कहानियों के माध्यम से धन की महत्ता के कारण समाज में आये परिवर्तन को अभिव्यक्त किया है। गरीबी की स्थिति भी धन केंद्रिता की उपज है। इन सबका बोध हमें मनीषा कुलश्रेष्ठ की कहानियों में होता है। लेखिका ने धन के कारण बदलते संसार की सच्चाई से रूबरू करवाया है जिससे पाठक वर्ग पूर्णरूपेण लाभान्वित होगा।

रतिराम गढ़ेवाल
म. नं. 16/1557, सिद्धि विनायक परिसर,
सेक्टर–01, शिवानंद नगर, खमतराई,
रायपुर–492008 (छ.ग.)
मो.–9329826874

डॉ. रमणी चंद्राकर
सह प्राध्यापक
मैट्स विश्वविद्यालय रायपुर छत्तीसगढ़
मो.–9329826874

मँडला जिले में मध्य प्रदेश राष्ट्र भाषा प्रचार समिति की इकाई द्वारा प्रतिभा प्रोत्साहन प्रतियोगिता का आयोजन

नर्मदा का सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य

- शुभम चौहान

जन्म - 12 जुलाई 1994।
जन्म स्थान - गौहरगंज, रायसेन (म.प्र.)।
रचनाएँ - पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित।
सम्मान - भारत सरकार द्वारा राष्ट्रीय युवा सम्मान।

मनुष्य सदैव से प्रकृति का दत्तक पुत्र रहा है। पृथ्वी पर चारों ओर मनुष्य जब अपनी दृष्टि दौड़ाता है तब वह एक नैसर्गिक निकाय जिसे प्रकृति कहा जाता है, को देखता है। इसी प्रकृति से प्रत्येक प्राणी का जीवन एवं पालन-पोषण संभव है और प्रकृति का घटकीय विश्लेषण करने पर हम पाते हैं कि पृथ्वी पर उपस्थित वायुमंडल, पर्वत, वन, नदी व समुद्र का समाहार ही प्रकृति है। इतिहास के पृष्ठों को पलटने पर हम जब भी किसी सभ्यता के आविर्भाव और विकास का अध्ययन करते हैं तब हम उस सभ्यता के विकास का मुख्य आधार प्रकृति के इन्हीं घटकों के रूप में देखते हैं। इन घटकों में से मुख्यत: नदी सभ्यताओं की जननी एवं पोषक रही है। हम हर सभ्यता का अध्ययन करने पर यह आवश्यक रूप में पाते हैं कि उसके लोगों ने किसी न किसी नदी के किनारे पर वास किया एवं वहीं विकास के नए सोपान गढ़े। भारत में सात मुख्य नदियों में नर्मदा नदी का नाम मुख्य रूप से लिया जाता है। नर्मदा का उद्गम नदियों का मायका कहे जाने वाला प्रांत मध्य प्रदेश के अनूपपुर जिले के अमरकंटक से हुआ है। नर्मदा को पुराणों एवं अन्य ग्रंथ में शंकरी, रेवा, मेकलसुता, दक्षिण-गंगा, कृपा, विमला, चित्रोत्पला, रंजना, बालुवाहिनी, रुद्रदेहा, सोमारभवा आदि नाम से संबोधित किया गया है।

कोई भी नदी किसी भी स्थान विशेष में भौतिक रूप से तो महत्त्वपूर्ण होती ही है साथ ही साथ संबन्धित स्थान के परिवेश में उसका सांस्कृतिक महत्व भी अतुलनीय होता है। नर्मदा का भारत (विशेषकर मध्य प्रदेश एवं गुजरात) में सांस्कृतिक महत्व अत्यंत उत्कृष्ट रहा है। संस्कृति की पोषक के रूप में नर्मदा की महिमा वेदों-पुराणों आदि में रेखांकित की गई है। मध्य भारतीय संस्कृति को रेखांकित करने वाले साहित्यकार के रूप में प्रसिद्ध डॉ. श्रीराम परिहार अपनी पुस्तक 'संस्कृति सलिला नर्मदा' में लिखते हैं -

'सभ्यता एवं संस्कृति के विकास ने नदी किनारे आँखें खोलीं। नदी तीर्थ प्रमुख होते चले गए। मत्स्य पुराण के अनुसार अमरकंटक से लेकर रेवा-सागर संगम तक 10 करोड़ तीर्थ हैं। स्कंद पुराण में 60 करोड़ 60 लाख तीर्थों का उल्लेख है। वैसे तो कहा जाता है कि शिवकन्या नर्मदा के किनारे के सभी कंकर, शंकर हैं। नर्मदा का उद्गम स्थल अमरकंटक प्रसिद्ध तीर्थ है।'

(डॉ. श्रीराम परिहार, संस्कृति सलिला नर्मदा, पृ.13)

नर्मदा का नाम मध्य प्रदेश ही नहीं अपितु सम्पूर्ण भारत के सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में उच्च महत्व रखता है। उसके प्रति भारतीय विद्वानों ने सदैव से अपनी कृतज्ञता व्यक्त करते हुए उसका महिमा-गान किया है। 'संस्कृति-स्त्रोतस्विनी नर्मदा ग्रंथ' में उल्लेखित अग्र वाक्य एवं सूक्ति से यह स्पष्ट होता है -

'लेकिन नर्मदा-माहात्म्य का इतना विकास हुआ कि उसको अचिन्त्य, अलौकिक दैवी शक्ति का रूप देकर उपासना की प्रवृत्ति का जन्म हुआ। 'सहस्त्रनाम' इसका उदाहरण है कि जहाँ जो कुछ भी उत्कृष्ट है, सुंदर है, वह सब नर्मदा है। नदियों में नर्मदा ही श्रेष्ठ है 'नदीनां नर्मदा' ऐसा भी कहा गया है। दर्शन मात्र से नर्मदा पवित्र करती है- 'दर्शनादेव नार्मदम' ऐसी युक्तियाँ चल पड़ी। आराधकों ने भाव विभोर होकर कहा कि 'ए माँ! तुम्हारे विलक्षण महात्म्य को वेदों ने भी नहीं जाना। विचित्रम माहतम्यम तव जननि वेदैर्न विदितम।'

(डॉ. अयोध्या प्रसाद द्विवेदी, संस्कृति-स्त्रोतस्विनी नर्मदा, प्रस्तावना से)

नर्मदा की महिमा विभिन्न धार्मिक ग्रंथों में गाई गई है। हमारे संस्कृति के विद्वानों एवं महाकवियों में वाल्मीकि से लेकर तुलसीदास ने अपने महाकाव्य में नर्मदा को महिमा मंडित किया है। रामचरितमानस के अयोध्या कांड में तुलसीदास लिखते हैं -

'सुरसरि सरसई दिनकर कन्या।
मेकलसुता, गोदावरी धन्या॥
सब सर सिंधु नदी नद नाना।
मंदाकिनी कर करहीं बखाना॥'

(तुलसीदास कृत रामचरितमानस अयोध्या कांड दोहा क्र. 138 के ऊपर)

उपर्युक्त चौपाई में गंगा, यमुना, सरस्वती एवं गोदावरी के साथ नर्मदा का स्पष्टता पूर्वक उल्लेख किया गया है तथा उसे इन्हीं सबसे पाँच पवित्र नदियों में तुलसीदास जी द्वारा रखा गया है। इसी प्रकार नर्मदा का उल्लेख तुलसीदास उत्तरकांड में भी करते हैं। वे लिखते हैं –

'सिवप्रिय मेकल सैल सुता सी।
सकल सिद्धि सुख संपत्ति रासी।।'

(तुलसीदास कृत रामचरितमानस, बालकांड, दोहा क्र. 31 के ऊपर)

स्पष्ट है कि भारतीय समाज में पुरातन काल से ही नर्मदा नदी मात्र न होकर संस्कृति की वाहिनी एवं सभ्यता की रीढ़ रही है। फलत: उसे माँ नर्मदा की संज्ञा सामान्य जन-जीवन में दी गई है। पुरातन काल के कवियों के साथ ही भारतीय समाज के आधुनिक कवियों ने भी नर्मदा के महत्व को अपनी कविताओं में दोहराया एवं गाया भी है। माखनलाल चतुर्वेदी से लेकर शिवमंगल सिंह 'सुमन' तक रामचंद्र बिल्लोरे एवं यशस्वी कवि सुरेश उपाध्याय ने नर्मदा के विविध रूप अपनी कविताओं में प्रस्तुत किए हैं। रामचंद्र बिल्लोरे नर्मदा को ऋषियों की जीवन गीता कहकर पुकारते हैं, तो अपने कविता संग्रह 'विविधा' में शिव मंगल सिंह सुमन लिखते हैं –

'नर्मदा अमरकंटक के सुमनों की सौगात सजाती है
ओंकारेश्वर के बीच सकुचती सहमी सहमी आती है
जो धुआँधार में धारा का स्वर्गिक उल्लास लुटाती है
वह संगमरमरी बाँहों में बरबस बंदी बन जाती है
मांडू के महलों में जिसकी आभा अभिसार सजाती है
सपनों की रूपमती रेवा की रेखा सी रह जाती है।'

(शिवमंगल सिंह सुमन, विविधा, पृ. 73-74)

वहीं नर्मदा घाटी के कवि सुरेश उपाध्याय अपनी कविता में नर्मदा को लहर-लहर पर मंगल गीत सुनाती हुई नदी लिखते हैं। जैन धर्म एवं पूजनीय गुरु विद्यासागर मुनि महाराज भी नर्मदा का महिमा बखान अपनी कविता में करते हैं। क्योंकि नर्मदा लोक की नदी है तो सबसे अधिक नर्मदा का बखान लोक गीतों में हुआ है नर्मदा जिस-जिस स्थान से प्रवाहित होती है, वहाँ-वहाँ के लोग उसका अपनी भाषा में गुणगान करते हैं। यथा शहडोल एवं बघेलखंड में नर्मदा के लिए बघेली बोली में लोकगीत गाए गए हैं उसके पश्चात् बुंदेलखंड में उसकी महिमा सुबह-शाम गाने वाले लोकगीतों को गाते और स्वयं को धन्य मानते हैं एक लोकगीत की पंक्तियाँ अग्रलिखित हैं–

'बलम रेवा में बुड़की लगाव
जनम जौ तर जैहे।' **(श्री नर्मदा लोकगीत, पृ. 12)**

नर्मदा मात्र केवल पौराणिक रूप से ही समृद्ध नहीं है अपितु वह जहाँ भी अपनी उपस्थित रखती है वहाँ वह अपने साथ जीवित संस्कृति को प्रवाहित करती है। उसके प्रत्येक कंकर में शंकर है। नरसिंहपुर के बरमान में नर्मदा के गर्भ से शालिग्राम रूप में शंकर ही निकलते हैं। यह शालिग्राम एक विशेष प्रकार की बनावट लिए हुए होते हैं जिनको नर्मदा के गर्भ से निकलने के पश्चात् किसी भी काट छाँट की आवश्यकता नहीं पड़ती। इनका जैसा आकार होता है अपने आप में पूर्ण होता है। इन्हें सारे देश से आए हुए श्रद्धालु अपने साथ लेकर जाते हैं और अपने घर के मंदिरों में रखकर उनकी पूजा करते हैं। इस प्रकार नर्मदा का कण-कण पूजने योग्य है तथा नर्मदा पूर्ण रूप से एक संस्कार वाहिनी नदी के रूप में हमारे मध्य प्रदेश में विद्यमान है। नर्मदा के तट पर बसा ओंकारेश्वर आदि गुरु शंकराचार्य की तपोस्थली है। यहाँ से ज्ञान प्राप्त कर आदिगुरु भगवान शंकराचार्य ने अपने अद्वैतवाद को पूरे भारत देश ही नहीं अपितु सारे विश्व में स्थापित किया। वर्तमान में ओंकारेश्वर को अद्वैतवाद की जन्मस्थली कहने पर किसी भी प्रकार की अतिशयोक्ति न होगी। कहने का तात्पर्य है कि नर्मदा जहाँ-जहाँ से प्रवाहित होती है, वहाँ-वहाँ उसने अपने तट पर संस्कृति का पालन पोषण किया है। नर्मदा के तत्वों पर अनेक साधु-संन्यासी के तपस्थल पुरातन काल से ही रहे हैं। न जाने कितने साधु-संन्यासियों ने यहाँ पर मोक्ष प्राप्त किया होगा। उनकी गिनती करना लगभग असंभव है। डॉ. राघवेंद्र गुमास्ता अपनी किताब 'नर्मदा के शब्दचित्र' में लिखते हैं –

'नर्मदा का भक्त श्रवणध्वनि से अश्रव्य की यात्रा का पथिक ही तो है। तीव्र से मद्धम होकर अगम्य होती ध्वनि। ध्वनि क्या, अध्वनि। ध्वनि का चित्र रूप। कर्णग्राह्य से चिदालोकी विश्वाधारोत्तमशक्तिप्रिय सूक्ष्मातिसूक्ष्म चेतना की ओर अग्रसर अवस्था का उन्मुक्त ऊर्ध्वगामी प्रवाह। यही कारण है कि नर्मदा की परिक्रमा में देवता, सिद्ध, मुनि, यज्ञी, गंधर्व, मंत्री, नाग, किन्नर, मनुष्य सभी दौड़ते दीख पड़ते हैं। सबके परिक्रमा पथ स्वभाव, अभिरुचि एवं गमनशीलता के अनुसार परस्पर भिन्न अवश्य हैं, किन्तु नर्मदा वही हैं। कोई आकाशगामी, तो कोई पातालमार्गी, तो कोई जलमार्गी, तो कोई धरापथ सहचर है।'

(डॉ. राघवेंद्र गुमास्ता, नर्मदा के शब्द चित्र, पृ. 27)

लोक में नर्मदा का उत्कृष्ट स्थान रहा है, जहाँ-जहाँ नर्मदा बहती है वहाँ तो नर्मदा किनारो का प्रत्येक प्राणी नर्मदा भक्त ही है परंतु जहाँ नर्मदा नहीं बहती वहाँ पर भी नर्मदा का गुणगान लोक में अधिक स्पष्ट सुनाई देता है। नर्मदा के नर्मदा मध्य प्रदेश एवं गुजरात की जीवन रेखा है विशेष कर मध्य प्रदेश में से जीवित नदी का शासन की ओर से जीवित नदी का दर्जा प्राप्त है और अगर कोई नदी उसे प्रदेश में जहाँ वह बहती है वहाँ की अर्थव्यवस्था वह जीवन की रीढ़ हो तो वह एक प्रकार से वहाँ के लोगों की पलक होती है और अपने पालक को प्रसन्न करने हेतु उसकी संतान है, उसके यश गान किया ही करती

हैं। लोकगीतों में विशेष कर मध्य प्रदेश के प्रत्येक कोने में हमें नर्मदा के लोकगीत गूँजते दिखाई देते हैं। यहाँ नर्मदा किनारे बैठे संतों से लेकर गृहस्थ मंडलीय एवं माता-बहनों के मुख से लोक संस्कृति के वाहक नर्मदा के लोकगीत जब तब सुनाई देते हैं। यदा-कदा सुनाई देते हैं। बर्मन नरसिंहपुर मेले का एक लोकगीत कुछ इस प्रकार है –

'तरे नर नारी माई के स्नान में
मेला लागो बरमान में।
पूरब दिसा बनी सतधारा
निकरी रेवा फोर पहारा।
अर्जुन भीम ने बाँधी धारा
मेला लागो बरमान में।।'

(संस्कृत स्त्रोतस्विनी नर्मदा, दो अयोध्या प्रसाद द्विवेदी, मध्य प्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी पृ. 83)

होशंगाबाद जिसका प्राचीन एवं वर्तमान नाम नर्मदा के नाम पर ही नर्मदापुरम ही हो गया है इसके अलावा जबलपुर, नरसिंहपुर, ओंकारेश्वर महेश्वर, मंडला आदि में माँ नर्मदा के घाटों पर स्त्रियाँ, बड़े-बड़े बूढ़े, संत निशिदिन ही माँ नर्मदा का सांस्कृतिक रूप से आवाहन करते हुए अपना जीवन व्यतीत करते हैं। उनके मुख से निकले लोकगीत, आचमन मंत्र आदि नर्मदा की महिमा स्वत: ही बखान करते हैं। स्त्रियों के मुख से लोकगीत सुनना मनभावन लगता है। वे घाटों पर गाया करती हैं –

'ए री मैया नर्मदा तेरो जल अमृत लागे
भाग बड़े जो तेरो संग पाए।
तेरी माटी को कन-कन है पावन,
हर कन में शंकर मनभावन
जितै-जितै तेरो आँचल फैलो
सरग वहीं बस जाए।।' **(दिनेश मिश्र, संस्कृति सलिला नर्मदा पृ. 35)**

इस प्रकार प्रत्येक भारतवासी के हृदय में माँ नर्मदा का स्थान है, मध्य प्रदेश में नर्मदा नदी मात्र न होकर अपने आप में संस्कृति स्वरूपा है। जिसकी महिमा पुराकाल से ही यहाँ का प्रत्येक प्राणी गा रहा है। हम जानते हैं हमारी प्रकृति एवं संस्कृति परस्पर सहयोग से ही संतुलित अवस्था में रह सकती है। नर्मदा ने तो प्राणियों के प्रति अपनी माँ होने की भूमिका उच्चतम पैमाने पर निभाई है। अब नर्मदा के प्रति हमें अपनी संतान रूप की भूमिका का निर्वहन करना है। वर्तमान का मानव विकास की अंधी दौड़ में नर्मदा का दोहन अत्यधिक रूप में कर रहा है जिसे संतुलित अवस्था में करना आवश्यक है अन्यथा हम एक नदी को नहीं अपितु एक पूरी संस्कृति को विलोपित कर देंगे। हमारे आगे आने वाली पीढ़ियाँ नर्मदा को जान पाएँ एवं हमारी संस्कृति को उचित रूप में जान सकें और इससे जुड़ सकें इसके लिए यह आवश्यक है कि हम नर्मदा एवं उसके तटों के रक्षक बने रहें। उसके तटों की सुंदरता बनाए रखना उसके पानी को प्रदूषण मुक्त रखना हमारा परम कर्तव्य है, जिससे माँ नर्मदा आने वाली कई सभ्यताओं को अनवरत सिंचित करती रहे।

म. नं.-25, न्यू राजीव नगर,
सेमरा कला, (गीतांजल स्कूल के पास)
भोपाल-462010 (म.प्र.)
मो.-9399783182

हरदा जिले में मध्य प्रदेश राष्ट्र भाषा प्रचार समिति की इकाई द्वारा प्रतिभा प्रोत्साहन प्रतियोगिता का आयोजन

प्रेमचंद : आदर्श और यथार्थ के कथाकार

- किरण कुमारी

जन्म - 5 अप्रैल, 1962।
जन्मस्थान - केशावे, बेगूसराय, बिहार।
शिक्षा - एम. ए. हिन्दी, पीएच.डी.।
रचनाएँ - चार पुस्तकें प्रकाशित।

हिन्दी कथा-साहित्य के क्षेत्र में प्रेमचन्द का योगदान अप्रतिम है। उन्होंने एक ओर मुक्त कल्पना या तिलिस्मी फंतासियों के कथा-साहित्य को अपदस्त किया और दूसरी ओर छायावादियों की रंगीन रूमानी कल्पना के समानान्तर सामाजिक यथार्थ के कथा-साहित्य का सृजन किया। सामन्ती और रोमानी, दोनों प्रकार की साहित्यिक प्रवृत्तियों की धारा को पलटकर उन्होंने यथार्थवाद को साहित्य की वर्ण्यवस्तु के रूप में प्रतिष्ठित किया। कहानी उनके लिए बैठे ठालों का मनोरंजन नहीं रही, बल्कि वह सदा सोद्देश्य रही। उन्होंने अपनी कहानियों में नायक-नायिका के संयोग-वियोग का वितान नहीं ताना, बल्कि उनके माध्यम से जीवन की समस्याओं पर चिन्तन किया और उनके निदान ढूँढ़ने के प्रयत्न किए। प्रेमचन्द ने परिमाण और गुण दोनों दृष्टियों से कथा-साहित्य को समृद्ध किया है। 30 वर्षों की अवधि में फैली हुई अपनी रचना-यात्रा में प्रेमचन्द ने लगभग 300 कहानियाँ लिखीं। इनकी कहानियों में नगर का परिवेश भी प्राप्त होता है मगर गाँव से इनका अद्भुत लगाव है। कथाकार प्रेमचन्द में आदर्श और यथार्थ दोनों उपलब्ध हैं। इनकी कथा-यात्रा आदर्शोन्मुख यथार्थवाद से शुरू होती है परन्तु धीरे-धीरे वह वस्तुपरक यथार्थवाद के समीप होती गई है। बहुत दूर तक अपने कथा-कर्म में प्रेमचन्द समस्याओं का निदान सरल ढंग से ढूँढ़ने में प्रवृत्त दीखते हैं। इसके लिए हृदय परिवर्तन के गाँधीवादी सिद्धान्त का खूब सहयोग भी लेते हैं मगर कथा-कर्म के अन्तिम दौर में समस्याओं का निदान ढूँढ़ने में वे एक व्यक्ति के हृदय-परिवर्तन को पर्याप्त नहीं मानते। इन जटिल समस्याओं के समाधान के लिए समूची समाज-व्यवस्था, रूढ़ धार्मिक मान्यता और अवैज्ञानिक संस्कार-बद्धता के बदलाव पर वे बल देने लगते हैं। सरल ढंग से समाधान ढूँढ़ती हुई उनकी दृष्टि अगर 'नमक का दारोगा', 'बड़े घर की बेटी', 'मूँठ', 'मन्त्र', 'पंच-परमेश्वर', 'आत्माराम', 'बूढ़ी काकी', 'शूद्रा' आदि कहानियों में विद्यमान है तो 'नशा, सुजान भगत, लॉटरी, सवा सेर गेहूँ,' पूस की रात' और 'कफन' जैसी कहानियों में वस्तून्मुखी यथार्थवादी दृष्टि क्रियाशील है। आशावादिता और धार्मिकता भी प्रेमचन्द के कथा-सृजन के उपकरण हैं। धर्म का प्रेमचन्द ने अत्यन्त कुशलतापूर्वक धनात्मक उपयोग किया है। धर्म इनके यहाँ आदमी को आदमी से जोड़ता है। मनुष्य को देवत्व की दिशा में उन्नत करता है। जिस धर्म के नाम पर आज का आदमी आग बना घूमता फिर रहा है उसी धर्म की मंगल छाया प्रेमचन्द की कहानियों में चित्रित हुई है। प्रेमचन्द का कथा-लेखन शौक या दिल-बहलाव नहीं, वह सम्पूर्ण साधना है। उन्होंने जिन स्थितियों को जिया है उन्हें ही अभिव्यक्ति दी है; उन्होंने पात्र की साँस के साथ साँस मिलाई है। यही कारण है कि उनकी कहानियाँ केवल दिमाग पर दस्तक देकर ही चुक नहीं जातीं बल्कि हृदय में गहरे उतर जाती हैं। प्रेमचन्द को जानने के लिए उनके साथ होने के लिए, उनकी कहानियों के पात्रों के साथ-साथ जीना जरूरी है। प्रेमचन्द की भाषा सरल, सुघड़ और मुहावरों, सूक्तियों वाली है। कठिन, घुमावदार और पेचीदा लिखना आसान है, पर जीवन की पेचीदा और सूक्ष्म तथा गहरी बातों को बहते हुए पानी की तरह भाषा और शैली में प्रस्तुत कर पाना बहुत कठिन। प्रेमचन्द की शब्द-साधना ऐसी ही है जिसमें वे बड़ी-से-बड़ी बात पारदर्शी सफाई और सहजता से कह जाते हैं। जनता की बात जनता की ही भाषा में प्रेमचन्द ने रखी है। प्रेमचंद में अथाह मानवीय संवेदना है और वे निर्विवाद रूप से कथा-सम्राट हैं।

हिन्दी कथा-साहित्य अपनी अबतक की समूची यात्रा के दौरान अपने-अपने वृत्त में ही सही, किन्तु सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति का ही साहित्य है। कहना न होगा कि प्रेमचन्द ने अपनी कहानियों को समाज के यथार्थ से जोड़ कर उन्हें मानवीय जिन्दगी के लिए अहम बनाने का कार्य सम्पन्न किया है। कलम का यह सिपाही आज भी प्रासंगिक है। शिवकुमार मिश्र यथार्थ लिखते हैं-'जिस समय को आज हम जी रहे हैं, उसके एक-एक तेवर के साथ, उसके सारभूत सत्य के साथ, उसकी बेहद जटिल प्रश्नावली तथा उसके वैज्ञानिक एवं संगत हल के साथ, प्रेमचन्द और उनकी सर्जना का, प्रेमचन्द और

उनके सोच का गहरा रिश्ता है।' आयातित और ओढ़ी हुई आधुनिकता के आवेश में जो लोग प्रेमचन्द की प्रासंगिकता को महत्त्वाकांक्षावश प्राश्निक दृष्टि से देखते हैं वे यत्किंचित अपने ही बौनेपन को विवृत करते हैं। कथाकार प्रेमचन्द साम्प्रतिक युग के कंधों पर आरूढ़ हैं और जरूरत है कि हम प्रेमचन्द की मानवीय संवेदना के परिप्रेक्ष्य में निरंतर अपने को देखते रहें, तौलते रहें और सुधारते रहें। क्योंकि बकौल शिवकुमार मिश्र –'हिन्दुस्तान, प्रगति और समृद्धि से बोझिल, विज्ञापित हिन्दुस्तान, के भीतर जो यह अधिक बड़ा, अधिक सत्य और अधिक रोमांचक हिन्दुस्तान है, उसके भीतर से होकर गुजरने से निश्चय ही हमें मालूम होगा कि वाकई प्रेमचन्द और उनकी संवेदना का संसार, उनकी रची हुई दुनियागत नहीं हुई, वह आज भी बहुत बड़ी हकीकत है। इस दुनिया के लिए प्रेमचन्द की जो चिन्ता थी, वह आज की भी सबसे बड़ी चिन्ता है।'

प्रेमचन्द की प्रारम्भिक कहानियाँ 1906 से 20 के बीच सृजित हुई हैं। इस दौर की अधिकांश कहानियाँ कथाकार के आरम्भिक विश्वासों और धारणाओं की कहानियाँ हैं। इनमें संयोगों और हृदय–परिवर्तनों की बहुतायत है एवं ऐतिहासिक इतिवृत्तों के सहारे शूरता और बलिदान की गाथा चित्रित की गई है। इस दौर की प्रतिनिधि कहानियों में 'पंचपरमेश्वर, बड़े घर की बेटी, सौत, नमक का दारोगा, रानी सारन्धा,' मर्यादा की वेदी' और 'राजा हरदौल' आदि उल्लेखनीय हैं। अपने प्रारम्भिक दौर में कथाकार प्रेमचन्द पर ब्रह्म समाज, आर्य समाज, जैसे सुधारवादी आंदोलनों का भी प्रभाव है। प्रेमचन्द की ऐतिहासिक कहानियाँ ह्रासोन्मुख सामंती युग की खोखली मान्यताओं को प्रकट करती हैं। 'राजा हरदौल' कहानी में राजपूती परिवेश में सामन्ती मान–मर्यादा एवं जातीय गौरव को रेखांकित किया गया है। राजपूत राजा के राज्य–आदर्श एवं नारियों के परम्परागत राजपूती आदर्श का प्रारूप हरदौल सिंह और रानी कुलीना में दृष्टिगत होता है। इसमें जातीय गौरव के लिए प्राणों तक को न्योछावर करने के सामंती ढंग की चर्चा की गई है। प्रत्यक्ष रूप से कुछ लोगों को लग सकता है कि इन सामन्ती मूल्यों के साथ कथाकार का यत्किंचित मोह है किन्तु बड़ी प्रवीणता से प्रेमचन्द ने इन मूल्यों की विसंगति को उघारा है। राष्ट्र–प्रेम का आदर्श गलत नहीं है, परन्तु सामन्ती मूल्य उसे अपने व्यक्तिगत स्वार्थों के लिए जिस रूप में प्रस्तुत करते हैं, वह गलत है। 'रानी सारन्धा' कहानी में निजी मान–मर्यादा के लिए अपने प्राणों की भी चिन्ता न करने वाली रानी सारन्धा कुल–मर्यादा को अपने जीवन से भी अधिक मूल्यवान एवं प्रिय समझती है–'कैसा हृदय है! वह स्त्री जो अपने पति पर प्राण देती थी, आज उसकी प्राणघातिका है। जिस हृदय से आलिंगित होकर उसने यौवन सुख लूटा, जो हृदय उसकी अभिलाषाओं का केंद्र था, जो उसके अभिमान का पोषक था, उसी हृदय को सारंधा की तलवार छेद रही। किस स्त्री की तलवार से ऐसा काम हुआ है?' **(प्रेमचंद मुंशी, मानसरोवर, गृहदाह और अन्य कहानियाँ, पृ.–52.)**

1908 ई. में प्रकाशित बहुचर्चित और अंग्रेज सरकार द्वारा प्रतिबन्धित कथासंग्रह 'सोजेवतन' में स्वतंत्रता को चरम मूल्य मानते हुए उसके लिए शहीद हो जाने वाला भाव व्यक्त हुआ है। इन कहानियों में स्वतंत्रता के प्रति कथाकार का रोमांटिक और भावुक ढंग स्पष्ट है। इस दौर की हृदय–परिवर्तनवादी, समझौतावादी और सुधारवादी कहानियों में प्रेमचन्द का रचना–मानस जीवन और उसकी समस्याओं के प्रति गाँधी जी के आदर्शात्मक दृष्टिकोण से प्रभावित है। प्रेमचन्द की ऐसी अधिकांश कहानियाँ इकहरी अन्विति को लेकर समाधान बिन्दु तक पहुँचने की शीघ्रता में भागती दिखाई देती हैं। शिवकुमार मिश्र लिखते हैं–'प्रेमचंद को समझने के लिए हमें कहीं से कुछ भी उधार लेने की जरूरत नहीं है, केवल समय और उसके अहम सरोकारों से अपनी पहचान गहरी और मजबूत करनी है, जिसके बीच हम जी रहे हैं और प्रेमचंद भी जिये थे, उस दुनिया से उसकी सारी सरलताओं और पेचीदगियों के साथ वाकिफ होना है, और केवल वाकिफ ही नहीं होना, उसके भीतर धँसते हुए उससे होकर गुजरना है जो अपने तमाम रंगों के साथ प्रेमचंद के जेहन से होते हुए उनकी सर्जना में फैली है, जिससे प्रेमचंद का भावात्मक लगाव था।'
(सं. सिंह डॉ. दिनेश प्रसाद, प्रेमचंद की विविध आयाम, पृ. 233–234.)

हृदय–परिवर्तन के नुस्खेवाली अनेक कहानियों का अन्त प्रायश्चित भरे सूक्त वाक्य से होता है। 'मन्त्र' कहानी में डॉक्टर चड्ढा स्वार्थवश बूढ़े देहाती के बेटे का इलाज नहीं करते, परन्तु जब उन्हीं को बेटे को साँप काट लेता है तो वही बूढ़ा ओझा के रूप में उनके बेटे को पुनर्जीवन देता है। अन्त में परिवर्तित हृदय वाले डॉ. चड्ढा कहते हैं–'उसकी सज्जनता ने मुझे ऐसा आदर्श दिया है जो अब से जीवन पर्यन्त मेरे सामने रहेगा।'
(प्रेमचंद मुंशी, मानसरोवर पाँच, निमंत्रण तथा अन्य कहानियाँ, पृ.–231)

'दुस्साहस' कहानी में घाघ पियक्कड़ मुंशी मैकूलाल सुराजियों के नशा विरोधी आदर्श से भर जाते हैं और अपने अन्त:करण की आवाज पर शराब को निषिद्ध चीज मानकर उससे तौबा कर लेते हैं। 'नमक का दारोगा' कहानी में पंडित अलोपीदीन जैसे परम स्वार्थी का हदय–परिवर्तन होता है। दरअसल अलोपीदीन का हृदय बदले या न बदले वे यहाँ भी रंग बदलते दीखते हैं। वस्तुत: वे सामन्ती और महाजनी व्यवस्था के उन धूर्त व्यक्तियों में एक हैं जो अपने हित के लिए निष्ठावान व्यक्ति के गुणों की खरीद किया करते हैं। मुंशी वंशीधर

चालीस हजार की खुली रिश्वत के जहर से अपने को बचा गये किन्तु ऊँची तनख्वाह, मकान-घोड़ा, नौकर-चाकर आदि के मिठास सिक्त स्वार्थों द्वारा खरीद लिए गए।

इस दौर की कहानियाँ स्वराज्य आंदोलन, संयुक्त परिवार की रक्षा, जमींदारों, महाजनों के हाथों पिसती हुई निरीह जनता, पंडे-पुरोहितों द्वारा लूटे जा रहे भोले-भाले धर्म-परायण लोग, अछूतों की शोचनीय स्थिति, हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिक समस्या आदि विविध समस्याओं में से गुजरती हुई किसी निष्कर्ष पर पहुँचने का प्रयास करती हैं और निष्कर्ष हैं-आदर्शोन्मुख यथार्थवादी। प्रेमचन्द अपने चारों ओर के विशाल समाज की समस्याओं को, उनके कठोर, क्रूर और कुरूपतम यथार्थ में देखते हैं और पूरी ईमानदारी से इन समस्याओं से समाज को छुड़ाकर सुखद धरातल प्रदान करना चाहते हैं। परन्तु यहाँ कथाकार की एक सीमा है कि वह इन समस्याओं की तह में जाकर इनकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और उससे उत्पन्न जटिल चरित्र को सूक्ष्मतया परखे बिना एक बना-बनाया आदर्शवादी निदान प्रस्तुत कर देता है, दरअसल प्रेमचन्द का अपने नैतिक सिद्धान्तों और मान्यताओं के प्रति इतना मोह है कि वह उन्हें हर स्थिति में विजयी दिखाना चाहते हैं। स्थिति के यथार्थ का सामना इसी मोह के कारण कर पाने में वे सफल नहीं हो पाते। सामाजिक और वर्गीय चेतना के स्पष्ट बोध के अभाव में ही प्रेमचन्द समझौते और समन्वय का रास्ता अख्तियार करते हैं-अपने प्रारम्भिक कथा-काल में।

प्रेमचन्द के कथा-सृजन का दूसरा दौर 1920 ई. से 30 ई. के बीच माना जा सकता है जिसके अन्तर्गत 'समर-यात्रा, दुस्साहस, शतरंज के खिलाड़ी, मुक्तिमार्ग, शंखनाद, आत्माराम, सवा सेर गेहूँ, जुलूस, शांति' आदि कहानियाँ बहुचर्चित हैं। इस दौर की अधिकांश कहानियों में स्वाधीनता आंदोलन के विविध पक्षों को चित्रित किया गया है। गाँधी जी की सक्रियता और उनके सिद्धान्तों का प्रभाव इन कहानियों पर विद्यमान है। राष्ट्रीय आंदोलन को सामाजिक स्थितियों और समस्याओं तथा जातीय मनोवृतियों के सन्दर्भ में रखकर देखने की प्रवृत्ति भी इस दशक की कुछ कहानियों में साफ दृष्टिगोचर होती है। इस दौर के प्रेमचन्द अपने भावुक रवैयों को वास्तविक परिस्थितियों के सन्दर्भ में रखकर सन्तुलित करने का प्रयत्न करते हैं। यही कारण है कि मुख्य रूप से स्वतंत्रता आंदोलन का चित्रण करते हुए भी उस आंदोलन के साथ जुड़ी हुई सामाजिक विषमता के विभिन्न पहलुओं की ओर भी कथाकार इंगित करता चलता है। 'जुलूस' कहानी का मैकू कहता है- 'बड़े आदमी क्यों जुलूस में आने लगे? उन्हें इस राज में कौन आराम नहीं! बंगलों और महलों में रहते हैं, मोटरों पर घूमते हैं। साहबों के साथ दावत खाते हैं, कौन तकलीफ है? मर तो हमलोग रहे हैं, जिन्हें रोटियों का ठिकाना नहीं।'

(प्रेमचंद मुंशी, मानसरोवर सात, बड़े घर की बेटी तथा अन्य कहानियाँ, पृ.-42)

शतरंज के खिलाड़ी' कहानी में सीधे-सादे स्वाधीनता और स्वराज्य को सामयिक घटनाओं का संयोजन करके और स्वाधीनता आंदोलन के ब्योरे देकर नहीं उठाया गया है। बल्कि इसमें स्वाधीनता के प्रश्न को पतनशील सामन्तवादी युग के सन्दर्भ को रखकर, संवेदना और विचार के गहरे स्तरों पर उठाया गया है। यह ह्रासशील सामन्तकाल का वह करुण अध्याय है जब व्यक्तिगत वीरता की प्रचुरता के बावजूद राजनीतिक भावों का पूरा पतन हो चुका था। भयंकर राजनीतिक दशा तथा मीर और मिर्जा की लत को आमने-सामने रखकर प्रेमचन्द ने इस अध:पतन को बेनकाब कर दिया है।

अपने इस दूसरे कथा-दौर में प्रेमचन्द अधिक जागरूकता का परिचय देते हैं। यहाँ वे जीवन के यथार्थ का अधिक सघन और मनोवैज्ञानिक चित्रण करते हुए दीखते हैं। इस दौर की उनकी मानसिकता में असहमति, असंतोष और विरोध के भाव तो हैं, पर संघर्ष के नहीं। अपने कथा-विकास के इस बिन्दु पर वे यह लाभकर नहीं समझते हैं कि संघर्ष पर जीवन और समाज की नींव डाली जाय और संघर्ष को ही मूल-तत्त्व समझा जाय। स्पष्ट है कि उनकी इस दृष्टि के निर्माण में गाँधीवाद का बहुत बड़ा हाथ है। 'दुस्साहस' जैसी कई कहानियाँ हैं जिनमें राजनीतिक क्षेत्र में गाँधीजी की कार्यवाहियों की पैरवी करनेवाले ब्योरे भरे पड़े हैं। इन कहानियों में संवेदना की वैसी गहराई नहीं मिलती है। वहीं 'समर-यात्रा' जैसी कहानियों में स्वाधीनता और स्वराज्य की प्राप्ति के लिए सत्याग्रहियों द्वारा लड़े जा रहे अहिंसक आंदोलनों का मार्मिक चित्रण हुआ है। 'समर-यात्रा' का आंदोलनी नायक एक स्थान पर कहता है-'अपना काम करना और अपनी दशा पर संतोष रखना, यह आपका आदर्श है, लेकिन आपका यही देवत्व, आपका यही सीधापन आपके हक में घातक हो रहा है।' **(वही, पृ.-58.)** स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए यह असंतोष और विद्रोह का सुझाव है जो जन-चेतना के व्यापक प्रसार के लिए आवश्यक है। इतना तय है कि इन कहानियों में प्रेमचन्द पाठकीय अभिरुचि और सामाजिक स्थिति को निकटतर लाकर उनमें गहरा तालमेल बिठा रहे थे।

प्रेमचन्द की कथा-यात्रा का तीसरा और आखिरी पड़ाव 1930 से 36 ई. तक है। 'पूस की रात, कफन, अलग्योझा, नशा, मिस पद्मा' आदि कहानियाँ इसी दौर की है। ये कहानियाँ गाँधीवाद से प्रेमचन्द के मोहभंग को सूचित करती हैं तथा उनके बदले हुए रुख का इजहार

करती हैं। प्रेमचन्द का आदर्शोन्मुख यथार्थवाद यहाँ आकर धीरे-धीरे वस्तुपरक यथार्थवाद में परिणत होता प्रतीत होता है। इन कहानियों से गुजरने के बाद स्पष्ट होता जाता है कि कथाकार को सामाजिक विषमता के कारणों की पहचान हो गई है। सामाजिक चेतना को नैतिक ढंग के निष्कर्षों और सुधार प्रवृत्तियों द्वारा अवरुद्ध करने का उपक्रम भी इस अन्तिम दौर की कहानियों में अनुपस्थित है। कथाकार को यह प्रश्न बुरी तरह से कचोटने लगता है कि क्यों एक आदमी जिन्दगी भर मेहनत करके भी भूखों मरता है और दूसरा आदमी हाथ-पाँव न हिलाते हुए भी फूलों की सेज पर सोता है। इस दौर के कथाकार पर निश्चित रूप से बोल्शेविक क्रान्ति का गहरा प्रभाव है। उन्होंने कहा भी है-'मैं गाँधीवादी नहीं हूँ, मैं अब करीब-करीब बोल्शेविक उसूलों का कायल हो चुका हूँ।'

(शर्मा रामविलास, 'प्रेमचंद और उनका युग' पृ.-72.)'

महाजनी सभ्यता' शीर्षक अपने बहुचर्चित लेख में उन्होंने अपना क्रान्तिकारी दृष्टिकोण स्पष्ट किया है-'जहाँ धन की कमीबेशी के आधार पर असमानता है वहाँ ईर्ष्या, द्वेष, जोर-जबरदस्ती, बेईमानी, झूठे-मिथ्याभियोग-आरोप, वेश्यावृत्ति, व्यभिचार और सारी दुनिया की बुराइयाँ अनिवार्य रूप से मौजूद हैं। इस पैसा-पूजा को मिटा दीजिए सारी बुराइयाँ अपने-आप मिट जायेंगी, जड़ न खोदकर केवल फुनगी की पत्तियाँ तोड़ना तो बेकार है।'

(सं वर्मा निर्मल, गोयनका कमल किशोर, 'प्रेमचन्द रचना-संचयन', पृ.-805.)

लगभग 30 वर्षों की लम्बी रचनात्मक लड़ाई के बाद कलम के इस सिपाही को स्वीकारना पड़ता है कि भूखे आदमी का न कोई धर्म होता है न ईमान। 'कफन' के घीसू और माधव अथवा 'पूस की रात' में चुपचाप ठिठुरते हल्कू के समीप आकर प्रेमचन्द का यथार्थवाद अपने प्रकर्ष पर दिखता है और आम आदमी के हक की लड़ाई अत्यधिक वेगवती हो उठती है। 'कफन' और 'पूस की रात' जैसी कहानियों में प्रेमचन्द पहली बार यथार्थ स्थितियों के निर्मम विधान को सर्जित करके आदर्श और नैतिकता के विन्दुओं पर अवरुद्ध हुई अपनी ही पूर्ववर्ती कहानी की रूढ़ि को तोड़ते हैं और यथार्थ निरूपण का एक नया पथ प्राप्त करते हैं। इन दोनों कहानियों में जिस अमानवीकरण का चित्रण हुआ है वह समाज की वर्गीय व्यवस्था की ही देन है। इन कहानियों में समाज अपने भयावह और क्रूर यथार्थ के साथ मौजूद है-अपनी तमाम असंगतियों, विसंगतियों के साथ 'कफन' और 'पूस की रात' किसान के मजदूर बनते जाने की त्रासद स्थिति और परिणति की तल्ख चेतना जगाती है। 'कफन' में यथार्थ की विसंगति को एब्सर्ड ढंग से उभारा गया है तो 'पूस की रात' में मनोवैज्ञानिक तरीके से। 'पूस की रात' की आखिरी पंक्तियाँ किसान से मजदूर बनने की ऐतिहासिक ही नहीं मनोवैज्ञानिक यात्रा को भी उद्घाटित करती हैं। कहानी के अन्त का यह संवाद-अंश द्रष्टव्य है-'मुन्नी ने चिन्तित होकर कहा-अब मजूरी करके मालगुजारी भरनी पड़ेगी। हल्कु ने प्रसन्न-मुख कहा-रात की ठंड में यहाँ सोना तो न पड़ेगा।'

(सं. वर्मा निर्मल, गोयनका कमल किशोर, 'प्रेमचन्द रचना-संचयन', पृ.-805)

'कफन' यथार्थ के अनेक जटिल पहलुओं को उधेड़ती हुई कहानी है जो अनेक रागात्मक, नैतिक, धार्मिक सम्बन्धों और मूल्यों पर प्रश्नचिह्न लगाती चलती है। घीसू और माधव इतने कामचोर, निर्लज्ज, बेईमान और अमानुष क्यों बने? प्रेमचन्द कारण की पड़ताल करते हुए कहते हैं-'जिस समाज में दिन-रात मेहनत करनेवालों की हालत उनकी (घीसू और माधव की) हालत से कुछ अच्छी न थी और किसानों के मुकाबले वे लोग जो किसान की दुर्बलताओं से लाभ उठाना जानते थे, कहीं ज्यादा सम्पन्न थे, वहाँ इसतरह की मनोवृत्ति का पैदा हो जाना कोई अचरज की बात न थी।'

(प्रेमचंद मुंशी, मानसरोवर एक, ईदगाह तथा अन्य कहानियाँ, पृ.103)

प्रेमचन्द की पूर्ववर्ती कहानियों के अनेक पात्र समाज के डर या परलोक के भय से लगातार उत्पीड़न सहते और जीते हैं। वे अनेक बातों का समाधान पूर्व जन्म के कर्मों का कल्पित फल मानकर स्वीकार कर लेते हैं। 'सवा सेर गेहूँ' का गरीब शंकर इन्हीं मिथ्या विश्वासों का फल पीड़ी-दर-पीड़ी भुगतने के लिए बाध्य है। जीवनभर पंडितजी के कोल्हू का बैल बनकर भी वह सवा सेर गेहूँ का ऋण नहीं उतार सका और कर्ज अदायगी के लिए उसने अपने बेटे को पंडित जी की गुलामीमें बहाल कर दिया। शंकर कहता है-'महाराज तुम्हारा जितना होगा यहीं दूँगा, ईश्वर के यहाँ क्यों दूँ। इस जनम में तो ठोकर खा ही रहा हूँ, उस जनम के लिए क्यों काँटे बोऊँ।'

(प्रेमचंद मुंशी, मानसरोवर एक, ईदगाह तथा अन्य कहानियाँ, पृ.103)

ध्यातव्य है कि प्रेमचन्द ने अपने प्रथम और द्वितीय कथा-दौर की अनेक रचनाओं के अन्त में हृदय-परिवर्तन के अलौकिक दृश्य को चित्रित करने वाले सूक्तवाक्य लटकाए हैं, परन्तु 'सवा सेर गेहूँ' का अन्तिम वाक्य उनकी बदली हुई मानसिकता का पता देता है-'पाठक, इस वृत्तान्त को कपोल-कल्पित नहीं समझिए। ऐसे शंकर और ऐसे विप्रों से यह दुनिया खाली नहीं है।'

(प्रेमचंद मुंशी, मानसरोवर चार-दो सखियाँ तथा अन्य कहानियाँ, पृ.124)

'कफन' के घीसू और माधव लोक और परलोक के किसी भी भय

से पूरी तरह मलंग हो गए हैं। ये कदम-कदम पर उन धार्मिक भावों का माखौल उड़ाते हैं जिनके आधार पर वर्ग-विशेष का शोषण टिका हुआ है। धन और अधिकार का नशा व्यक्ति की मानसिकता को किस तरह प्रभावित करता है और उसका सम्पूर्ण चरित्र किस तरह बदलने लगता है, इसकी यथार्थ अभिव्यक्ति 'नशा' कहानी में उपलब्ध है। आर्थिक स्वार्थों की टकराहट में मानवीय सम्बन्ध के आदर्श का चौखटा कितनी शीघ्रता से चरमराने लगता है, इसकी अत्यन्त सटीक अभिव्यकि 'लॉटरी' कहानी में हुई है। ऐसी समाज-व्यवस्था जिसमें धन ही सर्वोपरि हो, वही सबसे बड़ा मूल्य हो, सामाजिक प्रतिष्ठा और सभी प्रकार के सुखों और अधिकारों की गारंटी हो, उसमें मानवीय सम्बन्धों की कथित गरिमा कैसी विद्रूपतापूर्ण और गर्हित स्वरूप ग्रहण करेगी-'लॉटरी' कहानी उसे परत-दर-परत उधेड़कर रख देती है। 'लॉटरी' कहानी में प्रेमचंद लिखते हैं-'लोग नाहक लालसा को बुरा समझते हैं। मैं तो समझता हूँ, हममें जो यह भक्ति, निष्ठा और धर्म-प्रेम है, वह केवल हमारी लालसा, हमारी हवस के कारण। हमारा धर्म हमारे स्वार्थ के बल पर टिका हुआ है।' **(वही, पृ. 126)**

इस अन्तिम दशक की कहानियों के सन्दर्भ में महीप सिंह की यह टिप्पणी यथार्थ है-'प्रेमचन्द की इन कुछ कहानियों में उठाई गई मानवीय समस्याएँ, उनमें सृजित घटनाएँ एवं चरित्र, उनके कहानी जंगल की कुछ ऐसी पगडंडियाँ है जो हमें कृत्रिम समझौतापरस्त और सामयिक एकाकी समाधान की झाड़ियों में नहीं उलझातीं बल्कि मनुष्य की नियति का साक्षात्कार कराती हुई उस गन्तव्य कामार्ग दिखाती हैं जहाँ समस्याओं का निदान ढूँढ़ने में एक व्यक्ति को नहीं, सारी समाज-व्यवस्था, रूढ़ धार्मिक अवैज्ञानिक संस्कारबद्धता को बदलने की जरूरत है।'

प्रेमचन्द की लम्बी कथा-यात्रा के विभिन्न पड़ावों से गुजरते हुए हम पाते हैं कि जितनी तेजी से उनके विचारों में, समस्याओं के प्रस्तुतिकरण और निरूपण में परिवर्तन होता गया है, उतनी तेजी से उनका कथा कहने का ढंग, कथा-संयोजित करने का तरीका और कथा-पद्धतियाँ नहीं बदली हैं। घटना बहुल संरचना, सीधे-सपाट ढंग से कथा कहने का लहजा और वर्णनात्मक शैली-उनकी अन्तिम दौर तक की कहानियों में कमोबेश बनी रही है।

इस तरह हम देखते हैं कि कथा-सम्राट प्रेमचन्द का कहानी-संसार निरंतर विकसित होता हुआ, सृजित होता हुआ संसार है। डॉ. नरेन्द्र मोहन बहुत सही सोचते हैं-'उनकी (प्रेमचंद की) रचनात्मक विकास-यात्रा को देखते हुए कहा जा सकता है कि वह एक पेड़ की तरह है जो बाहर से हवा-पानी लेता हुआ लगातार फलता-फूलता है, लेकिन जिसे केवल टहनियों या फूल-पत्तियों या तने के रूप में अलग-अलग करके नहीं सम्पूर्ण रूप में ही पहचाना जा सकता है।' अपनी महीन बुनावट के कारण प्रेमचंद की कुछ कहानियाँ 'मानवीय त्रासदी' का इतिहास लगती हैं। परन्तु उनमें भारतीय जनजीवन की जागृति और सांस्कृतिक उत्थान के नए अनुभव भी जुड़े हुए हैं, इसलिए उसमें जीवन का एक आशावादी स्वर भी मुखरित होता है। प्रेमचंद की कहानियों की सृजनात्मक रूढ़ि कहानियों के रूप-विधान की है, अनुभवों के स्तर पर वह नए संसार को संवेदित करती है। अपनी परवर्ती कहानियों में अपने उपदेश या उद्देश्य की सिद्धि की जगह व्यापक मानवीय यथार्थ का जो आधार प्रेमचन्द ने दिया है, वह 'रूप-विधान' का अलगाव तो स्पष्ट करता ही है, वह उस अनुभव की असाधारणता को आख्यायित करता है जो सिद्धान्त, आग्रह आदि से परे है। मानवीय अनुभवों की परिवर्तित संवेदना की कहानियाँ प्रेमचन्द की कथा-परम्परा की 'मानक' बन जाती हैं।

सहायक प्राध्यापक
विश्वविद्यालय हिन्दी विभाग
राँची विश्वविद्यालय, राँची
मो.- 9431767451

देवास जिले में मध्य प्रदेश राष्ट्र भाषा प्रचार समिति की इकाई द्वारा प्रतिभा प्रोत्साहन प्रतियोगिता का आयोजन

एक संग्रहालय ऐसा भी

– अखिलेश श्रीवास्तव 'दादूभाई'

जन्म – 4 अगस्त 1972।
शिक्षा – एल. एल. बी।
रचनाएँ – एक साझा संग्रह प्रकाशित।
सम्मान – क्षेत्रीय सम्मान।

वे पत्रकार हैं, साहित्यकार हैं, लोक संस्कृति के प्रेमी हैं। उनके श्वेत केशों के मध्य इक्का-दुक्का या तिक्का-चौक्का केश साक्ष्य हैं कि कभी यह केश-कुंज काले थे; परंतु समय की चाल और कर्म की निरंतरता ने उन्हें भीष्म रूप दे दिया।

उनकी पनहियाँ दिन, दुपहरी, तिपहरी दौड़ती रहीं, भागती रहीं, चलती रहीं, कितनी सीढ़ियाँ चढ़ीं, कितने बरामदे पार किए और कितने कार्यालयों के चक्कर काटे कि बन सके एक ऐसी छत, जिसके नीचे उखड़ती साँसों के पुराने समाचार पत्रों, पत्रिकाओं और पुस्तकों को बचाया जा सके और जी उठें बौद्धिक साक्ष्य जो स्वतंत्रता-संघर्ष के साक्षी हैं। जिन्होंने साहित्य को नई दिशा दी और जो समय की यात्रा करते-करते इतने क्षीण हो चुके हैं कि उन्हें पकड़ते ही पृष्ठ टूटने लगते हैं।

इन खंड-खंड होते पन्नों की करुण, मौन पुकार किसी ने न सुनी। सुनी तो लेखनी के एक योद्धा ने जो उस समय हिंदी ग्रंथ अकादमी के कहने पर मध्यप्रदेश की पत्रकारिता के ऐतिहासिक क्षणों को ग्रंथों-ग्रंथालयों से खोज-खोजकर पुस्तक रूप देने में व्यस्त था। पत्रों को आकार देने वाला क़लम का सैनिक दृढ़ संकल्पित हो गया, इन सूखते पत्तों को अमर बेल बनाने के लिए मानो भागीरथी ने पुनः प्रण किया हो गंगा प्रवाह को दिशा देने का। वह चला, रुका, गिरा, उठा, सँभला, फिर चला और खड़ा हो गया। इसी काल में उसे कुछ समभाव साथी मिले जो दौड़ पड़े उसके साथ बचाने, सालों पुराने, धुँधले अक्षरों को जो वर्तमान में आइना हैं इतिहास का। ऐसा अनोखा संघर्ष जिसकी क्रोड़ में जीवित हो उठा भारत का स्वर्णिम इतिहास।

बौद्धिकता के समक्ष प्रणीपात कितने ही लोग खड़े हैं। वे आश्चर्य और प्रशंसा के मिश्रित भावों से आपस में फुसफुसा रहे हैं। इस फुसफुसाहट का अल्प स्वर धीरे-धीरे चर्चा में परिवर्तित हुआ पश्चात् सामूहिक वार्ता बना और लो देखते ही देखते इस लोकवाणी से हर्ष ध्वनि गूँज उठी। इसे विजयदत्त श्रीधर ने सुना और सुना उनके कंधे से कंधा मिलाकर चलने वाले साथियों ने, पर इन इतिहास शिल्पियों की दृष्टि स्थिर है प्रवेश द्वार पर। कौन आ रहा है? यह, वह प्रश्न है जिसका उत्तर सभी के पास है फिर भी सभी प्रतीक्षारत हैं। लीजिए, प्रतीक्षा की घड़ी समाप्त हुई। कोई आ रहा है। उसके आने के भान से ही लोगों में चेतना जाग गई। जो लोग अपने-अपने स्थान पर झुकी कमर से बैठे थे सीधे तनकर बैठ गए; सभी फौजियों-से चौकन्ने दिख रहे हैं।

देखो-देखो! वायु-वार्ता करते आए वाहन से श्वेत वस्त्र धारण किए सर्वाधिक लोकप्रिय जन नायक अर्जुन सिंह उतरे हैं। सधे कदमों और स्नेहिल मुस्कान के साथ वे उद्घाटन के लाल फ़ीते के समीप आ पहुँचे। यह औपचारिक उद्घाटन नहीं है। इस ज्ञान-यज्ञ में रिबन काटने के साथ-साथ इस लोक नायक ने अपना प्रिय निजि पुस्तकालय इस संग्रहालय को अर्पित कर दिया। कालांतर में कई साहित्यकारों के परिजनों ने इसका अनुसरण किया; जैसे-दुष्यंत कुमार, धर्मवीर भारती, अमृतलाल वेगड़, कामता प्रसाद गुरु, माखनलाल चतुर्वेदी, ब्यौहार राजेंद्र सिंह, रायबहादुर हीरालाल एवं ऐसे अनेक लोगों के परिवार वालों ने बड़े विश्वास से अपनी अक्षर संपदा इस संग्रहालय को भेंट की।

इसी शुभ क्षण के साथ अक्षरों से निर्मित बौद्धिक धरोहरों के संरक्षण के लिए, शोधकर्ताओं एवं बौद्धिक योद्धाओं की रचनाधर्मिता को नए दृष्टिकोण देने के लिए, संदर्भ अध्ययन के साथ शिक्षण-प्रशिक्षण उपलब्ध कराने के लिए, पत्रकारिता उन्नयन तथा समाज में विज्ञान, प्रौद्योगिकी और पर्यावरण चेतना के विकास के लिए, स्मृति रक्षण के नैतिक दायित्वों की पूर्ति के लिए, मीडिया में विज्ञान विषयों पर लोकप्रिय लेखन को बढ़ावा देने के लिए आंचलिक पत्रकार संघ के कर्ता-धर्ता विजयदत्त श्रीधर के मन मस्तिष्क में उपजी वैचारिक कोपलों ने उनके श्रमसीकरों से सिंचित हो, भारत की हृदयस्थली, मध्यप्रदेश की राजधानी, भोपाल में रानी कमलापति महल में उन्नीस

सौ चौरासी के जून माह की उन्नीस तारीख़ को 'माधवराव सप्रे स्मृति समाचार पत्र संग्रहालय एवं शोध संस्थान' नाम से प्रथम सृष्टि दर्शन किया। यह संग्रहालय हिंदी के पुरोधा माधवराव सप्रे (जिनकी लिखी कहानी 'एक टोकरी भर मिट्टी' को पहली कहानी के रूप में स्वीकार किया गया है) को समर्पित है।

इसका आदर्श वाक्य है-'सा विद्या या विमुक्तये' जो विष्णु पुराण के अध्याय 1.19.41 से लिया गया है। अर्थात्, जो मुक्ति देता है वही ज्ञान है। मुझे अन्य पंक्तियाँ भी स्मरण आ गईं। यथा-'तत्कर्म यन्न बंधाय सा विद्या या विमुक्तये।' कर्म वही है जो बंधन से मुक्त करे।

इस विपुल संग्रह में राष्ट्रीय पुस्तकालय कोलकाता, बंगिया साहित्य परिषद कोलकाता, राष्ट्रीय अभिलेखागार नई दिल्ली इत्यादि से सामग्री जुटाई गई। मूलत: यह सामग्री प्राथमिक स्रोतों पर आधारित है। प्रयत्नों से बनी क्यारी में फूल खिल उठे। दूर-सुदूर न जाने किन-किन अलमारियों में सीड़न और दीमक से लड़ते, समय के दस्तावेज क्लीनिकल उपचार के साथ सुरक्षित जिल्द का रूप लेने लगे। बसने लगी कागजों की एक अलग दुनिया। सहस्त्रों वर्ष पूर्व भी एक महर्षी ने अलग दुनिया बसाने का प्रयास किया था, पर लोकहित से विरात होने के कारण उसे ईश-कृपा नहीं मिली। इसके विपरीत यहाँ इस नवदुनिया में लोक हित प्रथम होने के कारण ईश का अभयहस्त साथ है; मूलत: यह अंतरनिहित भावों का है।

यह भविष्य में इतिहास को देखने का अद्भुत गवाक्ष सिद्ध होने वाला था। अट्ठाइस नवंबर उन्नीस सौ सत्यासी को यह संग्रहालय रानी कमलापति के महल से आचार्य नरेंद्रदेव पुस्तकालय के द्वितीय तल में स्थानांतरित हुआ, पश्चात् उन्नीस जून दो हज़ार दस में पत्रकार कालोनी में निर्मित स्वयं के भवन में आ बसा।

दृश्य परिवर्तन! दो हजार चौबीस, अगस्त माह, प्रथम दिवस। भरी बारिश में छाता लिए, आसमानी-से रंग की सफ़ारी पहने जिसके बाँए हाथ के ऊपर वाली जेब में एक कलम खुसी है। आँखों पर काली डंडी का लाइट गोल्डन फ्रेम चश्मा पहने एक सज्जन अपने कार्यालय के बाहर खड़े हैं। कारण, मैंने फोन पर कहा था कि आपसे भेंट करना है, पर आपका कार्यालय मिल नहीं रहा है। मैं एक सामान्य व्यक्ति और मेरी बात का इतना महत्व, है न आश्चर्य! टैक्सी वाला बोला-'अरे! इनकी फ़ोटो तो कई बार समाचार पत्रों में देखी है।' उत्तर दिया मैंने-'इन्हीं के कारण समाचार पत्र वर्षों-वर्षों तक सुरक्षित रहेंगे।' मेरी बातों का अर्थ टैक्सी वाला कितना समझा यह तो नहीं जानता, पर वह देर तक उन्हें देखता रहा।

कौन हैं ये सज्जन! आपकी जिज्ञासा मैं समझ रहा हूँ। धैर्य रखिए बताता-बताता हूँ। यही हैं, समाचार पत्रों-पत्रिकाओं और पुस्तकों को संजीवनी बूटी प्रदान करने वाले। सप्रे संग्रहालय (लोगों द्वारा बोला जाने वाला संक्षिप्त नाम) के नींव निर्माता-'पद्मश्री विजयदत्त श्रीधर।' बाईस मार्च दो हज़ार बारह को माननीय राष्ट्रपति, प्रतिभा देवीसिंह पाटिल जी द्वारा व्यक्तिगत गुणों के लिए आपको पद्मश्री से विभूषित किया गया।

इन वृद्ध; परंतु आत्मविश्वास से सधे कदमों का अनुसरण करते मैं इस संग्रहालय के प्रवेश द्वारा पर आ पहुँचा। सामने एक ओर जहाँ माधवराव सप्रे का स्मृति पटल सुशोभित है तो दूसरी ओर उन्नीस जून उन्नीस सौ निन्यानवे के दिन प्रतीक स्वरूप 2.70 मीटर और 4.4 सेंटीमीटर व्यास वाली सोलहवीं-से-सत्रहवीं सदी की विदिशा से प्राप्त भेलसा की तोप, पुरातत्व संग्रहालय की अमानत स्वरूप स्थापित हुई है। कितना सुसंगत है न देश की धरोहर, देश के चतुर्थ स्तंभ के धरोहरधरणी हस्त में सुरक्षित है।

इस तोप के चबूतरे पर अकबर इलाहाबादी का एक शेर लिखा है जो इस संग्रहालय और समाचार पत्रों की शक्ति का सटीक शब्दचित्र है। तोपें गरज कर शांत हो जातीं हैं, खिंचीं कमानें भी लक्ष्य संधान के साथ संज्ञा शून्य हो जातीं है; परंतु अख़बारों में छपे एक-एक शब्द के तीखे प्रहार कभी शिथिल नहीं होते। वे समय की यात्रा करते सदा सजीव रहते हैं। तो आइए पढ़ें सजीव भाव का वह शेर-

'खेंचो न कमानों को न तलवार निकालो,
जब तोप मुकाबिल हो तो अख़बार निकालो।'

सत्य ही लिखा है, श्वेत सत्ता के काले उद्देश्यों को अखबार की ताकत ने ध्वस्त किया था। लोक जागरण की ऐसी आँधी उठी कि आक्रांता परचम ध्वस्त हो गया और तिरंगे ने स्वाभिमान का पाञ्चजन्य फूँका। ओह! चलिए छोड़ें इस बात को कभी और चर्चा करेंगे इस विषय पर क्योंकि हम भारतीयों के मन में बीते समय की यह पीड़ा कभी समाप्त नहीं हो सकती। अभी वापस चलते हैं सप्रे संग्रहालय के स्वर्णिम संसार में।

प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ ऐसे क्रमश: नवम सोपानम् चढ़ने के साथ एक बरामदे में पहुँचते हैं। इसके एक ओर ऑडियो-वीडियो के सालों पुराने उपकरण; जैसे- कैमरे, रिकॉर्ड प्लेयर, टेप रिकॉर्डर, डैक, कैमरा-फ्लैशगन, आदि रखे हैं। ये कभी दैनंदिन जीवन में उपयोग होते थे आज गुज़रे ज़माने की याद दिला रहे हैं। बरामदे के दूसरी ओर स्टाफ रूम है। जहाँ सभी भोजन करते हैं। लगता है किसी घर में प्रवेश किया हो।

प्रमुख प्रवेश द्वार के दोनों ओर काष्ठ निर्मित विशाल बंदूक और लेखनी लटकी हैं जो प्रतीक हैं पत्रकारिता की शक्ति का। एक पत्रकार या लेखक की लेखनी की मार सैनिक की गोली के बराबर होती है। सत्य ही तो है, यदि लेखनी के योद्धा चुप हो जाएँ तो देशद्रोही देश बेच देंगे। पत्रकारिता की इसी गर्जना को गणेश शंकर विद्यार्थी ने अपने अख़बार 'दैनिक प्रताप' के लोगो में दो सिंहों के मध्य भारत माता बना कर व्यक्त की थी। जिसके सम्मान में दैनिक भास्कर ने अठहत्तरवें स्वतंत्रता दिवस पर अपना मास्टहैड प्रताप जैसा ही बनाया।

संग्रहालय के मुख्य हॉल में प्रवेश पूर्व प्रथम कक्ष विज्ञान प्रयोगशाला-सा लगाता। एक बड़ी टेबिल पर चार बड़े-बड़े स्कैनर यों लग रहे हैं मानो मशीनी मानव हों। उनके नीचे स्कैनिंग ट्रे रखी है जिस पर ऑपरेटर पुराने समाचार पत्रों अथवा पुरानी किताबों के पृष्ठ खोल कर रख रहे हैं और एक क्लिक के साथ स्कैनर का हैड सूँ-सूँ का हल्का स्वर करता ऊपर से नीचे देखता है। इसी के साथ वह पृष्ठ संलग्न लैपटॉप पर सुरक्षित हो जाता है। सहसा मुझे याद आया बाल्यकाल में सुनी कहानियों के अनुसार ऐसा सामर्थ्य तो हमारे ऋषि-मुनियों के पास भी था। वे किसी भी व्यक्ति पर अपनी दिव्य दृष्टि डाल के उसके विषय में जानकारी प्राप्त कर लेते थे या संभवत: मन पढ़ लेते थे। क्या आश्चर्य की उसी विद्या का परिवर्ती रूप हो।

इस कक्ष की प्रमुख दीवार में आधे से अधिक में काँच लगा है जिससे सामने हॉल में संचालित गतिविधियों को सहजता से देखा जा सकता है। कार्य में पारदर्शिता और पारदर्शी कार्य के लिए यह वास्तुविद निर्णय अनुकरणीय है। यहीं कंप्यूटर रखे हैं जो सभी ऑनलाइन कार्यों को दिशा देते हैं। संग्रहालय के प्रत्येक कक्ष में साहित्यकारों की फ़ोटो बड़े सम्मान से लगीं हैं। इस तकनीकी कक्ष से लगा एक और सह तकनीकी कक्ष है, जहाँ एक टीम सतत् प्रयास कर रही है कि इस संग्रहालय के एक-एक पृष्ठ डिजिटल रूप लेकर ऑनलाइन एक क्लिक में लाखों-करोड़ों लोगों की जिज्ञासा का शमन करें। हमारी भारतीय ज्ञान परंपरा का मूल ही जिज्ञासा है। बादरायण के ब्रह्म सूत्र में उल्लेखित है, 'अथातो ब्रह्म जिज्ञासा।' इसी प्रकार 'बुद्धेम शरद: शतम्, ज्ञानेम शरद: शतम्' जैसी अवधारणा का सूत्रपात भी वेदों से हुआ है।

विश्वास की डोर को सर्वाधिक महत्व देने वाले विजयदत्त श्रीधर अर्थात् दादा (लोगों द्वारा प्रेमवश दिया संबोधन) स्वयं किनारे एक कक्ष में बैठते हैं। उनका विश्वास है, आवश्यकता से अधिक नियंत्रणात्मक दृष्टि कार्यक्षमता को घटाती है। संभवत: इसीलिए यहाँ का प्रत्येक कार्यसेवी अपने कार्य में ऐसा तल्लीन दिखा जैसे यह उसका अपना संग्रहालय है। वाह! आत्मार्पित दायित्वों का सामूहिक प्रयास। दादा अपने कक्ष में आगामी आयोजन में सम्मिलित होने वाले आगंतुकों के शेड्यूल पर विचार मग्न हैं। फ़ाइलों और कागज़ों के ढेर टेबिल पर एकक्षत्र सत्ता जमाए हैं। पंखे की हवा इन्हें फड़फड़ाकर अलग करना चाह रही है; परंतु इन पन्नों की एकता देखिए कैसे एक-दूसरे के साथ जुड़ कर हवा के असर को बेअसर कर रहे हैं। इधर हम इंसान हैं जो एकता की शक्ति को समझ ही नहीं रहे हैं और बँटे हैं किन-किन बातों में।

मैं उनके आस-पास फैले खज़ाने को देख रहा हूँ और सोच रहा हूँ कि यदि पवित्र संकल्प हो तो असाध्य कार्य भी साध्य हो जाते हैं। मेरी जिज्ञासा विभिन्न प्रश्नों का रूप धर बार-बार उनकी व्यस्तता को भेद रही है, पर वे हैं कि बिना परेशान हुए ऐसे उत्तर दे रहे हैं जैसे मैं अपॉइंटमेंट लेकर उनके पास वार्ता हेतु आया हूँ। चुपके से आपको एक बात बताऊँ, मैं बिन बुलाया मेहमान हूँ। जबरदस्ती आ धमका अतिथि। इसके विपरीत दादा की सहजता ऐसी कि उनके व्यक्तित्व को अनुकरणीय बनाती है।

उन्होंने बताया, 'यह एक ऐसा प्रयास है जो मेरे बाद भी यों ही चलता रहेगा। देश के प्रारंभिक काल के अखबारों के साथ प्राचीन काल की हस्तलिपियों को यहाँ सहेज कर रखा गया है।' याचित प्रश्नों का अल्पक्षरा उत्तर। मैं अपनी नासमझी पर हँस पड़ा। इतना भी न समझ पाया कि नींव-निर्माता स्व पर चर्चा नहीं करते; परंतु मेरी विवशता कि उत्तरपूर्ती के लिए भाँति-भाँति से प्रश्न पूछता हूँ। अबकी बार दादा ने चश्मा उतार कर सामने मेज पर रख दिया और कहा-'भैया देखो, मैं कुछ नहीं यदि नींव के पत्थर, मेरे उन अति प्रिय साथियों के मनसा-वाचा-कर्मणा प्रयासों का स्मरण न किया गया तो अजीब चमक उनकी आँखों में दिखी। समय के संकट संकुल मार्ग में चलने वाले कैसे लोग थे जिन्होंने अपना ईमानदार प्रयास इस संग्रहालय निर्माण को दिया। कितने फौलादी हौसले थे उनके जिनकी फलश्रुति युगों तक लोगों का मार्ग प्रशस्त करेगी।

सप्रे संग्रहालय के संस्थापक विजयदत्त श्रीधर के हृदय में बसे अपने साथियों की स्मरण-सरिता यों निकल पड़ी जैसे दरिया का छलछलाता पानी बाहर बह जाता है। उन्होंने कहा, 'इस ज्ञानतीर्थ की जब-जब चर्चा होगी, सैकड़ों सहयोगियों के बीच उन कुछ साथियों का विशेष रूप से उल्लेख किया जाएगा जो नींव के पत्थर सदृश महत्त्वपूर्ण हैं। इनमें पहला नाम है श्री संतोष कुमार शुक्ल का जिन्होंने न केवल कृति-व्रती माधवराव सप्रे के नाम पर संग्रहालय के नामकरण का प्रस्ताव रखा साथ ही संग्रहालय के कार्यकर्ताओं को व्यवस्थित ढंग से काम करने की सीख-सिखावन दी। दूसरा नाम है सबसे पहले जुड़ने

वाले श्री सुरेश शर्मा का जिन्होंने भोपाल के उस हर घर को छान मारा जहाँ कुछ-न-कुछ पुराना संदर्भ मिल सकता था। तीसरा नाम है श्री शौकत रमूजी का जिन्होंने उर्दू पत्रकारों और साहित्यकारों को सप्रे संग्रहालय से जोड़ा। चौथा नाम है श्री रामचन्द्र विनायक हार्डीकर का जिन्होंने अच्छे पुस्तकालय के समान संदर्भ सामग्री को सँजोना सिखाया। पाँचवें स्तंभ हैं श्री शंकरभाई ठक्कर जिन्होंने संस्कारधानी जबलपुर के साहित्यकारों की धरोहर सप्रे संग्रहालय को भेंट करवाने में उल्लेखनीय भूमिका निभाई। श्री एहसान उलहड़ सीहोर, श्री नजमुद्दीन हकीमुद्दीन धार, श्री गंगाप्रसाद ठाकुर बिलासपुर, श्री रवीन्द्र शाह, इंदौर ने सामग्री संकलन में सक्रिय सहयोग किया। श्री बृजभूषण चतुर्वेदी खंडवा, श्री जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी, नईदिल्ली, डॉ. जगदीश प्रसाद व्यास, श्रीमती साधना उपाध्याय, डॉ. छाया राय, श्री देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त', बाबू चन्द्रमोहन दास, श्री अमृतलाल बेगड, जबलपुर, डॉ. कृष्ण बिहारी मिश्र, कोलकाता, श्री नारायण दत्त बंगलुरु, आचार्य श्रीरंजन सूरिदेव पटना, श्री वीरेन्द्र मिश्र नईदिल्ली, श्रीमती पुष्पा भारती मुंबई, श्रीमती चित्रा मुद्गल नईदिल्ली, श्री निरंजन महावर रायपुर जैसे प्रभृति विद्वानों की धरोहर से समृद्ध सप्रे संग्रहालय को ज्ञानतीर्थ की संज्ञा मिली है।

राजधानी के समाचार भी गवाही दे रहे हैं कि भगवत गीता की अति प्राचीन प्रति से लेकर हस्तलिखित रामचरित मानस, गोस्वामी तुलसीदास रचित श्रीराम गीतावली, धर्मप्रवृत्त, वाल्मीकि रामायण से संबंधित अद्भुत कांड, पांडव गीता, साथ ही आधुनिक काल के महान साहित्यकारों की मूल कृतियाँ इस संग्रहालय का मानवर्धन कर रहीं हैं। साहित्य मणियों के पत्र इस संग्रहालय की पूँजी हैं।

अखिल भारतीय स्तर पर कागज़ों के मसीहा इस संग्रहालय में अक्षर-अक्षर, शब्द-शब्द, पेज-पेज सुरक्षित हैं, संरक्षित हैं। यहाँ इतिहास की परत दर परत सुव्यवस्थित हैं। पुराने ग्रंथों से लेकर आधुनिक किताबें सभी इस संग्रहालय का हिस्सा हैं। मेरा सौभाग्य कि मेरी सद्य प्रकाशित पुस्तक 'विस्मृत क्रांतिकारी' भी इस ज्ञानमंथन केंद्र का अंश बन गई। ऐसा कहें तो अतिशयोक्ति न होगी कि यह संग्रहालय समाचारपत्र, पत्रिकाओं, पत्रों और पुस्तकों का नालंदा है।

दादा के साथ बात करते-करते जैसे ही मैं मुख्य हॉल में आया तो अवाक रह गया, रोमांच से भर गया। मेरे मन में पुलक वर्षा हो रही है और बाहर आकाश से घनीभूत जलबिंदु धरती पर करवटें बदल रही है। यह मेरे जीवन की बड़ी सार्थक बरसात है। प्रवेश में ही एक बड़ी काँच के ढक्कन वाली टेबिल रखी है। टेबिल क्या इसे बिग साइज़ कवर्ड न्यूजपेपर स्टेंड बोलना उचित होगा। यह प्राचीन, पांडुलिपियों, ग्रंथों, पत्र-पत्रिकाओं की वैभव और वैविध्य भरी प्रदर्शनी है। इस स्टेंड में भारतीय समाचार जगत के अनमोल दीपक रखे हैं। दीपक इसलिए कहा क्योंकि इन पत्रिकाओं और अखबारों ने लोकचिंतन को राष्ट्रीय भावना का मार्ग दिखाया। सदी आरंभ से लेकर स्वतंत्रता तक और उसके बाद के प्रगतिशील अंक यहाँ सुरक्षित हैं।

अनुभवी दृष्टि ने मेरे मुख-भाव देख, मनोदशा का आकलन किया और अपने एक कार्यालय सहायक रवि को कहा कि वे मुझे संग्रहालय भ्रमण कराएँ। मैं प्रसन्न! मानवीय प्रवृत्तियों और उसकी संवेदना को प्रगट करने वाली पत्रकारिता के भव्यालोक में मेरा विचरण आधिकारिक रूप से सुनिश्चित हो गया; अब अगले कुछ घंटे मेरे लिए अनमोल हैं। संग्रहालय भ्रमण मैंने समाचार पत्र स्टैंड से आरंभ किया। एक-एक समाचार के पीछे न जाने कितनी कहानियाँ छिपी हैं जो आज हमें नहीं मालूम; परंतु कल वे महत्त्वपूर्ण थीं। मित्रो! आज के यह छिन्न पृष्ठ बीते समय के सजीव साक्ष्य हैं। इन्हें देख नत हो गया व्यतीत के समक्ष। मेरी दृष्टि बोर्ड पर है और मन दौड़ गया उस काल में। वह रखा है प्रताप, वो वहाँ बंगदर्शन और वह देखो हिंदी प्रदीप के बाजू में केसरी, भारत माता, मालवा अख़बार की प्रतियाँ भी हैं। अरे! औहरीचंद्रिका आर्यावर्त, वीर अर्जुन, नवशक्ति, नवभारत, सत्य, वेंकटेश्वर समाचार और जयहिंद भी तत्कालीन हिंद-कथा को बयाँ कर रहे हैं। इस स्टेंड के पीछे दीवार में काँच के सफ़ेद शोकेस में और कई अनमोल पृष्ठ सुरक्षित हैं; जैसे-उचितवक्ता, हिंदोस्थान, प्रभात, सरस्वती, ब्राह्मण मासिक पत्र, आनंदकादंबनी मासिक पत्रिका, छत्तीसगढ़ मित्र, राजस्थान समाचार, सर्वहित, हिंदी प्रदीप, आर्यमित्र, नईदुनिया, विज्ञान, हिंदी नवजीवन इत्यादि।

घूमते हुए सहसा मेरी दृष्टि एक स्थान पर ठहर गई। यहाँ पत्रों का संसार बसा है। पत्र जो इतिहास का दर्पण हैं, पत्र जो संस्कृति का प्रतिबिंब हैं, पत्र जो भावनाओं की स्वर्ण रेखा हैं। पत्र हमें उस समय का भान करते हैं जब उन्हें लिखा गया था। ऐसे कितने ही पत्र राहुल सांकृत्यायन के यहाँ सुरक्षित हैं जो कभी निराला को तो कभी हजारी प्रसाद द्विवेदी को, कभी महादेवी वर्मा को तो कभी नंददुलारे बाजपाई को लिखे गए थे। वह वहाँ क्या है? अरे वाह, पत्र-सखा! क्या बात है! कोई भी पत्र लेखनी के बिना अपूर्ण हैं तो देखिए, इस खंड में कितनी पुरानी-पुरानी लेखनियाँ सुरक्षित हैं। कितना पुराना समय देखा है इन अक्षर निर्माताओं ने। ये कलम ही तो है जिसके साथ स्याही की जुगलबंदी ने मानवीय ज्ञान को, उसके भावों को लिपिबद्ध किया। कल से आज तक यह लेखनी ही तो है जो रच रही है इतिहास और रचती रहेगी जब तक जगत है।

इस खंड के ठीक सामने यू आकार में पढ़ाई-लिखाई के लिए टेबिल-

कुर्सियाँ लगीं हैं। इनके बीच में एक ऑफिस टेबल रखी है जहाँ संग्रहालय के अधिकारी बैठते हैं। इस व्यवस्था के ठीक पीछे एक मंच है जहाँ सप्रे जी और माँ वीणापाणी की सुंदर प्रतिमा विराजीं हैं। यह मंच अधिकतर सुव्यवस्थित एवं सँवरा रहता है क्योंकि ज्ञान के इस तीर्थ में विद्वानों की सभा आए दिन होती है; जिसका मूल है सृजन संवाद। यह हॉल चारों ओर से किताबों की अलमारियों और रैकों से भरा है। हस्तलिखित पृष्ठों से लेकर वर्तमान के प्रिंट यहाँ करीने से जमे हैं, जिनमें उनके नाम के साथ प्रकाशन वर्ष की स्लिप लगी है। कगज़ का एक-एक टुकड़ा यहाँ अमूल्य धरोहर-सा सुरक्षित है।

संग्रहालय की तृणमूल कार्यकरता डॉ. मंगला अनुजा जी यों तो इस ज्ञान-केंद्र की आधारशिला हैं, यहाँ की निदेशक हैं; परंतु वे स्वयं को एक साधारण कार्यकरता मानती हैं। सहज अंदाज़ और प्रभुत्व संपन्न सादगी के साथ कागज़ों में उलझीं डॉक्टर साहिबा पत्रकारिता में स्त्री प्रभुत्व की मिसाल हैं। उनके साथ वार्ता से जो सर्वाधिक सुंदर बात सामने आई वह साझा करता हूँ। उनका कहना है कि 'पुस्तकों, पत्रों का ध्यान संतान तुल्य रखना चाहिए। जिस प्रकार रोटी और पान को समय-समय पर पलटते रहना चाहिए अन्यथा वे ख़राब हो जाते हैं; उसी प्रकार किताबों को भी समय-समय पर पलटते रहना चाहिए।' मैं देख रहा हूँ अनुजा जी अपने सूत्रों के शब्द-शब्द का अक्षर-अक्षर पालन कर रहीं हैं।

इनकी टेबल के सामने एक शोध छात्रा पुरानी किताबों के पन्नों से अपने शोध के नवीन पृष्ठ तैयार कर रही है। वह डूबी है धरोहरों की गहराई में उतरकर इतिहास को वर्तमान में उतारने के लिए। सहसा मेरा मन विचार सागर में समा गया। जीवन भी तो ऐसा ही है। अतीत के गर्भ से वर्तमान का उदय होता है जो भविष्य की पीठिका बनता है। मैंने उस छात्रा का नाम नहीं पूछा; पूछना था। यह मेरी भूल है, पर यह भी तो सही है कि नाम में क्या रखा है? नाम की महिमा तो काम से तय होती है। सच ही तो है, इस बच्ची की लगन इस संग्रहालय की सार्थकता है। ऐसी ही लगन को जन्म देने के लिए श्रीधर जी और उनके साथियों ने अपने जीवन का विशेष समय इस संग्रहालय को दिया जो भविष्य में न जाने कितने शोधों का केंद्र बनेगा।

एक बात बहुत अच्छी है कि भारतीय इतिहास की स्वर्णिम तिथियों को यहाँ बड़े पोस्टरों में फ़ोटो के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। इससे संग्रहालय भ्रमण करने वाले लोगों को तत्कालीन समय का वास्तविक भान होता है। संग्रहालय में मेरा भ्रमण मुझे आनंद-सागर में डुबो रहा है। अहा! विशाल भारत के उन्नीस सौ उन्नतीस से आगे तक के अंक यहाँ सुरक्षित हैं। इसी से लगी सरस्वती की जिल्दें हैं जो उन्नी सौ सत्रह से कालांतर तक की हैं। नीचे खंड में हिंदु पंच की उन्नीस सौ अट्ठाईस से प्रतियाँ रखीं हैं। महारथी, वीणा, माधुरी, माया, श्रीशारदा, सुधा, चाँद की वो जिल्द हमारे समक्ष हैं जो हम भूल चुके हैं या जिनकी चर्चा उदाहरण स्वरूप साहित्यकार करते हैं।

मध्य प्रदेश के ज़मींदार जैसी अमूल्य कृति भी इस संग्रहालय को समृद्ध कर रही है। मेरा मन इस कृति के पृष्ठों को पलटने के लिए मचल उठा कि हो न हो मेरे घराने की चर्चा भी इस कृति में होगी क्योंकि शाहिफ़े ज़रीन, मर्चेंट्स ऑफ़ इण्डिया, मध्य प्रांत मरीचिका, नागवंश जैसी कृतियों में सिवनी के ज़मींदार दादू साहब का उल्लेख है।

सप्रे संग्रहालय की अल्मारियाँ भारतीय स्वतंत्रता संग्राम, क्रांतिकारी पत्रकारिता और सार्थक साहित्य संरक्षण का कुबेर-गृह है। जीवंत हो उठा है यहाँ बीता समय। वक्त की दरार से झाँकता मौन इतिहास चीख़-चीख़कर कह रहा है, लोगों तुमने हमें भुला दिया। अब, जब किसी ने हमें याद किया है, सँजोया है, सुरक्षित किया है तो कम-से-कम उसका साथ दो, उसको सहयोग दो, उसके इस सुकृत्य को सराहो, स्वीकारो और बिताओ कुछ समय इन अक्षर संपदा के बीच में।

मैं रिपोर्ताज के लिए बाहर बरामदे में बैठा बिंदु लेखन कर रहा हूँ। थकान अपना असर दिखा रही है। तभी गर्मागर्म चाय मेरे सामने रखी गई। असमय इस चैतन्य पेय को देख मैं चाय प्रेमी सआश्चर्य चहक उठा। तभी अनुजा जी का स्नेहिल मुख मुझे दिखा। एक साहित्यकार ने दूसरे साहित्यकार की चाय की चाह को समझ लिया।

इस चाय से स्फूर्ति प्राप्त कर मैं संग्रहालय से बाहर आ गया और पलट कर देखा इस श्वेत भवन को जिसकी छत के नीचे सात्विक भावनाएँ, निष्काम कर्म और सुदृढ़ विश्वास के साथ ऊर्जावान भारत निर्माण के प्रति संकल्पित हैं। मैंने आज एक अनोखी दुनिया में विचरण किया है जहाँ साक्षात् हुआ एक संग्रहालय, जिसे देख मन कह उठा-वाह-वाह, ऐसा भी संग्रहालय होता है! सच! ऐसा भी होता है!

गृह-साहित्यम् एन-21,
शिव मंदिर, कचनार क्लब के समीप,
विजय नगर, कचनार सिटी,
जबलपुर-482002 (म.प्र.)
मो. 9425175861

योग, संयोग और दुर्योग

- प्रियदर्शी खैरा

जन्म - 16 जनवरी 1958।
जन्म स्थान - हरपालपुर, छतरपुर (म.प्र.)।
शिक्षा - बी.ई.।
रचनाएँ - व्यंग्य की चार पुस्तकें प्रकाशित।

आजकल योग काफी लोकप्रिय हो रहा है। योग के लाभों को झुठलाया नहीं जा सकता। यह व्यक्तिगत लाभ के लिए होता है, पर अब प्रदर्शन की वस्तु बन गया है। अब तो बाजार की भी इस पर नजर पड़ गई है। कोई टीवी पर बाबा जी से योग सीख रहा है, तो कोई ऑनलाइन कर रहा है, कोई पार्क में सामूहिक योग में व्यस्त है, तो कोई वातानुकूलित योग कक्षा में योग गुरु के साथ, कोई अपने ही घर में दरी बिछा कर फूँ-फाँ कर रहा है, सब अपनी-अपनी हैसियत और सुविधानुसार लगे हैं। कोई शलभ (पतंगा) बनना सीख रहा है, तो कोई मंडूक (मेंढक) जैसी आकृति बना रहा है, कोई शेर सा दहाड़ रहा है, तो कोई शशक (खरगोश) सा सिमट रहा है, कोई मर्कट (बंदर) की नकल कर रहा है, तो कोई भुजंग (साँप)की कलाएँ सीख रहा है, कोई वृश्चिकदंड पेल रहा है तो कोई शेर दंड लगा रहा है। कोई श्वास खींच रहा है, कोई रोक रहा है, कोई फेंक रहा है। कोई भ्रमर(भौंरा) सा गुनगुना रहा है। बंदर के अतिरिक्त मनुष्य ही ऐसा जानवर है जो अन्य जानवरों की नकल कर सकता है। नकल करते-करते मनुष्यों में अन्य प्रजातियों के गुण भी आने लगे हैं। इस प्रकार चेतन जगत में बंधुत्व की भावना का भी विस्तार हो रहा है।

समय का सब पर प्रभाव पड़ता है, मनुष्य का अपने क्षेत्र में हस्तक्षेप देखते हुए जानवर भी अब योग करने लगे हैं। एक श्वान मेरे मोहल्ले की गलियों में नित्य मनुष्यासन लगाता है। वह सबल को देखकर दुम हिलाता और निर्बल को देखकर भोंकता है। इसका उसे लाभ भी हो रहा है। इस आसन के करने से उसे पर्याप्त मात्रा में भोजन प्राप्त हो जाता है। शेरों ने तो गजब कर दिया, जैसे आदमी प्रकृति दर्शन के लिए जंगलों की सैर पर निकलता है, वैसे ही आजकल शेर शहरों में आदमियों के दर्शन के लिए आकर अपना स्वास्थ्य बनाने लगे हैं। गौ माताएँ भी सड़कों पर हठ आसन लगाकर बैठ जाती हैं और किसी भी व्यवधान से विचलित नहीं होतीं।

योग की माँग को देखते हुए योग संस्थाओं की शोध एवं विकास शाखाओं द्वारा नए-नए आसनों का आविष्कार किया जा रहा है। सब पतंजलि बनना चाहते हैं। योग गुरुओं की बाढ़ आ गई है। योग व्यवसाय में नए-नए स्टार्टअप आ रहे हैं। हमारी सरकार के सद्प्रयासों से ही भारतीय योग को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर ख्याति प्राप्त हुई। संपूर्ण विश्व 21 जून को योग दिवस के रूप में मनाता है। अब योग को अंतरराष्ट्रीय बाजार मिल गया है। भारत, विश्व में योग गुरुओं का सबसे बड़ा निर्यातक देश बन गया है।

योग में विविधता लाई जा रही है। आम और खास दोनों पर इसका प्रभाव पड़ रहा है। एक दिन सुबह-सुबह पार्क में घूमने निकला, देखा, एक व्यक्ति आधा झुका हुआ हाथ हिलाते हुए काँव-काँव कर रहा था। मैंने पूछा, क्या कर रहे हो, तो वह बोला, कागासन लगा रहे हैं। इस आसन को लगाने से अवसरवादिता, चालाकी एवं हठीलेपन के गुणों का विकास होता है। एक व्यक्ति पीठ के बल लेटे हुए हाथ पैर पटक रहा था। उसने पूछने पर बताया कि वह चक्रीवान (गर्दभ) आसन लगा रहा है, इससे मूर्खता एवं असामाजिकता जैसे गुण आते हैं, यह आसन शासकीय कर्मियों के लिए उपयोगी है। एक अन्य व्यक्ति चौपाया बना हुआ भों-भों कर रहा था। उसने बताया यह कूकूर आसन है, यह बुद्धिजीवियों के लिए लाभप्रद है।

एक जगह पर कुछ मनुष्य एक पेड़ के नीचे एकत्र होकर मुँह ऊपर उठाकर हुआ-हुआ कर रहे थे, पूछने पर उन्होंने बताया कि यह शृगालासन है। इसे लगाने से मनुष्य में गीदड़ भभकी एवं बलवान से डरने के गुणों का विकास होता है, ये गुण सफलता के लिए आवश्यक हैं। यदि एक सियार ने हुआ का उच्चारण किया तो सभी सियार हुआ-हुआ करने लगते हैं। यह गुण कवि सम्मेलन एवं मुशायरे के श्रोताओं के लिए अत्यंत आवश्यक होता है। प्रजातंत्र में इसकी उपयोगिता असंदिग्ध है।

आवश्यकता आविष्कार की जननी है। एक स्थान पर कुछ व्यक्ति एक के ऊपर एक भिन्न-भिन्न रंगों की टी-शर्ट पहने हुए थे। वे उन्हें एक-

एक कर उतार रहे थे। कभी हरे रंग की टी-शर्ट में दिखते, तो कभी पीली, कभी लाल, तो कभी नीली, कभी गुलाबी, तो कभी बादामी, कभी बैंगनी, तो कभी केसरिया। मैंने पूछा यह क्या कर रहे हो भैया? तो वे बोले, गिरगिट आसन लग रहे हैं। इस आसन से अवसर देखकर रंग बदलने में आसानी होती है। राजनीतिज्ञों के लिए यह आसन लाभप्रद है।
इस प्रकार आवश्यकतानुसार नए-नए आसन शोध कर खोजे जा रहे हैं।

योग से ही आत्मा को परमात्मा से मिलने का दुर्लभ संयोग प्राप्त होता है। एक सज्जन हाफ पैंट एवं टी शर्ट पहने हुए एक पीपल के पेड़ के नीचे पार्क में सार्वजनिक रूप से ध्यानावस्था में बैठे हुए थे। मैं उनके समीप गया, ध्यान से देखा, उनकी आँखें बंद थीं पर पुतलियाँ घूम रही थीं। मैं और नजदीक गया, उन्होंने एक आँख आधी खोली, मुझे देखा और तत्काल बंद कर ली, फिर निश्चल हो गए, साँस रोक ली। ऐसा लग रहा था कि उनकी आत्मा का परमात्मा से मिलन हो रहा है। मुझे वहाँ देखकर और दो-चार लोग इकट्ठे हो कर खुसर-पुसर करने लगे। एक ने नाक के पास हाथ ले जाकर देखा और सिर हिलाते हुए खींच लिया, फिर गहरी साँस छोड़ते हुए बोला, 'भाई साहब ध्यान की उच्चतम अवस्था पर पहुँच गए हैं। लगता है इन्हें राम नाम की सत्यता का ज्ञान हो गया है।'

मैंने भी सत्यता परखनी चाही, एक घास का तिनका उठाया और भाई साहब की नाक के नथुने के अंदर घुमा दिया। भाई साहब जोर से छींके, सब ने राहत की साँस ली। उन्होंने आधी आँखें खोलते हुए पूछा, 'कौन मेनका मेरी परीक्षा ले रही है। लगता है मेरी तपस्या से इंद्र का आसन डोल गया है।'

'भाई साहब, हम मेनका नहीं, साधारण मनुष्य हैं। आप तो पहुँचे हुए साधक हैं, ध्यानावस्था में भी मेनका के सपने देख लेते हैं। हमारी शुभकामनाएँ हैं, आपकी साधना से आपके सपने साकार हों, आप चमत्कारी पुरुष बनें और वैभव प्राप्त करें।' कहते हुए मैं मुस्कुराते हुए चल दिया। बात इंद्रासन की आ गई तो आपको बता दें, आज भी इंद्रासन डोलता है, पर उसके लिए दूसरा योग लगाना पड़ता है। इस योग के प्रयोग से सिंहासन पर बैठी सरकार शीर्षासन करने लगती है और दूसरे पक्ष के साधक पूर्ण चैतन्यता के साथ चुपचाप शवासन में लेट कर सभा में बहुमत के गणित का योग लगाने लगते हैं। सभा कोई भी हो सकती है, पंचायत की, नगर पालिका की, नगर निगम की, राज्य की, अथवा केंद्र की। आपकी जानकारी के लिए मूल योग से इतर, एक योग राजनीति के गणित में भी होता है, बहुमत का योग। इस योग का व्यावहारिक उपयोग सत्ता से एकात्म स्थापित करने के लिए किया जाता है। इसमें ध्येय सत्ता होती है और ध्यान कुर्सी का किया जाता है। फिर पूर्ण मनोयोग, धन योग, बल योग, लालच योग एवं भय दोहन योग के साथ गुप्त साधना की जाती है। साधना के बल पर एक पक्ष के बल को घटाकर अपने बल में संयोजित कर, वांछित योग फल प्राप्त किया जाता है, जिससे आप निर्धारित ध्येय अर्थात् सत्ता को प्राप्त करते हैं। यदि आपकी साधना में कोई त्रुटि हो गई, या बाहरी हस्तक्षेप हो गया तो विपरीत परिणाम भी प्राप्त हो सकते हैं, इसे दुर्योग कहते हैं। यदि साधना सफल हुई तो साधक को इंद्रासन का संयोग प्राप्त होता है।

इधर कुछ समय से सामूहिक योग का प्रयोग बहुमत का योग प्राप्त करने के लिए किया जाने लगा है। योगाचार्य बार-बार कहते हैं कि इस योग को सावधानीपूर्वक, समयोचित नियम से एवं गुरु के मार्गदर्शन में कीजिए, अन्यथा विपरीत परिणाम प्राप्त होने की आशंका हमेशा बनी रहती है। इस योग के क्षेत्र में कई महागुरु उपलब्ध हैं। ऐसा देखा गया है की इस गुरु शिष्य परंपरा में कोई कोई शिष्य महारत हासिल कर लेते हैं, और अवसर पड़ने पर धीरे से गुरु की ही दरी खिसका देते हैं। हमारे यहाँ इस प्रकार के योग राजनीति में काफी लोकप्रिय हो रहे हैं।

आपको ज्ञात ही है की हमारे योग ने अब अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी ख्याति अर्जित कर ली है। रूस के पुतिन हठयोग लगा रहे हैं, तो अमेरिका के बाईडन यूक्रेन को आसन लगवाने में व्यस्त हैं। इसके पहले अमेरिका कई देशों को आसन लगवा कर उनकी हड्डियाँ टुड़वा चुका है। चीन, हमेशा की तरह शठ योग में व्यस्त है। पाकिस्तान परोक्ष योग में विश्वास करता है और मुँह की खाता है। सारा संसार अपने अपने हिसाब से योग लगा रहा है। देखते हैं क्या फल प्राप्त होता है?

हम हिंदुस्तानी ग्रह योग पर भी अटूट विश्वास रखते हैं। ज्योतिषियों का मानना है कि सारे संयोग और दुर्योग, ग्रह योग से ही घटित होते हैं। यह तो ज्योतिषी ही बता सकते हैं कि किस के लिए ग्रह योग अनुकूल हैं और किसके लिए प्रतिकूल? कई तथाकथित गुरु त्रुटिपूर्ण योग लगा लेते हैं, तब संयोग, दुर्योग हो जाता है, और दुर्योग, संयोग। इति योग, संयोग, दुर्योग कथा संपूर्णम।

90-91/1, यशोदा बिहार
चूना भट्टी, भोपाल-462039 (म.प्र.)
मो.-9406925564

साहित्य, संस्कृति और समाज के हाशिए

- श्रीराम परिहार

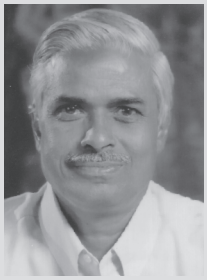

जन्म - 16 जनवरी 1952।
शिक्षा - एम.ए., पीएच.डी., डी.लिट्।
रचनाएँ - ग्यारह निबंध संग्रह सहित बीस पुस्तकें प्रकाशित।
सम्मान - अखिल भारतीय अम्बिका प्रसाद दिव्य सम्मान सहित अनेक राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय संस्थाओं द्वारा सम्मानित।

साहित्य की रचना समाज की प्रतिभा से ही होती है। परम्पराएँ, लोक विश्वास, लोक व्यवहार, लोक अनुष्ठान, शास्त्रविधि, विचार, भाव, कल्पना, सम्बन्ध, रीति-नीति, आदर्श, पुरुषार्थ, कर्मनिष्ठा, दर्शन, पुराण, अध्यात्म, प्रकृति, परिवेश, देश, काल, चिति, चिन्तन, आत्मविस्तार सब मिलकर संस्कृति निर्माण के घटक हैं। भूमि, जन और समाज की चिति के सुघड़पन से संस्कृति-घट की रचना होती है। इस अर्थ में कला और साहित्य भी संस्कृति की परिधि में आ जाते हैं। संस्कृति व्यापक अर्थ-अवधारणा वाला चिद्विलास है। यह चिन्तन और व्यवहार, हृदय और बुद्धि, कला और कौशल, रचना और निर्माण का सौन्दर्य, शिवत्व के स्तर पर धारणा किए हुए है। सभी घटकों के गुण हैं। गुण ही बहुत गहरे में उनका धर्म कहलाते हैं। इसका धनीभूत रूप ही संस्कृति-धर्म कहा जा सकता है। अत: संस्कृति का प्राण धर्म है। बिना गुण-धर्म के संस्कृति निष्प्राण होती है।

समाज वह आधार भूमि है, जहाँ और जिसमें संस्कृति की शनै:-शनै: रचना होती है। समाज और संस्कृति की आन्तरिक और बाह्य प्रकृति के सूत्र और सिद्धान्त साहित्य में रूपायित और शब्दायित होते हैं। समाज से संस्कृति निपजती अवश्य है; परन्तु यह धीरे-धीरे समाज को भी प्रभावित करती है। स्वस्थ समाज के निर्माण में संस्कृति प्रमुख भूमिका निर्वाह करती है। साहित्य भी समाज को आलोकित करता है। वह पथ-प्रदर्शक भी हो जाता है वह समाज का बिम्ब भी, प्रतिबिम्ब भी, छाया भी, छायाकार भी हैं। वह समाज-संस्कृति की कथा भी है। कथावाचक भी। संकेत भी है, संकेतक भी। वह समाज के लिए सुगम पथ भी है, पथ-प्रदर्शक भी है। अत: गहरे में और अपने मूल चैतन्य स्तर पर साहित्य, संस्कृति और समाज, महानिलय के सभामण्डप में जीवन की भागवत कथा बाँच भी रहे हैं। परस्पर सुन भी रहे हैं।

सृष्टि-विज्ञान का ध्रुव-सत्य है। कोई भी अपनी धुरी से इधर-उधर होता है, तो संतुलन गड़बड़ा जाता है। यह विधान साहित्य, समाज के सन्दर्भ में भी है। एक ही तत्व की अधिकता से दूसरी आवश्यक वस्तु का टोटा पड़ने लगता है। एक के केन्द्र में आने से दूसरा हाशिए पर चला जाता है। केन्द्र में आना अच्छी बात हो सकती है, लेकिन दूसरे आवश्यक का हाशिए पर जाना या हाशिए पर धकेल देना, सर्वथा उचित नहीं है। साहित्य, संस्कृति और समाज के क्षेत्रों में कुछ ऐसा भी हुआ है। पिछली आधी शताब्दी का परिदृश्य हमारे सामने है।

साहित्य का दायित्व समाज-सरिता के तट पर खड़े-खड़े मात्र उसके प्रवाह को देखना नहीं है। साहित्य समाज की नदी में धँसकर उसके प्रवाह की ऊष्मा और ऊर्जा को भी बहुत आत्मीयता से अनुभव करता है। साहित्य यदि ऐसा नहीं करता है, तो वह समाज-संस्कृति के बाह्याचार को ही देख पाएगा और उसकी आन्तरिक लय को न पकड़ पाएगा; न ही आत्मसात कर पाएगा। पिछले सात दशकों का साहित्य कुछ ऐसा करता रहा कि वह अपनी मूल और मौलिक चिन्तन-भूमि से हट गया। उसने विदेशी या उधार का दुशाला ओढ़कर चर्चित और वैश्विक बनना चाहा। दुष्परिणाम यह हुआ कि न वह अपने जन, समाज और जमीन का रह सका और न वह विश्व-साहित्य बन सका। उससे भी बड़ी उसकी दुष्प्रवृत्ति यह रही कि उसने अपनी परम्पराओं और चिन्तन-धारा से दूरी बना ली। बुरी बात यह हुई कि ऐसे साहित्य से या ऐसे साहित्य ने पूरी ज्ञान-परम्परा को हाशिए पर धकेल दिया। एक समृद्ध भारतीय ज्ञान-परम्परा का एक तरह से तिरस्कार किया गया। भारतीय ज्ञान-परम्परा से उद्भूत समाज में व्यावहारिक स्तर पर जीवन-विधि की परम्पराएँ भी साहित्य के हाशिए पर चली गई। सारे भारतीय मांगलिक प्रतीक साहित्य से बाहर कर दिए। सारे अनुष्ठान उपेक्षित कर दिए गए। योथे समाज-जीवन का चित्रण पोचे साहित्य में किया गया। भारतीय ज्ञान-परम्परा और मंगल-मान्यताएँ साहित्य के हाशिए पर चली गईं।

मूल तत्त्व जब हाशिए पर जाता है; तब उससे जुड़े आनुशंगिक उपतत्त्व स्वत: ही हाशिए पर चले जाते हैं। भारतीय ज्ञान-परम्परा की अभी तक उपेक्षा के कारण साहित्य के बड़े भाग से जीवन-मूल्य भी हाशिए पर हैं। जीवन-मूल्यों के कारण उनसे प्रसूत और प्रेरित जीवनादर्श साहित्य के हाशिए पर अब तक रहे हैं। और तो और जीवन मूल्यों

को लेकर भारतीय सन्दर्भों से दीप-दीपित विधाएँ-नवगीत, ललित निबन्ध, सांस्कृतिक संस्मरण, पुरा आख्यान, संवाद-कथाएँ भी हाशिए पर सोची-समझी साहित्यिक रणनीति से कर दी गईं। परन्तु भारतीयता की जमीन ऐसी रस-रस गंधवाही और सुगंधमयी है कि ये और इस तरह की भारतीय माटी-गंधी विधाएँ अपने रचना-पथ पर मौन-अनथक-अनबुझी बढ़ती रही हैं। बढ़ रही हैं। महत्ता संख्याबल से अधिक गुणवत्ता की हुआ करती है। यद्यपि पिछले दशकों में संस्कृति के मौलिक और उज्ज्वल स्वरूप को हाशिए पर धकेलने की कुत्सित कोशिशें हुईं; लेकिन साहित्य के सत्यपोषित हृदय ने और समाज के बहुत बड़े भारतीय मन ने अपनी सांस्कृतिक धरोहर को आचार-व्यवहार-विचार-भाव-कल्पना में सुरक्षित रखा है। भारतीय मन मूलत: गाँव का मन है। गाँव प्रकृति के बीच, प्रकृति के साथ जीता आया है। भारतीय मन रहेगा। भारत बचा रहेगा। संस्कृति बची रहेगी। जीवन बचा रहेगा। साहित्य की सलिला अपनी ज्ञान-परम्परा के जल-प्रवाह की निर्मलता के साथ पयस्वनी बनी रहेगी।

साहित्य, संस्कृति, समाज की प्रकृति और प्रवृत्ति परिवर्तनशील और विकासवादी है। परिवर्तन निश्चित है। विकास जड़ता को तोड़ता है। लेकिन परिवर्तन और विकास अपने उत्स से जुड़ा रहकर ही सही दिशा और मार्ग पर ठीक-ठीक अग्रसर हो सकता है। संतुलित और अक्षुण्ण विकास वह कि विकास या गति की धुन के साथ विरासत भी सुरक्षित रहे। आधुनिकता का दुराग्रह अशुभ है। आग्रह शुभ हो सकता है। संस्कृति और समाज परिवर्तन की प्रक्रिया धीमे होती है। साहित्य में बदलाव या विकास प्रक्रिया अपेक्षाकृत तीव्र होती है। साहित्य, संस्कृति और समाज ने नया और आधुनिक दिखने की अंधी हड़बड़ी में कपड़े उल्टे-सीधे पहन लिए। उसका रूप तो विकृत हुआ। उसका स्वरूप भी बिगड़ गया। संस्कृति के आन्तरिक मूल्य तो बहुत गहरे और गम्भीर हैं। उसके बाहरी प्रतिमान बदल गए। भवन, भूषा, भोजन, भाषा और भेषज ये बाह्य स्थूल प्रतिमान हैं। हमारे यथार्थ भारतीय संस्कृति और समाज के ये अवयव पीछे, बहुत पीछे छूटते गए। ये सब हाशिए पर हो गए। यही नहीं; संस्कृति और समाज को गत्यात्मक बनाए रखने वाली मूल आस्था को चोटिल-घायल कर हाशिए पर धर दिया। इससे हुआ यह कि संस्कृति और समाज की वह अन्तर्दृष्टि जो अटल-अचल-शाश्वत सत्यों को आलोकित करती है; उसे धुँधलाकर हाशिए पर ला दिया। पर धुन्ध छटेगी। सत्य निखरेगा।

जब आस्थाएँ विरल होती हैं, तब उससे निकले हुए सांस्कृतिक कलारूप भी उपेक्षित होते हैं। ऐसी स्थिति में कलाएँ जीवन का अंग या जीवन से जोड़कर नहीं देखी जातीं। वे प्रदर्शन की और मनोरंजन की प्रतिमाएँ भर रह जाती हैं। विगत वर्षों में यही हुआ है। कलाओं का व्यवसायीकरण हो गया। उनका मोल-भाव किया जाने लगा। परिणाम में वे जीवन से विलग होकर हाशिए पर चली गईं। वे सांस्कृतिक पहचान खोने लगीं। वे संस्कृति-चेता धरोहर नहीं रहीं। समाज के मानसिक उपचार या समाज को स्वस्थ रखने का अंग नहीं रहीं। वे भावात्मक विरेचन का दृष्य-श्रव्य-साहित्य नहीं रहीं। वे अर्थ की गलियों में निस्प्रभावी अटकते-भटकते हाशिए पर चली गईं। यही प्रवृत्ति साहित्य में भी घुस गई। एक तरह से धँस गई। साहित्य से सत्य-सौन्दर्य-शिवत्त्व उपेक्षित होते गए। या तिरस्कृत कर दिए गए। इससे साहित्य सूखा और आत्मविहीन रूप में समाज के सामने आया। समाज ने ऐसे साहित्य को हृदयंगम नहीं किया। साहित्य ने अपने हाथों अपने पाँव पर कुल्हाड़ी मार ली। साहित्य में प्रकृति चित्रण और पक्षियों का कलरव तथा नदी की कलकल सुनाई नहीं पड़ रही है। नगरों, पुरों, नदियों, घाटों, पर्वतों, पहाड़ों, वनों, उपवनों की सुषमा साहित्य से छिटकाकर हाशिए पर बैठा दी गई है। जीवन को खण्ड-खण्ड चित्रित किया गया। जबकि जीवन अखण्ड है। मिठास को तोड़ा नहीं जा सकता, धारा में लट्ठ मारकर विभाजित नहीं किया जा सकता। अंतरिक्ष में दीवार नहीं बनाई जा सकती।

बेसुध विकास और अंधी आधुनिकता के अतार्किक मोह के कारण साहित्य में जीवन का समग्रता से चित्रण नहीं हो रहा है। विगत साठ-सत्तर वर्षों के साहित्य में जीवन टुकड़ों-टुकड़ों में अपनी कुढ़न और घुटन के साथ मौन-एकांत भोग रहा है। जबकि जीवन खण्ड-खण्ड नहीं है। समग्र है। साहित्य में भी वह समग्रता में आना अपेक्षित है। खण्ड दृष्टि-पश्चिम की है। इस तरह के हल्लाबोल साहित्य में वर्णित जीवन से संतोष, शांति, सद्भाव, संवेदना हाशिए पर हैं। यथार्थ केवल यथार्थ या वर्तमान केन्द्र में है। आदर्श या पथ-संकेतक हाशिए पर हैं। जबकि जीवन केवल वर्तमान को ही नहीं जीता है। वह अतीत की स्मृतियों के साथ वर्तमान में होता है। भविष्य की आकांक्षाओं के साथ गतिमय और संघर्षरत होता है। ऐसा क्यो हैं? क्योंकि आज या विगत साठ-सत्तर वर्षों की अवधि के साहित्य-सर्जकों ने वर्तमान से गलबाहियाँ कर जीवन को अर्थ और काम की सीमाओं में ही देखा-पाया है। यह दृष्टि भारतीय नहीं है। न ही यह वैज्ञानिक दृष्टि है।

इस अपनी जड़ों से उखड़े हुए साहित्य में हमारा काल-बोध कहीं नहीं दिखाई-सुनाई देता है। हमारा काल-बोध हाशिए पर है। दुष्परिणाम यह हुआ कि समाज की नई पीढ़ी काल की चक्रीय स्थिति और वैज्ञानिक काल की अवधारणा से दूर हो गई। स्वतंत्रता प्राप्ति तक हमारा काल-बोध, वैज्ञानिक काल-बोध, ग्रहों-नक्षत्रों की गति-स्थिति पर आधारित काल-बोध साहित्य में वर्णित होता रहा है। प्रत्येक साहित्यिक पत्रिका और समाचार-पत्रों में तिथियाँ अंकित होती रही हैं। साहित्य में तिथियों का उल्लेख होता रहा है। यह प्रवृत्ति हमारी सांस्कृतिक विरासत से प्राप्त हुई है। काल की शाश्वत अवधारणा

हमारी साहित्य-संस्कृति विरासत से आई है। वह समाज में सुस्थित थी। इधर के साहित्य से वह काल-बोध हाशिए पर कर दिया गया है। इसलिए समाज से भी वह हाशिए पर छिटका दिया गया है। यह काल की वैज्ञानिकता की अवमानना है। इसके दूरगामी दुष्परिणाम हैं। हमारा कालचक्र षट्ऋतुओं को आमंत्रण देता है। सांस्कृतिक अनुष्ठान उसी के आधार पर सम्पन्न होते हैं। समाज में हर्ष-विषाद, सुख-दु:ख, जन्म-मरण, की जीवन-रेखाओं के बीच रंग उसी आधार पर भरे जाते हैं। घर-द्वार पर वन्दनवार उसी काल-बोध के अनुसार सजते हैं। आँगन में, चौगान में, गलियों में, खेतों में, नदी, सरोवरों, वनों, घाटों, सुबह, शाम, दिवस, रात्रि, चैत, कार्तिक, शरद, वसंत, सावन, भादों के लोक-पर्वों, लोकोत्सवों, लोक अनुष्ठानों के चौक पूरित मंगल-कलश भारतीय वैज्ञानिक काल-बोध के अनुसरण से ही सजते हैं। दुर्भाग्य यह है कि हमारे साहित्य से लोकोत्सव, लोकपर्व, जीवन उत्सव, आस्था, श्रद्धा, समर्पण, त्याग, सेवा के प्रसंग सब हाशिए पर कर दिए गए हैं।

साहित्य, संस्कृति, समाज में घनघोर परिवर्तन यह हुआ कि धीरे-धीरे संवेदना हाशिए पर कर दी गई। मानवतावाद हाशिए पर है। विचारवाद और तंग दृष्टिवाद केन्द्र में आ रहा है। तीनों स्तरों पर संस्कारों को देश निकाला करने की स्थिति है। साहित्यिक संस्कार नहीं रहे। संस्कृति बोध नहीं रहा। आचरण की सभ्यता का उपहास किया जाने लगा। समाज सत्संग विहीन हो गया। समाज संबंधों और विश्वासों के निर्वाह से चलता है। बनता है। आगे बढ़ता है। संबंधों की पवित्रता ही समाज को सुगठित करती है। विश्वासों की सघनता ही समाज को दीर्घजीवी बनाती है। सत्संग समाज को स्वस्थ मन-मस्तिष्क देता है। अब तो ये तीनों ही हाशिए पर हैं। इसलिए संयुक्त परिवार हाशिए पर हैं। संबंधों की गम्भीरता हाशिए पर है। सत्संग के अभाव में मति, गति, प्रगति भटक जाती है। अत: समाज में धर्म का वास्तविक और सही रूप-स्वरूप नहीं रह पा रहा है। धर्म का सही स्वरूप हाशिए पर है। सामाजिक-संस्कार जीवन को निरंतर परिमार्जित करते हैं। उसके अभाव में जीवन का पुरुषार्थ चतुष्टय हाशिए पर चला जाता है। आज धर्म का सही आचरण और उच्च स्वरूप हाशिए पर हैं। केवल अर्थ प्राप्ति और कामना पूर्ति लक्ष्य लेकर समाज-जीवन आगे बढ़ रहा है। जीवन में अहंकार गहराया है। अत: जीवन एक अंधखोह में जाने को अभिशप्त है। परिवार और समाज में एकांगीपन तथा एकाकीपन गहरा रहा है। सामूहिकता और सौहार्द हाशिए पर हैं। समाज परस्पर रक्षा-सूत्र और सम्बम्धों के रेशमी धागों से बँधा होता है। वे धागे क्षीण, क्षीणतर होते जा रहे हैं।

इधर साहित्य में अनेक, विषयों और वर्गों पर केन्द्रित सृजन किया जा रहा है। यह अच्छी बात है। अनेक विमर्श खड़े किए गए। वे भी अपनी जगह समयानुकूल हैं। लेकिन साहित्य के माध्यम से समाज में इन पर संवाद नहीं हो रहा है। इतना लिखने के बाद भी किसान साहित्य एक तरह से हाशिए पर है। घुमन्तू जन जातियों के अस्तित्व को साहित्य में उस तरह से नहीं उभारा जा रहा है कि वे साहित्य में और समाज में अपनी पहचान के साथ समादृत हो सकें। अभी भी हाशिए पर हैं। केवल संगोष्ठियाँ निदान नहीं हैं। हमारे साहित्य से औषधि विज्ञान हाशिए पर है। विज्ञान साहित्य भी हाशिए पर है। जबकि औषधि और विज्ञान दोनों ही समाज जीवन से घनिष्ठ जुड़े हुए हैं। पानी के संकट से पूरा विश्व जूझ रहा है। कुछ उपन्यासों और कुछ कहानियों को छोड़कर इसकी चर्चा भी हाशिए पर है। अपेक्षा की जाती है कि रचना कर्म के लिए रचनाकार को बहुज्ञ होना चाहिए। पर ऐसा है नहीं। इसलिए मौलिक साहित्य भी हाशिए पर है।

सृजन के लिए साधना अपेक्षित और एक तरह से अनिवार्य है। शब्द-साधना से अर्थ-गाम्भीर्य आता है। साहित्य-साधना से प्रतिभा का उन्मेष होता है। सृजन में मौलिकता आती है। साहित्य सर्वहितकारी होता है। वह वर्ग विशेष का न होकर अखिल लोक के लिए होता है। पर आज साहित्यिक-संस्कार हाशिए पर हैं। साहित्य-साधना के लिए धैर्य नहीं है। साहित्य-साधना, साहित्य-सर्जन में धैर्य चाहती है। रचनाकार का धैर्य हाशिए पर है। परिणामत: सर्जक रचनाकार में अन्तर्दृष्टि नहीं आ पाती। साहित्य तो लिखा जा रहा है। अन्तर्दृष्टि हाशिए पर ही नहीं, पूरे पृष्ठों से ही कूच कर गयी है। इसके कारण साहित्य और साहित्यकार की अस्मिता ही हाशिए पर है। लोक कहता है कि सस्ती वस्तुएँ ज्यादा समय तक नहीं टिकती हैं। साहित्य भी लोकप्रियता के सस्ते रास्तों पर चल रहा है यह ठीक नहीं है। पत्रिकाएँ बन्द हो गई हैं। बन्द हो रही हैं। समाज-संचार-माध्यम (सोशल मीडिया) पर 'अहो रूपम् अहो ध्वनि' का तंत्र खड़ा हो गया है। इसके कारण गम्भीर चिन्तन, गम्भीर सर्जन और गम्भीर पठन-पाठन हाशिए पर है। रचनाकर्म स्तरहीन हुआ तो आलोचना की पूरी हवा की दिशा ही बदल गई। गंभीर आलोचना हाशिए पर है। आलोचना-सिद्धांत उपेक्षित हैं। साहित्यिक गम्भीरता के स्थान पर सस्ती साहित्यिक लोकप्रियता सोशल मीडिया पर धमाल मचा रही है। साहित्य-शास्त्र वनखण्ड में संन्यासी होकर चला गया है।

साहित्य का छन्द बिखर गया है, पर जीवन का छन्द अभी बज रहा है। वह समाज के वंशीवट की शाखा से संस्कृति की छाया की ओट से साहित्य की किरण-धेनुओं को पुकार रहा है। अब जीवन के वृन्दावन में लौट आओ। पूरब दिशा में सुनिए! एक सहमी किन्तु उत्साही पग-ध्वनि सुनाई दे रही है।

आजाद नगर,
खण्डवा-450001 (म.प्र.)
मो.-9425342748

फिर आँधियों को मेरा नाम और पता देना

– संतोष श्रीवास्तव

जन्म – 23 नवंबर।
जन्म स्थान – मँडला (म. प्र.)।
शिक्षा – एम.ए., बी.एड.।
रचनाएँ – तीस पुस्तकें प्रकाशित।
सम्मान – म.प्र. राष्ट्रभाषा प्रचार समिति सहित अनेक संस्थाओं द्वारा सम्मानित।

हेमंत सदा के लिए चला गया। असीम में समा गया। रौनक से लबरेज़ मात्र 22 साल मेरा साथ देकर और मैं हिमखंड सी जम गई। अपनी वेदना, पीड़ा, शोक, अवसाद, असफल जिंदगी को लेकर प्रश्न, ईश्वर के प्रति आहत विश्वास और श्रद्धा।

चाहती हूँ मेरे अंदर का हिमखंड पिघले। आँसू बहा कर गम गलत करना मेरी फितरत नहीं। मैं अलग ही किस्म की हूँ। मुझे आम जिंदगी रास नहीं आती, फिर चाहे खास उबड़-खाबड़ पथरीली, काँटों भरी क्यों न हो। मैं उस पर अब चल लेती हूँ। न तलवों के छाले सहलाती, न काँटों को खींचती। राह की यह खासियत शुरू हुई थी मेरे शहर जबलपुर से जहाँ मेरे बाबूजी मँडला से जिला मजिस्ट्रेट के पद से सेवा निवृत्त हो एडवोकेट थे और ताउम्र वकालत करते रहे। अम्मा कांग्रेस में थीं और समाज सेवा उनका शौक था। सुभद्रा कुमारी चौहान से उनकी प्रगाढ़ मित्रता थी। आजादी के बाद चौहान परिवार से अम्मा-बाबूजी के ताल्लुक घरेलू हो गए। उनकी बड़ी बेटी सुधा अमृतराय से ब्याही थी। हम अमृतराय को जीजा कहते। द्वारिका प्रसाद मिश्र, नर्मदा प्रसाद खरे, रामानुज लाल श्रीवास्तव, मायाराम सुरजन और हमारा परिवार जबलपुर में विभिन्न राजनीतिक, साहित्यिक, सामाजिक कार्यों में सदा सक्रिय रहे।

अम्मा खादी पहनतीं। उनके तन पर एक भी जेवर न होता। काँच की चूड़ियाँ, बिछुए और सिंदूर ही उनका सिंगार थे। न कभी अम्मा-बाबूजी का कोई बैंक खाता रहा, न जमीन जायदाद से मोह। माछीवाड़ा में मेरे मालगुजार बाबा की हवेली के तलघर में भरी सोने की ईंटें, चमड़े की थैलियों में गिन-गिन कर भरे चाँदी के सिक्के और सोने की मोहरें उनके लिए धूल समान थे।

अम्मा ने नगरपालिका का चुनाव भी जीता था और वे शहर की मेयर भी चुनी गईं। एक साल मेयर पद पर रहने के पश्चात् वे शिक्षा विभाग में इंस्पेक्टर चुनी गईं। वे विभिन्न प्रायमरी और माध्यमिक पाठशालाओं में अचानक पहुँच जातीं इंस्पेक्शन के लिए। उनके कार्यकाल तक पाठ शालाओं में विद्यार्थियों के लिए बहुत सारे कार्य हुए।

जबलपुर में सांप्रदायिक दंगों की वजह बने उषा भार्गव कांड की पूरी रिपोर्ट लेकर वे नेहरू जी के पास गईं और मुख्यमंत्री (मध्यप्रदेश) द्वारका प्रसाद मिश्र के साथ मिलकर इस कांड की तह तक पहुँचाने में खासी मदद की। उन्होंने कांग्रेस द्वारा स्थापित भारत सेवक समाज ज्वाइन कर लिया था। और वे उसकी कर्मठ सदस्य थीं। वे कैंप लेकर मध्य प्रदेश के गाँवों में जाती थीं और 8 या 10 दिवसीय कैंप आयोजित करती थीं। इन कैंपों में गाँवों के विकास और ग्रामीण महिलाओं के लिए विशेष कार्य आयोजित होते थे। कैंपों में ओपन फायरिंग भी सिखाई जाती जिसमें वे बड़ी दिलेरी से भाग लेती थीं। उन्होंने आदिवासी महिलाओं को उनके अधिकारों के प्रति जागृत करने में प्रमुख भूमिका अदा की।

अम्मा मेरे जीवन की प्रेरणा थीं। जब मैं 16 साल की थी मेरी हम उम्र लड़कियाँ इश्क के चर्चे करतीं, सिल्क, शिफॉन, किमखाब, गरारे, शरारे में डूबी रहतीं। मेहँदी रचातीं, फिल्मी गाने गुनगुनातीं, दुल्हन बनने के ख्वाब देखतीं, तकियों के गिलाफ पर बेल बूटे काढ़तीं। मैं कभी अपने को इस सब में नहीं पाती। मेरे अंदर एक खौलता दरिया था जिसका उबाल मुझे चैन न लेने देता। दिन में आँखों के सामने कोर्स की किताबें होतीं। रात को दो बजे तक कागज-कलम थामे दुनिया-जहान को टटोलने की कोशिश शब्दों के जरिए करती। शब्द बड़े बेकाबू थे। कब अपनी मर्जी के अर्थ गढ़ लेते पता ही नहीं चलता। मैं उन अर्थों में ऐसी डूबती कि किनारा मिलना दुश्वार हो जाता पर मेरी अपनी जिद्! हार क्यों मानूँ? हारना शब्द तो मेरे शब्दकोश में है ही नहीं। ये कच्ची उम्र के दिन जरूर थे पर इन्हीं दिनों ने मेरे अंदर झूठी मान्यताओं, थोथी परंपराओं, अंधविश्वासों के खिलाफ खड़े होने की जिद् पैदा की। इन्हीं दिनों ने मुझे यह सिखाया कि महत्त्वपूर्ण यह नहीं है कि तुम उस सब कुछ का विरोध करो जो हो रहा है, जो होता आया है। पर उसका विरोध अवश्य करो जो सहजता में अवरोध पैदा कर रहा है। हाँ, मैं उस कुछ के खिलाफ खड़ी हुई और इस खड़े होने की जद्दोजहद में उस उम्र का मेरा मोहक बसंत पंखुड़ी-पंखुड़ी बिखर कर मेरी आँखों की तलैया में बह गया। मेरे मन की खदबदाहट में साकार हुई। मेरी लिखी पहली कहानी 17 साल की उम्र में जबलपुर से निकलने वाली लघु पत्रिका कृति परिचय में छपी। हफ्ते भर बाद इलाहाबाद से अमृतराय जी ने लिखा 'तुम लिखती हो इसमें आश्चर्य नहीं पर इतना असरदार! आश्चर्य, तुमसे और भी प्रौढ़ लेखन की उम्मीद है।' अमेरिका से विजय चौहान ने लिखा 'मेरी छोटी सी बहन आज मेरे कंधों से ऊपर जा रही है।' इन प्रोत्साहन भरे खतों ने अगर

मेरी कलम मजबूत की है तो श्रेय इन्हीं को जाता है। उन दिनों लेखन के अलावा नृत्य, सितार और चित्र कला की ओर भी मेरा रुझान हुआ। मैं राधा के व्यक्तित्व से बहुत प्रभावित थी। और राधा–कृष्ण में मैं गहरे उतरना चाहती थी। जब मैं कॉलेज में दाखिल हुई तो मैंने कत्थक नृत्य की शिक्षा बाकायदा लेनी शुरू कर दी। मेरे नृत्य गुरु नरसप्पा जी हाथ में बेंत लिए रहते। तबला बजता रहता और हमारे दिलों में उनका बेंत सरसराता। जरा सी चूक कि सटाक। मजाल है जो पैर बहकें, सुर बिगड़े ताल बिगड़े। इस कठोर अनुशासन में सीखे नृत्य का नतीजा था द्वारिका प्रसाद मिश्र रचित कृष्णायन की नृत्य नाटिका का कॉलेज के वार्षिकोत्सव में प्रस्तुतीकरण और उसमें राधा की मेरी प्रमुख भूमिका। फिर कई नृत्य कार्यक्रम मैंने मंचित किए जिनमें प्रशंसकों की भीड़ जुटाने वाला सबसे उल्लेखनीय कार्यक्रम था जयदेव के गीत गोविंद की नृत्य नाटिका, जिसमें मानिनी राधा की भूमिका निभाते हुए मैं मानो कृष्ण के निबिड़ प्रेम में पड़ गई' अब तो बात फैल गई जाने सब कोई इधर नृत्य का नशा साथ ही सितार का विधिवत अभ्यास और फिर चित्रकारी का जुनून।

कॉलेज से घर लौट कर कभी सुस्ताया नहीं। खाली समय तो कभी रहा नहीं मेरे पास पर हाँ समय से मेरे दोस्ताना ताल्लुक अवश्य रहे। वह मेरे हिसाब से काल खंडों में बँट लेता था। मेरे बड़े भाई विजय वर्मा रेखाचित्र और पोर्ट्रेट बनाने में उस्ताद थे तो मेरी छोटी बहन प्रमिला वॉटर कलर में प्रकृति की रंगीनियों को उकेरती। मैं कोलाज बनाती। तब राजधानी भोपाल संस्कृति–कला का संगम था। बेहद इच्छा रही कि भोपाल में हमारे बनाए चित्रों की एकल प्रदर्शनी हो। विजय भाई नवभारत प्रेस में समाचार संपादक थे, पत्रकार थे और मैं उनसे पत्रकारिता का क–ख–ग सीख रही थी। भोपाल के अखबारों में विजय वर्मा के बनाए चित्रों की एकल प्रदर्शनी की घोषणा हो चुकी थी। उनसे मेरी भला क्या प्रतिस्पर्धा? वह तो मेरे प्रेरणा पुरुष थे। वह देर रात प्रेस से घर लौटते और ब्रश और रंगों में डूब जाते। मैंने इतना डूब कर कला का सृजन करने वाला चित्रकार पहली बार देखा। न खाने की सुध न सोने की। भाई के हाथ ब्रश बन गए और आँखें चित्रों की किताब। भोपाल में यह प्रदर्शनी पूरे सप्ताह चली और इसके एक–एक चित्र का ऊँचे दामों में बिकना इसकी सफलता का वह परचम है जिसके आगे मैं नतमस्तक थी। मैंने और प्रमिला ने जो चित्र बनाए थे उनकी किसी कारणवश प्रदर्शनी नहीं लग पाई।

उमस भरी शामें थीं। गर्मियों में एम. ए. का रिजल्ट निकलना था और विजय भाई ज्यां पाल सात्र के नाटक 'मैन विदाउट शैडोज' के मंचन की तैयारी में जुटे थे। जिसमें उन्हें सौरवियर का किरदार निभाना था और मैं अपने जीवन की निभाई अहम भूमिका के नतीजे के इंतजार में थी। हाँ मैं अपने ददिहाल में पहली लड़की थी जिसने एम. ए. किया था। वह भी फर्स्ट डिवीजन में और उसके तुरंत बाद उसी कॉलेज (एम. एच. कॉलेज ऑफ़ होम साइंस एंड आर्ट्स वुमंस कॉलेज जबलपुर) में मैं लेक्चरर भी हो गई थी। जहाँ से मैंने एम. ए. किया था। तो मैं बात कर रही थी एम. ए. का नतीजा निकलने की। उस दिन विजय भाई के नाटक का पहला शो मंचित हुआ था। विजय भाई की तपस्या का ऐतिहासिक क्षण था। उनका संवाद मंच पर उभर रहा था–'हम लोग तो कब के मर चुके हैं। हमारा होना न होना अब कोई मायने नहीं रखता। मेरी जिंदगी एक लंबी सी गल्ती है। हमने जिंदगी को मायने देने की कोशिश की। नाकामयाब रहे इसीलिए हम मर रहे हैं।'

और शहीद स्मारक भवन में छाया सन्नाटा विजय भाई की थरथराती आवाज, चेहरे पर तैरती खौफ की पुरकशिश परछाईयाँ और मौत की सजा रॉबर्टसन कॉलेज की स्तब्ध छात्रा की सिसकी आज भी मुझे रोमांचित करती है। और रोमांचित करता है वह पल जब एम.ए. के नतीजे के फलस्वरूप विजय भाई मुझे कंधों पर उठाये सारे आँगन में नाचते फिरे थे कि देखो मेरी नन्हीं सी बहन एम. ए. पास हो गई।

बाबूजी और विजय भाई मार्क्सवादी थे मैं इस वाद को समझने के प्रयास में मार्क्स, लेनिन, इंगल्स, यशपाल, राहुल सांकृत्यायन को पढ़ रही थी और चकित थी बाबूजी के दर्शन शास्त्र और मार्क्सवाद की किताबों के लेखन पर। कार्ल मार्क्स को लेकर उनके मन में कुछ विवाद भी रहे पर वे यह कहने से नहीं चूकते थे कि जीवन की सबसे सही व्याख्या मार्क्स ही की है। वे मृत्यु के बाद होने वाले कर्मकांड के सख्त विरोधी थे। उनकी लिखी 'सरस्वती पूजन द्वारा विश्वशांति' पुस्तक ने राष्ट्रीय स्तर पर ख्याति पाई थी। वे मतवाद को, संप्रदाय को उथली मानसिकता मानते थे। उनके इन विचारों को मैंने हूबहू इन किताबों में पाया। मेरे अंदर इस वाद ने आग भड़का दी। यह आग वह मशाल बन सकती थी जो बहुतों को राह दिखाए। पर मैं कंफ्यूज्ड थी क्या करूँ, किस राह जाऊँ? नृत्य, चित्रकारी, नौकरी या लेखन, पत्रकारिता। कुछ तो निर्णय लेना होगा। इस तरह तो मैं अपने अंदर की आग के साथ न्याय नहीं कर पाऊँगी। आखिर लपटों को समेटकर उजाले की शक्ल देनी है न कि विध्वंस की। सो लेखन और पत्रकारिता मूर्त हुआ और बहुत कुछ पीछे छूट गया।

70 के दशक में कहानी को लेकर जो आंदोलन चला था उसमें जबलपुर का लेखक वर्ग खास सक्रिय रहा। परसाई जी ने अपने व्यंग्य के जरिए इस लेखन को उकसाया। मेरे कॉलेज से घर लौटने के रास्ते में ही उनका घर था। मैं अक्सर चली जाती। वे मेरी कहानियाँ सुनकर कहते –'अब वक्त आ गया है सिलसिलेवार छपने का' मैंने बाकायदा विभिन्न पत्रिकाओं में कहानियाँ भेजनी शुरू कर दीं। मेरी कहानियाँ 'खेद है' की स्लिप सहित लौट आतीं। मैं फिर भेजती। यह भेजने लौटने का चक्कर मुझ में लिखने और छपने की जिद पैदा करता गया। फिर जब छपने का सिलसिला शुरू हुआ तो धर्मयुग, सारिका, ज्ञानोदय, साप्ताहिक हिंदुस्तान, कहानी, नई कहानियाँ, आजकल, माया, माधुरी, मनोरमा और ढेरों लघु पत्रिकाओं में भी छपी। लघु पत्रिकाओं में छपने का मंत्र विजय भाई ने मुझे दिया कि अगर पाठकों तक पहुँचना है तो लघु पत्रिकाओं में छपो। और मेरा पाठक वर्ग खड़ा होता गया। आश्चर्य होता था एक कहानी छपती और 80, 80 पत्र प्रशंसकों के आते। वे पत्र मेरी धरोहर बनते गए। मेरी कहानियाँ चर्चित होने लगीं। विशेषांकों के लिए, संकलनों के लिए मेरी कहानियाँ आमंत्रित की जातीं। परिचर्चाओं में मुझे प्रमुखता मिलती। मनोहर श्याम जोशी, अवधनारायण मुद्गल, कमलेश्वर जी मेरे दोस्त बन

गए। कमलेश्वर जी औरतों को लेकर भले ही विवादों में रहे पर मुझे वे अपनी बेटी मानते थे। समांतर कहानी आंदोलन के दौरान सारिका में मेरी कहानियों को छाप कर उन्होंने मुझे जो प्रेरणा दी, वह मैं कभी नहीं भूल पाऊँगी।

हम सब साहित्यकारों, पत्रकारों का अड्डा था –कॉफी हाउस। मैं उसे कॉफी हाउस न कहकर बौद्धिक हाउस कहती थी। हम सब यहाँ एकत्रित होकर हर विषय पर जमकर बहस करते थे। कभी ललित सुरजन भाई, कभी पप्पाई दादा, मलय भाई, ज्ञानरंजन भाई, विजय भाई। मेरे लेखों, कहानियों के ये ही प्रेरणा स्रोत रहे। जब कभी कोई साहित्यकार जबलपुर आता तो एक बैठक कॉफी हाउस में जरूर होती या फिर रोटरी क्लब वाले बैठक आयोजित करते। उन दिनों आज जैसी धूमधाम, टीमटाम, सहभोज से श्रोताओं को जुटाने का फैशन न था। हम किसी फूल के महकने पर भँवरे सा मँडराते खुद ही पहुँच जाते। न कोई छोटा, न बड़ा। सबको बराबरी से बोलने का मौका दिया जाता। हरिवंश राय बच्चन जब आए तो उनके काव्य संग्रह हलाहल पर विचार गोष्ठी रखी गई। न जाने क्यों उन्हें देखकर मुझे अपनत्व का बोध हुआ। मैंने उनके करीब जाकर सिर झुका कर नमन किया। मेरा माथा उनके सीने से छू रहा था। उन्होंने मेरे सिर पर हाथ फेरा मैंने कहा –' आपके सौम्य व्यक्तित्व को देख कर तो नहीं लगता कि आपने हलाहल लिखा होगा।' उन्होंने ठहाका लगाते हुए कहा –

रस विष को गहरे पच जाने दो,
तब तो होगा जीवन धन्य तुम्हारा।

और हलाहल की एक प्रति मुझे भेंट की। मैं आज भी स्वीकार करती हूँ कि विष को पचाने की जो सीख मुझे बच्चन जी ने दी थी, वही मुझे ठहराए है इस हलाहल भरे जीवन में। इसी बीच ब्लड कैंसर से अमृतराय के छोटे बेटे 18 वर्षीय मिथुन की मृत्यु हो गई। मिथुन से मैं गहरी जुड़ी थी। मुझे पता था अब वह कुछ ही दिनों का मेहमान है और यह पता होना मौत की आहट को कैसे शरीर के हर कतरे से सुनना है, मैंने महसूस किया था। मैं इस दुख में भी वट वृक्ष से खड़े अमृतराय और सुधा जीजी से लिपटकर जब रोई थी तब मैं अनागत से अनजान थी कि एक दिन ऐसा भी आएगा, जब मैं भी इस कातर शोक से गुजरूँगी। मिथुन और हेमंत की मृत्यु में बस इतना अंतर होगा कि मिथुन की ओर मौत आहिस्ता–आहिस्ता बढ़ी हेमंत को झपट कर उठा ले गई।

उन्हीं दिनों इमरजेंसी के दौरान हम सबकी जान सांसत में थी कि कहीं पकड़े न जाएँ। जबलपुर के जनवादी आंदोलन से जुड़े कई लेखक–पत्रकार, सलाखों के पीछे कर दिए गए। कई भूमिगत हो गए। चूँकि बाबूजी एडवोकेट थे तो उन्होंने एहतियात बरती और हमारे पास जितनी भी संदेहास्पद किताबें थीं उन्होंने आँगन में रखकर होली जला दीं। रात 3 बजे विजय भाई उत्तेजित मन लिए घर लौटे। आँगन का नजारा देख उनका धैर्य जवाब दे गया। हम अवाक और मौन उन किताबों को राख का ढेर होते देखते रहे और वह राख हमारे आँसुओं से भीगती रही। खबर थी कि उसी रात विजय भाई के दोस्त कलकत्ते में रविवार के संपादक एस. पी. यानी सुरेंद्र प्रताप द्वारा संपादित संजय गाँधी और इंदिरा गाँधी वाले रविवार के अंकों को भी जलाया गया था। एस. पी. चाहते थे कि विजय भाई कलकत्ता आकर रविवार सँभाल लें पर मैंने उन्हें सलाह दी कि मध्य प्रदेश हिंदी भाषी प्रदेश होने के कारण यहाँ पत्रकारिता की जड़ें गहराई तक हैं। हम चाय के दौरान या लिखते–लिखते सुस्ताने के दौरान इसी विषय पर चर्चा छेड़ देते। मैं चाहती थी तमाम हिंदी के अखबारों अमर उजाला, देश बंधु, दैनिक भास्कर, पंजाब केसरी, स्वतंत्र भारत में पत्रकारिता करूँ और अपनी कलम की तीखी धार से एक नई भाषा शैली को ईजाद करूँ। देशबंधु में ललित सुरजन थे, वे गंभीर चिंतक और स्वतंत्र पत्रकारिता के हामी थे। मेरे कई लेखों को उन्होंने देशबंधु तक पहुँचाया। मेरे लिखे लेखों में औरत को लेकर कई सवाल मँडराते। क्यों परिवार की मान–मर्यादा, शिष्टता की सीमा–रेखा लड़कियों को ही दिखाई जाती है, लड़कों को नहीं?

क्यों पिता भाई पति और बेटे की सुरक्षा के घेरे में वह जिंदगी गुजारे? क्यों सारे व्रत–उपवास, नियम–धर्म औरतों के जिम्मे? क्यों पति और पुत्र के कल्याण के लिए ही सारे व्रत–पूजा–अनुष्ठान? क्यों नहीं औरतों के लिए यह सबक। यह करो, यह मत करो, ऐसे उठो, ऐसे बैठो की संहिताएँ बस लड़कियों के जिम्मे? मुझे इस सबसे चिढ़ थी। मेरे अंदर इसके विरोध में गुबार भरता गया था और मैंने ठान लिया था कि मौका पाते ही मैं इस सब के खिलाफ अपनी कलम थामूँगी। उन दिनों मैं हर छोटे–बड़े लेखक को पढ़ रही थी। अहिंदी भाषी और विदेशी लेखकों को भी। मैं कई के लेखन के पक्ष में थी। कई के विरोध में। मैंने एक बड़ा सा रजिस्टर बना लिया था जिसमें मैं हर पढ़ी हुई किताब की समीक्षा करती थी। मुझे लगता था कहीं मैं आलोचक न बन जाऊँ। जो मैं बनना नहीं चाहती थी। मेरी दृष्टि में आलोचक मात्र दूसरों के लिखे को उधेड़ता, बिखेरता है। मुझे इस प्रवृत्ति से परहेज था। उन किताबों को पढ़कर कई बार मैं रोई थी। मुझे लगा अगर मैं समाज से जुड़ना चाहती हूँ तो मुझे अपनी वेदना से बाहर आना होगा। तब मैंने औरों से जुड़ना सीखा। मैंने पाया इस जुड़ाव का मजा ही कुछ और है। सुख ही कुछ और है। यह जुड़ाव जब रचना बनकर उभरता है तो कभी दस्तक दे कर, कभी दबे पाँव, कभी जान–समझ कर, तो कभी अनजाने ही, कभी एक ही पल में, तो कभी महीनों मैं चमत्कृत हो जाती हूँ। वह पल मैं किसी से बाँट नहीं पाती।

और फिर हुआ यूँ कि एस. पी. कलकत्ते से मुंबई धर्मयुग में बतौर पत्रकार आ गए और अपनी योग्यता के लिए उचित प्लेटफार्म की तलाश में पहले विजय भाई और फिर कुछ महीनों बाद मैं भी मुंबई आ गई। मुझे एक नई जमीन की तलाश थी जहाँ मैं अपनी वैयक्तिक अनुभूतियों को सामाजिक संदर्भ देकर सहयोग, साहचर्य और सहकारिता की वैकल्पिक नारी संस्कृति को लिख सकूँ। नारी विषयक वैचारिक अवरोधों के खिलाफ हल्ला बोल सकूँ। स्टेशन पर एस. पी. के साथ विजय भाई मुझे लेने आए।

'ये विजय दो महीनों से चप्पलें घिसता रहा, तुम्हारे लिए मकान तलाशने में। तब

जाकर अँधेरी में वन रूम किचन का फ्लैट किराए पर ले पाया।' मेरी आँखें छलक आईं थीं और मैंने पलकें झुका लीं थीं। वह वक्त था मुंबई में प्रगतिशील आंदोलन, इप्टा और ट्रेड यूनियन आंदोलनों का। कई नामी-गिरामी लेखक, फिल्मी गीत और संवाद लिखने को विभिन्न प्रदेशों से जुड़ आए थे। यहाँ टाइम्स ऑफ इंडिया ग्रुप अपने चरम पर था। जहाँ से निकलने वाली पत्रिकाओं से मुंबई की एक अलग पहचान बनती थी। पृथ्वी थिएटर, तेजपाल थिएटर में खेले गए तुगलक, हयवदन, सखाराम बाइंडर जैसे नाटक शो-पे-शो किए जा रहे थे। मुझे इस सब के बीच अपनी जगह बनानी थी। धर्मवीर भारती जी मुझे खूब छाप रहे थे। दिल्ली से हंस में राजेंद्र यादव ने मुझे खूब छापा और मार्गदर्शन भी किया। हर कहानी के लिए लिखते थे इसमें यह सुधार कर दो तो ए-वन हो जाएगी। कथादेश में भी मिश्र की साम्राज्ञी नेप्रनिटी और बंजारन पर लिखे मेरे लेख बहुत चर्चित हुए। कथादेश में मेरी लिखी फिल्म समीक्षा भी प्रकाशित हुई।

इसी दौरान मुझे उज्जैन का कालिदास सम्मान भी मिला। अब इसका प्रारूप बदल गया है लेकिन तब यह साहित्यकारों को भी दिया जाता था। एस. पी. समझाते- 'अब इतना कुछ तो पा रही हो फिर क्यों पत्रकारिता के पीछे पड़ी हो। पत्रकारिता की राहें बड़ी कठिन हैं।'

'मैं जबलपुर से कॉलेज की लेक्चररशिप छोड़ कर यहाँ इसलिए नहीं आई हूँ सुरेंद्र भाई कि पत्रकारिता छोड़ दूँ बल्कि मैंने तो पत्रकारिता में ग्रेजुएट भी कर लिया है।' उन्होंने मुझे गले से लगा लिया कहा -
'तुम्हें उस पर्वत तक पहुँचना है, जहाँ पत्रकारिता का नूर बिखर पड़ा है। उस नूर से आँखें चौंधिया मत लेना। उसे सहना।'

मैं नवभारत टाइम्स में बदस्तूर लिखने लगी। डेस्क वर्क मैं करना नहीं चाहती थी सो फ्रीलांस ही किया। बहुत कुछ किया -आर. टी. वी. सी. में कई कमर्शियल प्रोग्राम लिखे जो रेडियो, टीवी पर प्रसारित होते थे। लिंटास ज्वाइन किया। जहाँ कई जिंगल लिखे भी, कंपोज भी किए। विज्ञापन की दुनिया से जुड़ना पैसों की वजह से हुआ। मन खिन्न रहता था। यह तो मेरा मार्ग नहीं है। फिर विजय भाई का एक्सीडेंट हुआ। उनके घुटने की हड्डी चूर-चूर हो गई। नानावटी अस्पताल में अस्थाई प्लास्टर तो चढ़ा दिया गया पर ऑपेशन करके चाँदी की नी कैप लगवाना अनिवार्य हो गया। इतने रुपए कहाँ से आते? एस. पी. अपनी बेबसी पर लाचार थे।

'यार विजय तुम बिना नी कैप के चलोगे कैसे? चाँदी का नी कैप कहाँ से जुटाएँ? हजारों का खर्चा है।' फिर लंबा ऑपेशन हुआ। नी कैप के टुकड़े निकाले गए। विजय भाई बिना नी कैप के हो गए। एस. पी. उदास थे। मैं रो रही थी।

अरे रोती क्यों है? हम बिना नी कैप के ही चलने की आदत डाल लेंगे। क्यों एस. पी. ?

विजय भाई ने जितनी वीरता से ये बात कही उतनी ही हार मैंने और एस. पी. ने महसूस की। दिल्ली में इप्टा द्वारा खेले गए नाटक आखिरी शमा को अभिनीत कर और आर टी वी सी ज्वाइन कर रमेश श्रीवास्तव अभी मुंबई में सेटल होने की कोशिश में ही थे कि मेरी भाभी की इच्छा से (रमेश उनके मायके की तरफ के रिश्तेदार थे) साहित्यिक तबके ने मेरा घेराव कर उनसे मेरी शादी करा दी। रमेश बेहतरीन कलाकार थे। गायन, वादन, अभिनय, संवाद और ग़ज़ल, गीत लिखने में पारंगत थे। भारती जी ने मेरी शादी और वर्मा की जगह श्रीवास्तव होने की खबर धर्मयुग में छापी। एस. पी. बरस पड़े -
'यह क्या किया। तुमने अपनी ही पहचान खुरच-खुरच कर मिटा डाली।'

मेरे पास जवाब न था। हाँ भूल तो हुई थी मुझसे। अब मैं इस बदलाव को पुराने सिरे से जोड़े रखने की जद्दोजहद में कमर कस कर जुट गई। मैंने अपनी पहचान फिर से बनाई। भारती जी ने धर्मयुग में मुझसे लगातार दो वर्षों तक अंतरंग कॉलम लिखवाया। नवभारत टाइम्स में विश्वनाथ जी ने मानुषी कॉलम भी तीन वर्षों तक लिखवाया। दैनिक संझा लोकस्वामी में मैं दो वर्षों तक साहित्य का पन्ना संपादित करती रही। ललित पहवा जब मेरी सहेली पत्रिका लांच कर रहे थे तो संपादक के पद का ऑफर लेकर खुद मेरे घर आए थे। पर मेरी सहेली का कलेवर मेरे मिजाज के खिलाफ था। सो हो न सका मुझसे। मुंबई के साहित्यिक माहौल से जुड़कर दोस्तों का दायरा बढ़ता गया। पर यहाँ कॉफ़ी हाउस न था जहाँ बौद्धिक शामें हम गुजार पाते। चित्रा मुद्गल के घर खूब जुड़ाव महसूस होता था। वे मेरी अंतरंग दोस्त थीं। वहीं कई लेखक इकट्ठे होते। अवध नारायण मुद्गल सारिका के संपादक थे।

वे मेरी तपस्या के दिन थे। मेरा बेटा हेमंत पैदा हो चुका था और मैं बेहद खुशगवार अनुभवों से गुजर रही थी। मेरी जचकी उज्जैन में हुई थी। जहाँ अम्मा-बाबूजी जबलपुर छोड़कर जा बसे थे। हेमंत के पैदा होते ही मैंने सारी कायनात को अपनी मुट्ठी में पाया और मैं हेमंत को पालते हुए स्वतंत्र पत्रकारिता और लेखन में रमी रहती।

लेकिन इस सबके बावजूद जो मैं चाहती थी वह हो नहीं रहा था। लिहाजा मैं अवसाद ग्रस्त हो गई। और धीरे-धीरे अपना स्वास्थ्य खोने लगी। मेरी दोनों ओवरीज में सिस्ट पड़ गई और लगातार रक्तस्राव से मैं बेहोश हो जाती। डॉक्टर ने कैंसर की संभावना जताई। लिहाजा मैं लंबे-लंबे थका देने वाले टेस्ट्स से गुजरने लगी। फिर लंबा ऑपेशन हुआ। मेरा शरीर निरंतर छीजने लगा। टाँके चीभते रहते। ढेरों दवाइयाँ, इंजेक्शन, दर्द, पीड़ा उफ! मेरा मन बुझ गया। लेखनी थम गई और मुझे लगा मैं जिंदगी से हार गई हूँ। सब कुछ इतना जानलेवा होगा सोचा न था। कतरा-कतरा दर्द बाहर का भी, भीतर का भी कलेजे को बींधता रहा। मैं मर रही थी। मैं मरती रही। लगातार चार सालों तक मैंने अपने अंदर का वनवास सहा। और एक दिन अचानक मेरे सामने था मेरा कहानी संग्रह -'बहके बसन्त तुम' मेरी लेखिका बहन प्रमिला वर्मा मुस्कुराती खड़ी थी। जैसे कह रही हो कि -'तुम्हारी जैसी जुझारू लड़की हार मान गई! उठो तुम्हें हेमंत के लिए जीना है। तुम्हें साहित्य के लिए जीना है।'

मैं अपने पहले कहानी संग्रह को देख रो पड़ी। ये आँसू उन खुरदुरी घटनाओं को मिटाने के लिए थे जो मेरे जीवन की रुकावटें थी और मैं उठ खड़ी हुई। मेरी पहली उठान हेमंत के लिए थी। मुझे उसे लायकवर इंसान बनाना था। इसके लिए घर में हम दोनों की कमाई पर्याप्त न थी। मैंने बी. एड. किया और बिरला पब्लिक स्कूल मुंबई में अध्यापन करने लगी। मैंने हेमंत को लायकवर इंसान बनाने में एड़ी चोटी का पसीना एक कर दिया। आज मैं इस बात को गर्व से कह सकती हूँ कि मैं हेमंत की माँ भी थी पिता भी।

मेरी दूसरी उठान मेरे लेखन के लिए थी। उन दिनों मुंबई से शिक नामक पत्रिका निकलती थी। जिसके संपादक रवींद्र श्रीवास्तव थे। उन्होंने शिक में मेरा लघु उपन्यास- 'टुकड़ा-टुकड़ा जिंदगी के साथ' धारावाहिक छापा फिर वे दिल्ली साप्ताहिक हिंदुस्तान में चले गए। उन्होंने मुझे साप्ताहिक हिंदुस्तान का मुंबई में ब्यूरो चीफ बना दिया। मैं दिल्ली के दैनिक वीर अर्जुन की भी ब्यूरो चीफ थी। पर जब भी लगता है कि जिंदगी रास्ते पर आ गई है, कोई न कोई हादसा हो जाता है। विजय भाई नहीं रहे। 48 वर्ष की अल्प किंतु अविस्मरणीय जिन्दगी जीकर वे चले गए हृदय गति रुक जाने के कारण।

बाबूजी के बाद यह दूसरा झटका था। मैंने खुद को अनाथ पाया। ईश्वर के अन्याय पर मैं थर्रा उठी थी। सँभलने में महीनों लगे। विजय भाई के बाद आगरा (दयालबाग) में बिल्कुल एकाकी जीवन गुजार रही अम्मा को मैंने सँभाला। हालाँकि वे उस उम्र में भी अपनी कर्मठता बरकरार रखे थीं फिर भी उनके खर्चों, जरूरतों में मैंने कभी कोई कमी नहीं आने दी। वे बचपन से ही मुझे अपना बेटा कहती थीं। उनकी इच्छा थी कि मैं ही उन्हें मुखाग्नि दूँ और मैं ही उनकी अस्थियाँ गंगा में प्रवाहित करूँ। उनकी यह सोच आधुनिक समाज में एक ज्वलंत उदाहरण है। उनका अस्थिकलश लेकर जब मैं बनारस के मणिकर्णिका घाट में कमर-कमर तक पानी में खड़ी थी तो मेरे सब्र का बाँध टूट गया था- 'अम्मा तुम न कहती थीं कि मैं तुम्हारी बेटी नहीं बेटा हूँ। आज मैंने अपना अंतिम कर्तव्य पूरा किया।'

बनारस की वह सुबह गवाह है मेरे आँसुओं की और मेरे संकल्प की।
इस बीच कितना कुछ घटित हो गया। अमृतराय, परसाई जी, एसपी नहीं रहे। (समाचार चैनल आजतक में एस. पी. का वाक्य मिलते हैं कल, देखते रहिये आज तक अभी भी कानों में गूँजता है) सब एक-एक कर छूटते चले गए। और चला गया मेरा हेमंत भी। अपनी माँ को इस दुनिया में अकेला छोड़कर। है कोई शब्द इस पीड़ा के लिए? मैं तो अपनी नियति में खाएँ, ग्रहों को लिखा कर ही नहीं लाई थी। दूसरों का शाप जो ढोना था मुझे। रमेश अशक्त थे। बीमार थे। पहले उन्हें ब्रेन हेमरेज हुआ फिर लिवर सिरासिस और अंत में कैंसर। महँगा इलाज, दवाइयाँ सब अपने बलबूते पर कर रही थी।

मैं उनके इलाज के लिए दर-दर भटकती रही। उन्हें स्वस्थ करने का हर संभव प्रयास किया। जिसने इलाज के लिए जहाँ ले जाने कहा ले जाती रही। पहले औरंगाबाद फिर ग्वालियर फिर लखनऊ फिर गाँधीनगर। ताज्जुब होता है न जाने कैसे लोग ऐसा सोच लेते हैं और मैं महामूरख, अंधे फैसले करने वाली। जैसे भटकाव मेरी नियति शिला पर गहरे खुदा है। अपने आप से सवाल, सौ-सौ बार सवाल कि क्यों गई औरंगाबाद? आई क्यों ग्वालियर?

6 तारीख ने लिया भी दिया भी। 6 सितंबर को जेजेटी यूनिवर्सिटी में कोऑर्डिटर की नौकरी ज्वाइन की और 6 मई को रमेश की मृत्यु हो गई। मैंने अंतिम समय तक उनका साथ निभाया। उनके दाह संस्कार से लेकर अस्थीपुष्प विसर्जन, हवन, तेरहवीं और बरसी के सारे अनुष्ठान मेरे ही हाथों हुए। उनके जीवन में केवल मैं थी जिसने सदा उनका भला चाहा, उनके प्रति समर्पित रही पर यह बात वे समझ नहीं पाए। न जाने क्यों। लेकिन किन्हीं मायनों में रमेश की मृत्यु मुझे भारी पड़ गई।

जब हेमंत गया था तो मेरे साथ सब की सहानुभूति थी। सब मुझे हर तरह की मदद देने को उतावले रहते थे। अब मदद के मायने बदल गए। सहानुभूति के फलसफे बदल गए। अब मेरी ओर उठे मदद के हाथ मुझसे कुछ और चाहते थे। 5 लंबे वर्षों की बीमारी में सूख कर काँटा हो गई देह लिए रमेश बिस्तर पर पड़े कहीं नजर ही नहीं आते थे लेकिन फिर भी उनका वजूद था जो मुझे सुरक्षा के घेरे में लिए था। वह घेरा टूट चुका था और . . .

दीवार क्या गिरी मिरे खस्ता मकान की,
लोगों ने मेरे सहन में रस्ते बना लिए।

कुछ साहित्यकार मेरे घर रोज आने लगे। अपनी पत्नी के रूखे व्यवहार का दुखड़ा रोने लगे। नाम लेकर क्या करूँगी। मेरे इस ऐलान से घर ही टूटेंगे उनके। उनमें एक पत्रिका के संपादक, एक मारवाड़ी लेखक, एक अब विदेश जा बसे मौकापरस्त आत्ममुग्ध लेखक, एक मंचों के प्रतिष्ठित कवि जो अब इस दुनिया में नहीं हैं, एक मुझसे 20 वर्ष बड़े कवि कि मैं उनकी बुढ़ापे की लाठी बनूँ। एक फिल्मों के संवाद लेखक, एक डबिंग आर्टिस्ट सब बीवियों से ऊबे हुए लेकिन फिर भी शौकीन मिजाज। एक तो रमेश की फुफेरी बहन के पति यानी मेरे नंदोई ही थे। कोई मुझे घर खरीद कर देने का प्रस्ताव रख रहा था तो कोई मौज मस्ती का। घृणा हो गई मुझे उन सब से। तुरंत छोटे भाई रमेश वर्मा को नागपुर पत्र लिखा। सब बताया, कहा तुम्हारे घर के कोने में पड़ी रहूँगी। अपना खर्चा पानी भी दूँगी बुला लो मुझे। पर निराशा हाथ लगी। मैं अवसाद से घिरती गई। नींद की गोली खाकर ही नींद आती।

क्या करूँ इस कलम का। उस आग का क्या करूँ जो मेरे मन को घेर रही थी और उसकी तपिश से मेरा रोम-रोम जल रहा था। मेरे हाथों से वक्त फिसल रहा था। शब्द दिमाग से फिसल कर हालात के गर्त में समाते जा रहे थे। हे प्रभु यह कौन सी आग पाल ली मैंने। जिसमें न तेरी रहमत है न औरों की दुआ। ऐसा क्यों होता है। एक ही लम्हे में आबाद घर वीराने में बदल जाता है। अपने हिस्से की धरती और आकाश के साथ रहना मेरा ख्वाब था जो मेरे पैरों तले से और सिर के ऊपर से सरक रहा था। औरत होने की सजा मेरे लिए मुकर्रर थी। पर मैंने उस सजा को भुगतने से इंकार कर दिया। मेरे अकेलेपन को बाँटने, उसे गुलजार करने की आठ-

नौ लोगों की मर्दानी सोच को मैंने पास फटकने नहीं दिया। ऐलान कर दिया कि सिर्फ और सिर्फ मेरा अकेलापन ही मेरा साथी है। जिसमें इन मतलब परस्तियों की कोई जगह नहीं है और मेरी कलम जो हमेशा से मेरे लिए मानीखेज रही, चल पड़ी। मैंने खुद पर कहानी लिखी। मैं खुद उस कहानी में तेजी से उठी। हौसले बुलंद हुए। कहानी की नायिका एक बवंडर से गुजरती है। विषम हालात में तय नहीं कर पाती कि अकेले जीने का साहस करे या रिश्तेदार के साए में दुबक कर अपना वजूद खो दे। वह फैसला करती है कि अकेले जिएगी। इस कहानी का शीर्षक था– 'फिर आँधियों को मेरा नाम और पता दे दे।' यह कहानी रमणिका गुप्ता ने अपनी पत्रिका संघर्षरत आम आदमी में छापी। उन्होंने पुस्तिकाकार रूप में चार खंडों में महिला रचनाकारों की कहानियाँ के अंतर्गत इस कहानी को स्थान दिया। यह कहानी बहुत चर्चित हुई। कई भाषाओं में इन खंडों का अनुवाद हुआ। मराठी में अनुवाद मेरी मित्र डॉ. प्रज्ञा शुक्ला ने किया। इस कहानी ने मुझे नई उठान दी। जिंदगी की चुनौतियों का सामना करने की हिम्मत दी। मैंने हर चुनौती का सामना किया। मैं मानती हूँ कि इन परिस्थितियों से बाहर आने के लिए मुझे एक लंबी लड़ाई लड़नी पड़ी।

मेरे उपन्यास 'लौट आओ दीप शिखा' का लोकार्पण विश्व पुस्तक मेले में होना था। चित्रा जी ने अपने अध्यक्षीय वक्तव्य में कहा कि –'संतोष का जीवन दूसरों के लिए प्रेरणा है। उसने नए लेखकों को प्रमोट करने का बीड़ा भी विश्व मैत्री मंच के द्वारा उठाया है। संतोष जिस दिन खुद पर किताब लिखेगी वह दिन उसकी पूर्णता का दिन होगा।' भावातिरेक में मैं उनसे लिपट गई। उन्हीं ने प्रेरणा दी आत्मकथा– 'मेरे घर आना जिंदगी' लिखने की।

26 अक्टूबर 2017 भोपाल के लिए अब लाद चला बंजारा। बिल्कुल अनजाना शहर रिश्तेदारों में बस विजयकांत जीजाजी सभी की जुबान पर बस एक ही बात कि क्या जज्बा है आपका। ऐसा कदम उठाने को तो पुरुष भी 10 बार सोचेगा। क्या करूँ फितरत ही ऐसी पाई है। तभी तो पंजाबी लेखक सैली बलजीत ने मुझे लौह महिला कहा था। मेरे साहित्यकार परिवार ने सदा मेरा हौसला बढ़ाया।

मेरी जिंदगी तीन काल खंडों में बँटी है और इन काल खंडों का मेल ही मेरा इतिवृत्त है लेकिन इन काल खंडों में से मैंने उस समय को भूल जाना चाहा है जो मेरी लंबी आत्मव्यथा का समय था। हालाँकि यादों के शिलालेख में वही समय गहरा खुदा है जो मैंने सहा है। झेला है। कह तो आसानी से दिया कि उस व्यथा भरे समय को भूल जाऊँगी। नहीं लिखूँगी पर फिर लिखूँ क्या! मेरी पूरी जिंदगी व्यथा से ही तो भरी रही।

मैं 27 अक्टूबर को भोपाल आई और 29 अक्टूबर को ही बड़ा सा ब्रेक मिल गया। राजीव शर्मा द्वारा स्थापित नवनिर्मित संस्था प्रणाम मध्यप्रदेश का प्रथम महासम्मेलन राज्य संग्रहालय में संपन्न हुआ जिसके पर्यटन सत्र में मैं मुख्य अतिथि थी। यह संस्था मध्य प्रदेश की हस्तकला, शिल्प कला, चित्रकला और पर्यटन को बढ़ावा देने का कार्य करेगी। कार्यक्रम के अंतिम सत्र यानी कवि सम्मेलन में मुझे जहीर कुरैशी जैसे मशहूर शायर के संग गजलें कहने का मौका मिला। श्रोताओं की खूब तालियाँ मिलीं और गजलें सुनाने की फरमाइश भी हुई। राजेश शर्मा ने समय की कमी को देखते हुए कहा कि– 'संतोष जी को तो हम किसी दिन जी भर के सुनेंगे।' जहीर कुरैशी ने कहा कि –'आप तो भोपाल में हमारे लिए चुनौती बन कर आ गई हैं।'

मेरे आगे जैसे कई पल खड़े मुस्कुराने लगे। चुनौती उनके लिए ही नहीं मेरे लिए भी थी। मुझे बेहतर लिखना था और और बेहतर लिखना था। भोपाल के साहित्यकारों से मिला सम्मान, प्रेम और आत्मीयता मेरी धरोहर है।

मैंने अपने एकांत को रचनात्मक चैनल में डाल कर मथ डाला है। आखिर जीवन और दर्शन ने हमें यही सकारात्मक खेया दिया है। हमारे चलने–फिरने, हँसी–खुशी, काम–धाम के नीचे पता नहीं कितने खंडहर छिपे होते हैं क्या हम टटोल पाते हैं उन्हें। मेरे सरोकार, मेरी प्रतिबद्धता जन और जीवन के प्रति है। मैं मानती हूँ कि लेखन एक ऐसा सफर है जहाँ अतीत और भविष्य दोनों मेरे हमसफ़र हैं। मैं तमाम वैज्ञानिक प्रगति, भूमंडलीकरण, बाजारवाद, छिछली राजनीति, दृश्य, श्रव्य मीडिया, इंटरनेट पर साहित्य की चुनौतियों के सामने जिरह बख्तर बाँधकर खड़ी हूँ और जीवन में विश्वास बरकरार रखती हूँ। इसी विश्वास के बल पर 1998 से विजय वर्मा कथा सम्मान और 2001 से अब तक हेमंत स्मृति कविता सम्मान के सफल आयोजन के पश्चात् अब इसे अंतर्राष्ट्रीय स्वरूप प्रदान करने की मुहिम में जुटी हूँ। माँ सुरतवंती वर्मा समाज सेवा पुरस्कार भी वर्ष 2022 से आरंभ कर दिया है।

एक बार मुंबई से उखड़ कर पुन: मुंबई में आ बसना फिर से मुंबई से उखड़कर औरंगाबाद चले जाना, औरंगाबाद से उखड़कर भोपाल आ बसना मात्र मेरी संकल्प शक्ति ही थी। अब मैं स्थाई रूप से भोपाल में एल्डर केयर सेंटर में रहती हूँ। एक तरह का वृद्ध आश्रम। जहाँ पर मेरी देखभाल बेहतर तरीके से होती है। हालाँकि यह पेड है लेकिन मैं जितना देती हूँ सेंटर की दी सुविधाओं और सेवा भाव के आगे वह बहुत कम है। मैं खुद के बुने अभेद्य कवच को धारण किए हूँ जिसमें किसी का भी प्रवेश वर्जित है। अब मैं हूँ और अछोर फैली मेरी तन्हाई और मैं इस तनहाई को एंजॉय करती हूँ क्योंकि जानती हूँ यही जीवन की सच्चाई है। चाहती हूँ हेमंत की यादों को और और जियूँ। अपनी अतृप्ति को तृप्ति में बदल डालूँ। भले ही मुझे कदम दो दुनियाओं में एक साथ रखने पड़ रहे हैं। एक यथार्थ की दुनिया दूसरी सपनो और कल्पनाओं की दुनिया।

. . . पर . . .

जामे हर जर्रा है सरशारे तमन्ना मुझसे,

किस का दिल हूँ कि दो आलम से लगाया है मुझे...

फ्लैट नं. 221, ऐक्या फाउंडेशन,
ए 163, महाकाली सोसाइटी, त्रिलंगा,
भोपाल - 462016 (म.प्र.)
मो.- 9769023188

महानायक इंद्र

(वेद-कथा)

- प्रमोद भार्गव

जन्म – 15 अगस्त 1956।
जन्म स्थान – शिवपुरी (म.प्र.)
शिक्षा – स्नातकोत्तर।
रचनाएँ – विभिन्न विधाओं में सात पुस्तकें प्रकाशित।
सम्मान – डॉ. धर्मवीर भारती सम्मान सहित अनेक सम्मानों से सम्मानित।

. . . सभ्यता के प्रतीक बना दिए वस्त्रावरण के चेतना में आते ही मनु पलटे। उनकी सुस्त तंत्रिकाओं में एकाएक चेतना स्फुरित हुई और पलक झपकते ही, लंबी डगें भरते, हिमखंडों को लाँघते, मनु झरबोरियों के उस भूखंड पर थे, जहाँ हिमखंड से नौका के टकराने से वे छिटककर इस भूखंड पर आन पड़े थे और गिरते ही मूर्छित हो गए थे। मनु ने माटी से लिथड़ा उत्तरीय कमर से लपेट लिया। असभ्यता के प्रतीक बना दिए गए चंद अंगों पर आवरण डाल लेने भर से मनुष्यता भला कैसे सभ्यता के संस्कार ग्रहण कर लेती है? तब मनु ने यकायक सोचा, इस असभ्यता को ढँकने के लिए गहराई तो मात्र डेढ़-दो हाथ चाहिए थी, लेकिन हम दुष्ट मानवों और दानवों ने भोग के लिए पृथ्वी की अनंत गहराइयों को खाई में बदल दिया। वरना, हमें वस्त्रों के लिए कपास, पेट के लिए अनाज, डेढ़-दो हाथ की गहराई से ही मिल जाते हैं। प्यास के लिए पानी तो नदी, जलाशय और झीलों में धरा की सतह पर ही उपलब्ध हैं। किंतु आधुनिक और विज्ञान-सम्मत ज्ञान से सुख-सुविधाओं के लिए, प्रकृति का विनाश करके जो विकास कार्यों का सिलसिला आरंभ हुआ और आसान जीवन व्यतीत करने के लिए जो उपकरण बने, उन्होंने प्रकृति के संरक्षण से जुड़े सनातन ज्ञान को किनारे कर दिया। अथर्वा ने अग्नि की खोज और फिर उसकी उपलब्धता के सरल उपकरण बनाकर विश्व-चेतना को ही चमतकृत कर दिया था। उसने वृक्षों से तो आग आविष्कृत की ही, जल, सूर्य और धरती के गर्भ से भी पुरिष्य अग्नि (प्राकृतिक गैस) निकाल लाने का कौतुक कर डाला। इन विधियों से जो औद्योगिक और प्रोद्यौगिक विकास हुआ, उसने प्राकृतिक संपदा के दोहन के फलस्वरूप विनाश की रचना कर डाली। पर्यावरण और पारिस्थितिकी तंत्र अंतत: गड़बड़ा गए और प्रकृति में असंतुलन का परिणाम प्रलय के तांडव के रूप में देखने को यह अभागा, असहाय मनु जीवित रह गया।

अब लाचार मनु इस विडंबना की विकट स्थिति में किसे याद करे और किसे भूले? सच्चाई तो यह शेष है कि इस संकट की घड़ी में मनु को वे मंत्र और ऋचाएँ भी याद नहीं आ रहे हैं, जिनमें प्रार्थना तो प्रकृति की है, अनाम-अज्ञात ईश्वर की है, नैतिक और सत्यनिष्ठ बने रहने की है, परंतु मनुष्य ढलता विपरीत आचरण में रहा है। नैतिक-अनैतिकता के द्वंद्व से रहा है। इस द्वंद्व में जिन मनु को कोई ऋचा स्मरण नहीं आ रही थी, उन्हें वनवासियों की एक लोक-कथा स्मरण हो आई।

इस कथा में उल्लेख है कि जब अनादिकाल में पहला आदमी पैदा हुआ तो भगवान ने उसे बारह हाथ लंबा और तीन हाथ चौड़ा कपड़ा दिया। तब वनवासी बोला, 'मुझे नौ हाथ ही पर्याप्त है।' और उसने तीन हाथ लंबा कपड़ा फाड़कर भगवान को वापस कर दिया।

देव, शिव की सरल निश्चलता से भी कहाँ सहमत थे? इस असहमति में उनका अनार्य होना भी एक कारण था। देव ऋषियों की भी यही मन:स्थिति थी। अतएव उन्होंने भी असंचयी भाव के शिव के साथ पक्षपात किया। यहाँ तक कि उनकी हत्या के भी प्रयास होते रहे हैं। कथित सभ्यता एवं असभ्यता के प्रतिमानों से परे, इस प्राकृतिक अवस्था में मनु को ऋषियों और ऋषि पत्नियों के बीच घटी घटना स्मरण हो आई। एक बार बड़ी संख्या में ऋषि-मुनि एकत्रित हुए। वे अपनी पत्नियों के साथ यज्ञ कर रहे थे। तभी नंग-धड़ंग, अक्खड़ शिव ने यज्ञ स्थल के निकट से गमन किया। ऋषि पत्नियाँ शिव को दिगंबर अवस्था में देख, काम सुख भोगने की कामना से उत्तेजित हो गईं। सभ्य समाज की स्थापना के लिए स्थापित की जा रही संहिताएँ व्यर्थ सिद्ध हुईं। ऋषि पत्नियाँ बिना किसी सोच-विचार किए, भोग की उत्कट लालसा में शिव टोली के पीछे हो लीं। अनायास निर्मित हुई इस अमर्यादित स्थिति से ऋषि आंदोलित हो गए। उनका पुरुषोचित अहंकार हुंकार उठा। उन्होंने यज्ञ की महिमा व अलौकिक शक्ति से एक बाघ, एक विषैला सर्प और एक क्रूर राक्षस शिव के दमन के लिए पीछे दौड़ा दिए। अब शिव तो अनंत शक्तियों के रचयिता थे। उन्होंने बाघ को मारकर, खाल उतारी और कमर में बाँध ली। उनकी

यह उदात्त पहल प्रकृति प्रदत्त अवस्था से सभ्यता की ओर प्रस्थान का आरंभ बिंदु था। शिव ने सर्प को पकड़कर मंत्र से वशीभूत किया और गले का गहना बना लिया। यह प्रकृति के जीवों के संरक्षण की उत्कृष्ठ व उपयुक्त पहल थी। फिर शिव ने राक्षस को दबोचा और भूमि पर पटक दिया और वे उसकी पीठ पर चढ़कर नृत्य करने लगे। इसी नृत्य की दृश्यमान स्थिति को नटराज नृत्य कहा गया। वस्तुत: यह अहंकार का परित्याग कर सरलता से जीवन जीने का संदेश था। सत्य, चित्त और आनंद का एक रूप है सच्चिदानंद! परंतु देव तो संग्रह में लगे थे। राज्य सत्ताओं के विस्तार और उनकी सुरक्षा के लिए भीषण आयुधों के निर्माण में लगे थे। यहाँ तक की अमरावती के स्वामी इंद्र ने मनु की हत्या के लिए महर्षि दधिचि की हड्डियाँ तक माँग ली थीं। यह अपनी स्वार्थपूर्ति के लिए एक ऐसा धतकर्म था, जिसने आत्मा से मनुष्यता की चिंता बाहर खींच ली थी। देव संस्कृति वैभव और विलासिता के लिए उत्तरोतर मर्यादाएँ लाँघ रही थी। मानवाधिकारों का हनन बढ़ रहा था। जीवन मूल्यों का हश्र बढ़ रहा था और निराशा के भँवर गहरा रहे थे। संभवत: इसी चारित्रिक अधोपतन का कारण रहा कि परमसत्ता का क्रोध प्रलय बनकर जीव-जगत पर टूट पड़ा।

मनु ने स्वयं को धिक्कारते हुए सोचा, अब देव प्रतिनिधि के रूप में, मैं एक अकेला, अभागा जीवित रहा मनु क्या कर लेगा? प्रकृति और जीवन की यह टूटी लय कैसे जुड़ पाएगी? क्या विडंबना है कि जो देव और दानव मामूली अधिकार के लिए हिंसक कोलाहल वातावरण में भर देते थे, इस महाविनाश के सन्नाटे में दूर-दूर तक उस कोलाहल की गूँज कान लगाकर भी सुनाई नहीं दे रही है।

तथापि लोक में प्रचलित उपदेशों से सबक कौन लेता है? न्याय, समता और अपरिग्रह की उद्देश्यपरक शिक्षाओं की वनिस्वत, ऐसी शिक्षा प्रणाली थोप दी, जो केवल सत्ता-संचालकों के हित साधने वाली है। वह भी केवल देव भाषा संस्कृत में ही दिए जाने के प्रावधान निहित कर दिए गए। वैभवशाली राज्य सत्ताओं ने लोक के इन उपदेशों को कभी प्रासंगिक नहीं माना। अपितु उपेक्षा की। ज्ञान परंपराओं को नकार दिया। शायद इसी उपेक्षा का परिणाम, प्रकृति की यह तांडवी विभीषिका है।

निरीह मनु सोच रहे हैं, व्यक्ति के अंतर्मन में कहीं करुणा के भाव प्रच्छन्न अवश्य होते हैं। जो जीवन की नश्वरता का अनुभव होते ही फूटने लगते हैं। अतएव समानता के सोच की जो चेतना इस विकल काल में जागृत हो रही है, पहले हुई होती? तब मनु शासकों को पृथ्वी के अकूत दोहन पर अंकुश लगाने के कुछ नीतिगत उपाय कर पाते? तब विकरालता की यह व्यापकता पाँच सौ योजन के व्यास में क्या विस्तृत हुई होती? ब्रह्मावर्त में जिस विशाल हिमाशिला के गिरने की सूचना रोहित ने दी थी, संभवत: इसी का पर्याय रहा कि दृषद्वती नदी तंत्र महानद में बदलकर सरस्वती में एकरूप हो गया। परिणामस्वरूप लाल सागर की लहरें, भूमध्यसागर की लहरों में घुलमिल गईं और पाँच सौ योजन क्षेत्र में जल का जलजला छा गया। इस प्लावन में लगभग तीन हजार सात सौ पचास हाथ (करीब छ: हजार फीट) की ऊँचाई तक के शैल शिखर डूब गए थे। मनु की नाव जल प्रवाह ने जहाँ उछाल दी थी, वह स्थान जरूर चार हजार हाथ की ऊँचाई से कहीं ज्यादा रहा होगा। तभी तो मनु बच पाए।

चिंता या चिंतन मनुष्य की उन्नति की पहली सीढ़ी है। चिंतन समूह के लोगों के व्यवस्थित जीवन-यापन के उपाय तलाशता है, परंतु अब जब लोगों के समूह ही डूब गए तो चिंतन किसलिए? एक व्यक्ति के एकांगी जीवन के लिए समावेशी चिंतन की भला क्या आवश्यकता है? कल तक तो मनु स्वयं भोग की संस्कृति के पक्षधर थे। भोग के संसाधन जुटाने के लिए, दूसरों के हितों का अतिक्रमण कर लेना कोई चिंता का विषय नहीं था। विरोध करने पर आक्रमण कर दिया करते थे। उसकी संपत्ति तो संपत्ति स्त्रियाँ तक हड़प लिया करते थे। देव और आम लोगों में विभाजन स्पष्ट था। कमजोरों और निहत्थों पर शासन करना ही देवों के प्रभुत्व का पर्याय बन गया था। मनु स्वयं इंद्र की इन्हीं असंगत नीतियों के निष्ठावान अनुयायी थे। तत्पश्चात् भी वे इस निर्जन एकांत में तात्कालिक विध्वंसकारी मूल्यों का मूल्याकंन कर रहे हैं, किसलिए? सत्ता, शाषक और जनता के बिना इन मूल्यों का भला क्या अर्थ?

मनु ने सोचा, जब प्रलय ने पृथ्वी के तीनों लोकों के देव, दानव और अन्य लोगों को लील ही लिया, तब साधारण मनुष्यों के लिए मनुष्यता की सोच किसलिए? किसके लिए सभ्यता? अंतर्मन के निविड़ से घिरे मनु के मन-मष्तिक में प्राकृतिक रूप से उपलब्ध रसायनों का घोल क्रियाशील होकर कुछ ऐसा द्वंद्व उभार रहा था, जो उनके देवत्व को परिष्कृत कर मनुष्यता के लक्षणों का बोध करा रहा था। परंतु वसुंधरा पर मानवों के कोई समूह ही शेष नहीं रह गए हैं तो फिर मनुष्य अथवा मनुष्यता के संस्कार किसके लिए? निरुद्देश्य एकाकी जीवन का क्या हेतु? तब क्या एक लंबी छलाँग मारकर

उफान मारती इन्हीं लहरों में समा जाऊँ? जो मेरे देखते-देखते ही समस्त जीव-जगत को ग्रस चुकी हैं। किससे करूँ प्रश्न? कौन देगा उत्तर? वे सब जीव-जंतु मारे गए, जो मूक होते हुए भी बड़ा संबल थे। मनुष्यों की बातों और संकेतों को न केवल समझते थे, वरन् उसी अनुसार अनुशासित आचरण भी करते थे। सहलाने-पुकारने पर प्रगल्भ हो उठते थे। इस तांडव ने सभी ज्ञानपिपासाओं और कौतूहलपूर्ण वृत्तियों को समझने-बूझने पर विराम लगा दिया। उस इतिवृत्त और काल-गणना को भी कौन स्मरण रखेगा, जो पूर्वजों के संघर्ष और प्रकृति के रहस्यों को जानने के माध्यम रहे हैं। पृथु, प्राचीनबर्हि, प्रचेता, दक्ष, दिति, अदिति, पिता विवस्वान सूर्य, माँ सरण्यू, भाई यम, नासत्य, दसत्रु (अश्वनी कुमार) बहन यमी, इंद्र किसी के भी जीवित रहने के दूर-दूर तक कहीं कोई निशान नहीं! इस महाशून्य में देव जाति के अवशेष के रूप में मैं अकेला कैसे जिऊँगा? किसी भी जाति का गौरवशाली अतीत तब महत्त्वपूर्ण रह जाता है, जब उसका वर्तमान तो उल्लेखनीय हो ही, भविष्य रचने वाली पीढ़ी भी सनध्य हो? प्रकृति की एक चक्रीय चाल ने परिवार, समाज और राज्य की समस्त व्यवस्थाएँ ध्वस्त कर दीं।

पीड़ित व द्रवित मनु सोच रहे हैं, इस अतीत को याद करते हुए, इस आस में जिऊँ, घूमूँ-फिरूँ, भटकूँ कि संभव है, इस दुर्भाग्यशाली मनु की तरह कुछ और लोग भी बचे हों, कुछ समुदाय भी बचे हों, स्त्रियाँ भी बची हों? इस निर्जन भूखंड में कोई तो ऐसा प्राणी हो, जिससे वार्तालाप हो सके। अतीत के अनंत सुखों और वर्तमान के दुर्दांत दुखों पर प्रलाप हो सके। इस अतीत की व्यथा और भविष्य की निराश उद्विग्नता के बीच मनु के कानों में किसी पक्षी के पंखों के फड़फड़ाने की आवाज गूँजी। मनु ध्वनि की ओर पलटे। देखा, एक पक्षी तीव्रता से आया और जल सतह में चोंच मारकर मछली को दबा ले उड़ा। मनु के खिन्न मान ने इस घटना से साक्षात्कार करते हुए अनुभव किया, प्रकृति की गति बदल रही है, जिस ध्वनि की प्रतिध्वनि कुछ समय पहले तक सुनाई नहीं दे रही थी, उसकी तरंगें कानों तक पहुँचने लगीं हैं और जब पक्षी शेष है, मछली शेष है, तब अवश्य यंत्र-तंत्र मनुष्य समेत अन्य प्राणी भी शेष होंगे? उनके शरीर में जिजीविषा संचरित हो उठी। सोचा, पक्षी की भूख के आहार हेतु जब ईश्वर ने मछली के रूप में जीवित भोजन शेष छोड़ा है तो जो भी प्राणी बचे होंगे, उनके शरीर की समस्त भूखों के साधन भी अवश्य सुरक्षित होंगे। मनु स्वयं से संवाद कर रहे हैं-मेरे पूर्वज ऋषियों ने 'भूख' भी क्या दो अक्षरों का विलक्षण और व्यापक अर्थ वाला शब्द गढ़ा है। 'भूख' यानी भूगोल, 'ख' अर्थात् खगोल, अतएव धरा से लेकर अनंत आकाश तक भूख ही भूख पसरी है। वास्तव में भूख ही जीवन की उद्दाम जिजीविषा है। शरीर में प्रच्छन्न हे अदम्य भूख तेरे जटिल रहस्य को अब तक ठीक से कौन पारिभाषित कर पाया है। तू ही पेट की प्राकृतिक भूख है। कामरूपी वह भूख भी तू ही है, जो सृष्टि सृजन के हेतु नर-मादा को एकाकार करती है। लालसा की वह महाकामना का रूप भी तू ही है, जो सत्ताओं के स्थापन और विस्थापन का कारण बनती है। भूख को भोग (भोजन) मिलता रहे तो यह देव पुरुष मनु भला क्यों बाढ़ की धारा का निवाला बने?

शब्दार्थ 49, श्रीराम कॉलोनी
शिवपुरी-473551 (म.प्र.)
मो. 09981061100

सागर जिले में मध्य प्रदेश राष्ट्र भाषा प्रचार समिति की इकाई द्वारा प्रतिभा प्रोत्साहन प्रतियोगिता का आयोजन

जया केतकी की दयानंद पांडेय से बातचीत

दयानंद पांडेय

जन्म – 30 जनवरी 1958।
जन्म स्थान – बैदौली, गोरखपुर (उ.प्र.)।
शिक्षा – एम.ए.।
रचनाएँ – पछत्तर पुस्तकें प्रकाशित।
सम्मान – साहित्य भूषण सम्मान सहित अनेक सम्मानों से सम्मानित।

जया केतकी

जन्म – 23 अगस्त 1965।
जन्म स्थान – जबलपुर (म.प्र.)
शिक्षा – एम.ए., बी.एड., एम.ए. एलएल.बी., एम.जे., शोधरत, उर्दू डिप्लोमा, डीआईएसएम.।
रचनाएँ – सात पुस्तकें प्रकाशित।
सम्मान – म.प्र. राष्ट्र भाषा प्रचार समिति का प्रकाशकुमारी हरकावत नारी लेखन सम्मान।

जया केतकी : – यूँ तो साहित्यिक संसार के विविध अनुशासनों में आपकी निरंतर उपस्थिति रही है–वह काबिल–ए–गौर है, फिर भी सबसे पहले आप किस रूप में, किस विधा के पृष्ठों में स्वयं को अधिक उज्ज्वल, अधिक मौलिक, अधिक सार्थक रूप में पाते हैं, इसका मूल्यांकन पाठक, लेखक और आलोचक समाज करते रहे हैं फिर भी यदि यही प्रश्न मैं आपसे करूँ तो?

दयानंद पांडेय :– कहानी, कविता और उपन्यास में। संस्मरण में भी। दरअसल कहानी या उपन्यास लिखना मेरे लिए सिर्फ़ लिखना नहीं, एक प्रतिबद्धता है। प्रतिबद्धता है पीड़ा को स्वर देने की। चाहे वह खुद की पीड़ा हो, किसी अन्य की पीड़ा हो या समूचे समाज की पीड़ा। यह पीड़ा कई बार हदें लाँघती है तो मेरे लिखने में भी इसकी झलक, झलका (छाला) बन कर फूटती है। और इस झलके के फूटने की चीख़ चीत्कार में टूटती है। और मैं लिखता रहता हूँ। इस लिए भी कि इसके सिवाय मैं कुछ और कर नहीं सकता। हाँ, यह जरूर हो सकता है कि यह लिखना ठीक वैसे ही हो जैसे कोई न्यायमूर्ति, कोई छोटा या बड़ा फैसला लिखे और उस फैसले को मानना तो दूर उसका कोई नोटिस भी न ले। और जो किसी तरह नोटिस ले भी ले तो उसे सिर्फ कभी कभार 'कोट' करने के लिए।

तो कई बार मैं खुद से भी पूछता हूँ कि जैसे न्यायपालिका के आदेश हमारे समाज, हमारी सत्ता में लगभग अप्रासंगिक होते हुए हाशिए से भी बाहर होते जा रहे हैं। ठीक वैसे ही इस हाहाकारी उपभोक्ता बाजार के समय में लिखना और उससे भी ज्यादा पढ़ना भी कहीं अप्रासंगिक हो कर कब का हाशिए से बाहर हो चुका है तो भाई साहब आप फिर भी लिख क्यों रहे हैं? क्यों, क्या लिखते ही जा रहे हैं! क्यों भई क्यों? तो एक बेतुका सा जवाब भी खुद ही तलाशता हूँ। कि जैसे न्यायपालिका बेल पालिका में तब्दील हो कर हत्यारों, बलात्कारियों, डकैतों और रिश्वतखोरों को जमानत देने के लिए आज जानी जाती है, इस अर्थ में उसकी प्रासंगिकता क्या! जैसे यही उसका महत्त्वपूर्ण काम बन कर रह गया है तो कहानी या उपन्यास लिख कर खुद की, व्यक्ति की, समाज की पीड़ा को स्वर देने के लिए लिखना कैसे नहीं जरूरी और प्रासंगिक है? है और बिल्कुल है। सो लिखता ही रहूँगा। तो यह लिखना भी पीड़ा को सिर्फ जमानत भर देना तो नहीं है?

यह एक दूसरा सवाल मैं अपने आप से फिर पूछता हूँ। और जवाब पाता हूँ कि शायद! गरज यह कि लिख कर मैं पीड़ा को एक अर्थ में स्वर देता ही हूँ, दूसरे अर्थ में जमानत भी देता हूँ। भले ही हिंदी जगत का वर्तमान परिदृश्य बतर्ज मृणाल पांडेय– 'खुद ही लिख्या था, खुदै छपाये, खुदै उसी पर बोल्ये थे।' पर टिक गया है। दरअसल सारे विमर्श यहीं पर आ कर फँस जाते हैं। फिर भी पीड़ा को स्वर देना बहुत जरूरी है। क्योंकि यही मेरी प्रतिबद्धता है। किसी भी रचना की प्रतिबद्धता हमेशा शोषितों के साथ होती है। मेरी रचना की भी होती है। तो मैं अपनी रचनाओं में पीड़ितों की पैरवी करता हूँ।

हालाँकि मैं मानता हूँ कि लेखक की कोई रचना फैसला नहीं होती और न ही कोई अदालती फैसला रचना। फिर भी लेखक की रचना किसी भी अदालती फैसले से बहुत बड़ी है और उसकी गूँज, उसकी सार्थकता सदियों में भी पुरानी नहीं पड़ती। यह सचाई है। सचाई यह भी है कि पीड़ा को जो स्वर नहीं दूँगा तो मर जाऊँगा। नहीं मर पाऊँगा तो आत्महत्या कर लूँगा। तो इस अचानक मरने या आत्महत्या से बचने के लिए पीड़ा को स्वर देना बहुत जरूरी है। यह स्वर देने के लिए लिखना आप चाहें तो इसे सेफ्टी वाल्ब भी कह सकते हैं मेरा, मेरे समाज का! बावजूद इस सेफ्टी वाल्ब के झलके के फूटने की चीख़ की चीत्कार को मैं रोक नहीं पाता क्योंकि यह झलका तवे से जल कर नहीं जनमता, समयगत सचाइयों के जहर से पनपता है और

जब तब फूटता ही रहता है। मैं क्या कोई भी नहीं रोक सकता इसे। इस लिखने को।

प्रश्न :- आपकी एक कविता है-पिछवाड़े का घर गिर रहा है...

मेरे घर के पिछवाड़े का घर गिर रहा है
जैसे मैं गिर रहा हूँ
आहिस्ता-आहिस्ता

जैसे किसी स्त्री का नकाब सरक रहा हो
आहिस्ता-आहिस्ता

घर गिर रहा है और धरती दिख रही है
आहिस्ता-आहिस्ता
जैसे निर्वस्त्र हो रही है धरती

क्या सचमुच भारतीय घर गिर ही जायेगा? क्या सचमुच स्त्री का नकाब सरक जायेगा, स्त्री का नकाब आप क्यों और किस तरह बचते-बचाते हुए देखना-दिखाना चाहेंगे?

उत्तर :- गिरना किसी का भी हो दु:खद ही होता है। घर का गिरना और भी दु:खद। दरअसल पहले मैं एक सरकारी घर में रहता था। बरसों-बरस रहा। जिस सरकारी घर में रहता था, वह पूरी कॉलोनी जिसकी जमीन पर बनी थी, यह पिछवाड़े का घर उन्हीं का था। उनकी सारी जमीन सरकार ने ले ली थी, कालोनी बनाने के लिए। बरास्ता कोर्ट उन्होंने अपना वह हवेलीनुमा बँगला किसी तरह बचा लिया था। कोर्ट ने कहा था कि जब तक घर अपने आप गिर न जाए, खंडहर न हो जाए, तब तक उस घर में वह रह सकते हैं। बस घर में कोई मरम्मत या निर्माण और नवनिर्माण नहीं करवा सकते। उस हवेलीनुमा बँगले के चारों तरफ सरकारी बिल्डिंगें खड़ी हो गईं। आई ए एस अफसरों के लिए आफिसर्स कालोनी। कोई चार-पाँच दशक बाद वह घर पूरी तरह खंडहर होने की राह पर जब आ गया तब उन के परिवारीजन से उसे खाली करवा कर उसे गिरा दिया गया। बारह मंजिला विधायक और मंत्री निवास बनाने के लिए। बना भी। पर उस घर से तब तक कोई ढाई दशक का हमारा भी वास्ता हो गया था। सो एक रात बुलडोजर जब उस घर को गिरा रहे थे तो यह कविता मेरे मन से फूट पड़ी। बहुत दिनों तक उदास रहा मैं उस घर के गिरने से। उस घर के लोगों के बेघर होने से। लगता था उस घर का मलबा हमारी छाती पर गिर रहा है। घर नहीं, दिल टूट रहा है। वह लोग नहीं, मैं ही बेघर हो गया हूँ। उस पुराने घर की सिसकी आज भी मेरे मन में सिसकती रहती है। वह घर आज भी मुझ में साँस लेता रहता है। उस धरती की धड़कन आज भी धड़कती रहती है, मेरे दिल में। मेरे दिमाग में। लगता है जैसे वह बुलडोजर आज भी हमारी छाती पर चढ़ा हुआ मुझे गिरा रहा है। और स्त्री भी एक धरती ही है। स्त्री का रूपक इसी लिए रचा। धरती और स्त्री कितना कुछ तो सहती है। सहती ही रहती है। धरती और स्त्री दोनों ही जो न हों तो हम कहाँ रहेंगे?

प्रश्न :- आपका विश्वास है-आपका लिखना लिखना नहीं है, प्रतिबद्धता है पीड़ा को स्वर देने की। सारे प्रतिबद्ध शिथिल हो चुके हैं, प्रतिबद्धता का पानी सूख चुका है, विचारधाराओं की इतिश्री की बात भी चलती रहती है-आपकी प्रतिबद्धता के प्रति इस विश्वास का कारण क्या है, चुनौतियाँ क्या हैं? क्या प्रतिबद्धों का भविष्य सुरक्षित बना रहेगा?

उत्तर :- चुनौतियाँ सर्वदा एक सी ही होती हैं। अगर आप के भीतर, आप की आत्मा जीवित है तो आत्मा से बड़ी चुनौती कोई दूसरी नहीं। आत्मा ही है जो आप को सही-गलत का बोध करवाना नहीं भूलती। आप मानिए, न मानिए पर आत्मा आप को सत्य के पथ पर ही चलने के लिए कहती है। पीड़ा और पीड़ा को स्वर देने की प्रतिबद्धता यहीं से फूटती है जैसे किसी सोते से जल। जल की धारा। धारा में प्रवाह यहीं से आता है। पीड़ित की पीड़ा का स्वर इसी लिए मेरी रचनाओं में प्रमुख स्वर है। वैचारिक प्रतिबद्धता जैसे तत्व साहित्य को पोस्टर बना देते हैं। दोगला और दारुण बना देते हैं। लेखक को राजनीतिक टूल और टट्टू बना देते हैं। लेखक को यह शोभा नहीं देता। साहित्य का पतन हो जाता है। इसी लिए राजनीतिक प्रतिबद्धता में लिपटी या सनी एक भी बड़ी रचना दुनिया की किसी भी भाषा में नहीं मिलती। न कभी मिलेगी। मनुष्यता से बड़ी प्रतिबद्धता कोई और नहीं होती। मनुष्यता है, पीड़ा है तो रचना है। नहीं कुछ नहीं।

प्रश्न :- भारतीय कहानियों में विशेषकर हिंदी कहानियों में क्या-क्या लिखा जाना, रचा जाना शेष है?

उत्तर :- जीवन जितना बदलेगा, कहानियाँ भी उतनी ही बदलेंगी। तकनीक जैसे बदलती है। समय और साधन भी वैसे ही बदलते हैं। माध्यम भी उसी अनुपात में बदलते हैं। भावना और संवेदना जैसे बदलती है, कहानी या कोई भी रचना बदलती है। पहले हरकारे थे, कबूतर थे संदेश भेजने के लिए। यह वाचिक का दौर था। वाचिक परंपरा का आज भी बहुत महत्व है। बहुत सी कथाएँ वाचिक परंपरा से ही हमारे बीच आईं। फिर लिखित का दौर आया तो चिट्ठियाँ आ गईं। डाक विभाग आ गया। जल्दी की बात हुई तो तार विभाग आ गया। फोन आ गया। यह लीजिए फैक्स भी आ गया। पेजर आ गया। आते-आते इंटरनेट आया तो ईमेल आ गया। मोबाइल भी आया। एस एम एस भी। वाट्सअप, फेसबुक, ट्विटर, फेक्स, इंस्टाग्राम आदि भी। स्मार्ट फोन आया तो वाट्सअप भी। वीडियो काल आदि भी। तो जब इतनी सारी चीजें आ गईं तो बहुत सारी चीजें विदा भी हो गईं। आज से कोई पंद्रह बरस पहले मैं ने एक कहानी लिखी थी, फेसबुक में फँसे चेहरे। कथादेश में छपी। बहुत से लोगों ने चिट्ठी लिख-लिख कर पूछा कि यह फेसबुक क्या बला है। साहित्य अकादमी, दिल्ली ने बनारस हिंदू विश्वविद्यालय में कहानी पाठ का

कार्यक्रम रखा तो मैं ने यही फेसबुक में फँसे चेहरे कहानी का पाठ किया। वहाँ भी लोग पूछने लगे कि यह फेसबुक क्या है? अब तो कोई नहीं पूछता कि फेसबुक क्या है। जो लोग फेसबुक पर नहीं हैं, वह लोग भी पूछ लेते हैं कि फेसबुक पर क्या चल रहा है। ट्यूटर पर क्या ट्रेंड हो रहा है। तो लोग और माध्यम जैसे-जैसे बदलेंगे, कहानियाँ भी बदलती रहेंगी। शरत बाबू या प्रेमचंद की रचनाओं में उपस्थित बैलगाड़ी, रेलगाड़ी थी। अब दुनिया भर की फ्लाइट है। तो तकनीक भावना और संवेदना भी गढ़ती है। हाँ, माँ नहीं बदलती। मनुष्यता नहीं बदलती। भूख और प्यास नहीं बदलती। किसी भी रचना की ताकत और मूल यही हैं। इनमें इच्छाएँ और महत्वाकांक्षाएँ बढ़ती जाती हैं। कहानियों में यह सब डुबकी मारते रहते हैं। तो कहानियाँ बदलती जाती हैं। इस लिए शेष तो बहुत कुछ है। हर रचना छपने के बाद मुझे लगता है कि अभी तो बहुत कुछ लिखना है। लिखना खत्म नहीं होता। कभी खत्म नहीं होगा। जिस दिन, जिस क्षण लिखना खत्म, समझिए कि मैं मर गया। मेरा जीवन समाप्त।

प्रश्न :- विधाओं का सम्मिलन तो ठीक है, साझेदारी भी-कहानियों में अमूर्त गद्य की पेशबंदी को आप किस तरह देखते हैं, कहानी में कहानी जैसा ही कुछ न रहे तो पाठक क्यों कर उसे कहानी कहे, माने और कथाकार के क़रीब जाए?

उत्तर :- किसी रचना में किसी किस्म की पेशबंदी अपने आप में बड़ी मूर्खता है। धृष्टता है। अपराध है। वह पेशबंदी मूर्त की हो या अमूर्त की। फिर किसी रचना, किसी कहानी का सबसे बड़ा जज तो पाठक ही है। जिसका चाहे दीवाना हो जाए, जिसे चाहे कचरे में डाल दे। पाठक से बड़ा कोई नहीं। न कोई आलोचक, न संपादक। पाठक ही माई-बाप हैं। अगर आप भगवान को मानती हैं तो जानिए पाठक ही किसी लेखक का भगवान होता है। कम से कम मेरा तो है।

प्रश्न :- भविष्य की कहानियों के बारे में ही बता दीजिए-कैसा होगा इस सदी के बाद शिल्प और कथ्य?

उत्तर :- जैसा समय होगा, वैसी ही तो कहानी होगी। पौराणिक समय में पौराणिक कहानियाँ थीं, आधुनिक समय में आधुनिक कहानियाँ हैं। भारतीय फिल्मों के पितामह कहे जाने वाले दादा साहब फाल्के ने बताया है कि जब वह पहली फिल्म द लाइफ ऑफ क्राइस्ट देख रहे थे तब उनके मन में हरिश्चंद्र की कथा चल रही थी। और उन्होंने भारत की पहली मूक फिल्म राजा हरिश्चंद्र बनाई भी। तो शिल्प जैसा भी हो कथ्य तो अपनी ही भूमि का होगा। आप भारत में रह कर अमरीका, रूस, यूरोप आदि की बात भी अपनी कहानी में लिख सकते हैं पर कहानी में संदर्भ तो भारतीय रहेगा ही। ठीक है कि कहानी कल्पना है, गल्प है पर झूठ और चमत्कार का पुलिंदा भर तो नहीं ही है। कुछ लोग शिल्प का चमत्कार करते मिलते हैं पर अगर उस शिल्प में कथा तत्व नदारद है तो उस शिल्प का अंतिम संस्कार बहुत जल्दी हो जाता है। कथ्य महत्त्वपूर्ण है। कथा ही कथा की जान होती है। सिर्फ तेल, मसाला डालने से सब्जी नहीं बनती। सब्जी के बिना तेल, मसाले का कोई अर्थ नहीं। पौराणिक कहानियाँ आज भी इसी लिए प्रासंगिक बनी रहती हैं। क्योंकि उनमें कथा का तत्व बहुत प्रगाढ़ है। रामायण और महाभारत की कहानियाँ आज भी रोमांचक और रोचक लगती हैं तो सिर्फ इसी लिए कि उनकी कथा में कथा बहुत है। महाभारत से बड़ी कथा तो दुनिया में किसी भी भाषा में आज तक नहीं लिखी जा सकी है। टालस्टाय का वार एंड पीस तक पानी माँगता है, महाभारत की कथा के आगे। कथा जो भी रोचक और रोमांचक होगी, पढ़ी जाएगी। रामायण और महाभारत की तमाम कथाएँ तो लोग बिना पढ़े भी जानते हैं। क्योंकि वे लोक में हैं। लोगों की जुबान पर हैं। अनपढ़ और गँवार लोग भी इन कथाओं से परिचित हैं। तो सिर्फ इसलिए कि उसमें कथा का तत्व बहुत प्रबल है। अलग बात है कि अब के समय की बहुत सारी कहानियाँ समय के साथ पुरानी पड़ती जाती हैं। उनकी प्रासंगिकता खत्म हो जाती है। अज्ञेय ने एक समय लिखित घोषणा की कि वह अब कहानियाँ लिखनी बंद कर रहे हैं। क्योंकि समय के साथ कहानी पुरानी पड़ जाती है। कविता नहीं। कविता कभी पुरानी नहीं पड़ती। इसलिए वह कविता लिखते रहेंगे। कहानी नहीं।

प्रश्न :- आज का बच्चा बड़ा होकर किन-किन विषयों का उपन्यास पढ़ना चाहेगा, चाहेगा भी नहीं? मैं आपका उत्तर एक उपन्यासकार के रूप में नहीं, एक विचारकर्ता के रूप में जानना चाहती हूँ-तब जब मनुष्य नेटजन के रूप में पूरी तरह से तब्दील हो चुका होगा।

उत्तर :- दुर्भाग्य है कि बच्चा ही क्या अब कोई पढ़ना नहीं, देखना चाहता है। क्लास भी अब ऑनलाइन होने लगी हैं। कोरोना ने यह एक बहुत बड़ी बीमारी छोड़ दी है। वैसे भी हमारे यहाँ बच्चों के पालन-पोषण में नकल बहुत होने लगी है। फिर लोगों के पास समय कम है। बच्चों को समय नहीं दे पाते। संयुक्त परिवार समाप्त हैं। दादा -दादी, नाना-नानी, बुआ, मौसी आदि परिवार से विदा हो चुके हैं। एकल परिवार हैं अब। तो बच्चों का स्वाभाविक विकास डगमगा गया है। बच्चे टी वी, मोबाइल देख कर पल रहे हैं। बड़े हो रहे हैं। बच्चे बहुत जल्दी ही सब कुछ सीख ले रहे हैं। बहुत जल्दी बड़े हो जा रहे हैं। समय से पहले बड़े हो जा रहे हैं। क्योंकि संवेदना शून्य, भावना शून्य समाज हम रच रहे हैं। धन बहुत बड़ा फैक्टर बन चुका है। कहूँ कि राक्षस। टीनएज बच्चे अब पैसा, सेक्स और शराब के कायल हो चले हैं। लड़की हो या लड़का। यही उनकी दुनिया है। इससे कुछ अवकाश मिलता है तो कैरियर दबोच लेता है। हमारे समय में कॉमिक्स और कार्टून बच्चों को बहुत भ्रमित करते थे। नष्ट करते थे। अब तो बच्चों को मिसगाइड करने के लिए तमाम चीजें उपस्थित हैं। जिनको आप चाह कर भी रोक नहीं सकते।

प्रश्न :- आपको भारतीय हिंदी सिनेमा के दिग्गज़ों से मिलने, बतियाने, उनके कुछ खास उगलवाने का मौक़ा मिला है, कुछ विशिष्ट अनुभव बताना चाहें।

उत्तर :- बहुतेरी बातें हैं। किस्से हैं। कुछ लोगों से मिलना बेहद सुखद रहा है। कुछ लोगों से मिलना बहुत सुखद नहीं रहा। कुछ लोगों से तो मित्रता भी हो गई। हालाँकि सिनेमा ही नहीं, अन्य क्षेत्रों के भी बहुत से दिग्गज लोगों से मिलना-बतियाना होता रहा है। हमारे काम का हिस्सा रहा है यह। सिनेमा से ज्यादा तो राजनीतिक दिग्गजों से मिलना हुआ। इनमें भी सबसे ज्यादा अटल बिहारी वाजपेयी जी से। लेकिन आपने सिनेमा जगत की बात की है तो उसी पर बात करते हैं। मेरा सौभाग्य है कि दिलीप कुमार, शशि कपूर, अमिताभ बच्चन, जितेंद्र, फारुख शेख, जानी वाकर, ए. के. हंगल, मनोहर सिंह, कुलभूषण खरबंदा, हेमा मालिनी, रेखा, श्रीदेवी, पूजा भट्ट आदि तमाम अभिनेता और अभिनेत्रियों से इंटरव्यू किए। लता मंगेशकर, आशा भोंसले, हृदयनाथ मंगेशकर, उषा मंगेशकर, हेमलता, जगजीत सिंह, कुमार शानू आदि गायकों से भी। थिएटर के भी बहुत से दिग्गजों ब. व. कारंत, बृजमोहन शाह, उषा गांगुली, चेतना जालान आदि लोगों से भी।

अमिताभ बच्चन से इंटरव्यू लेना बहुत सुखद था। बहुत आत्मीयता और सम्मान के साथ वह मिलते हैं। सहजता और सम्मान उनकी बहुत बड़ी पूँजी है। यहाँ तक कि जब उनको मैंने लगभग चिकोटी काटते हुए पूछा कि आपकी यह विनम्रता ओढ़ी हुई है, अभिनय है या सचमुच ही आप इतने विनम्र हैं। अमिताभ बच्चन हाथ जोड़ और ज्यादा विनम्र होकर बोले, आप जो समझ लीजिए। यह 1996 की बात है। तब कौन बनेगा करोड़ पति शुरू नहीं हुआ था। चार साल बाद जब कौन बनेगा करोड़पति शुरू हुआ तब पता चला कि अमिताभ बच्चन सचमुच बहुत विनम्र हैं। इस बड़े से इंटरव्यू के बाद भी कई बार अमिताभ बच्चन से भेंट हुई। दूसरी बार जब मिले तो मैंने पूछा, पहचाना मुझे? वह तपाक से हाथ जोड़ते हुए, गले लगाते हुए मिले और बोले, क्यों नहीं पहचानूँगा। वह बोले, आपने मेरा बढ़िया इंटरव्यू किया था। उस इंटरव्यू में मैंने उनसे एक सवाल यह भी पूछा था कि आप की ही क्या हिंदी फिल्मों में एक ट्रेंड सा है-सत्य की असत्य पर जीत का। फटाफट जीत का। जबकि समाज में चीजें इस से उलट हैं। खास कर अदालत और पुलिसिया मामलों में।

-वह बोले थे, बाबू जी इन दिनों अस्वस्थ रहते हैं। पर रोज शाम को मेरी फिल्में जरूर देखते हैं। मैं उनसे पूछता हूँ क्यों देखते हैं, क्या धरा है इनमें? तो वह कहते हैं कि इन फिल्मों में तीन घंटे के अंदर जो 'पोएटिक जस्टिस' मिल जाता है, वह इंसान को जीवन भर नहीं मिल पाता है। मैं एक बार रूस गया था। वहाँ मेरी फिल्में बहुत चलती हैं। एक आदमी से मैंने इस बाबत पूछा तो वह बोला कि जब मैं हिंदी फिल्म देख कर बाहर आता हूँ तो मेरे चेहरे पर हल्की मुस्कान होती है और गाल पर एक बूँद आँसू!

उस इंटरव्यू में अमिताभ बच्चन ने अगले जन्म में पत्रकार बनने की इच्छा जताई थी। इसलिए कि पत्रकार को सवाल पूछने का अधिकार होता है। दिलीप कुमार की कलफ लगी उर्दू परेशान करती रही। इंटरव्यू के बाद तो दिलीप कुमार बहुत गंभीर हो कर अपने इंटरव्यू की फीस भी माँगने लगे। मैंने हाथ जोड़ कर कहा कि मेरी हैसियत नहीं है कि आपको इस इंटरव्यू की फीस दे सकूँ! वह अचानक ठठा कर हँसे और बोले, जाइए जीते रहिए! फारुख शेख भी कलफ लगी उर्दू बोलते थे। लेकिन अंदाज दोस्ताना रहता था।

जॉनी वाकर से जब इंटरव्यू कर रहा था तब दिलीप कुमार भी साथ उपस्थित थे। दिलीप कुमार जब-तब जॉनी वाकर की बात में हस्तक्षेप करते रहे थे। और जानी वाकर को दिलीप कुमार के हस्तक्षेप पर कोई ऐतराज नहीं हुआ। लेकिन जब दिलीप कुमार से इंटरव्यू कर रहा था तब जॉनी वाकर ने भी दो-तीन बार हस्तक्षेप किया। दिलीप कुमार ने अंततः जॉनी वाकर को डपटते हुए कहा, इंटरव्यू आपका हो रहा है कि मेरा? जॉनी वाकर तुरंत खामोश हो गए थे। दिलीप कुमार इंटरव्यू के उस हिस्से में बहुत संजीदा हो गए जिनमें देवदास और मुगलेआजम पर बात हो रही थी। उन्होंने कहा भी कि -देवदास होना सबके वश की बात नहीं है।

मनोज वाजपेयी आज की तारीख में बहुत बड़े अभिनेता हैं। लेकिन जब उनसे भेंट हुई तो उनके बहुत इसरार पर भी जाने क्यों उनका इंटरव्यू करने का मन नहीं हुआ। तब जबकि वह बिलकुल बच्चों की तरह बहुत पीछे पड़े कि-भैया एगो हमरो इंटरव्यू ले ल! महेश भट्ट तक से मनोज वाजपेयी ने सिफारिश करवाई। हुआ यह कि एक बार महेश भट्ट अपनी बेटी पूजा भट्ट के साथ लखनऊ आए। पूजा भट्ट ने एक फिल्म प्रोड्यूस की थी- तमन्ना। तो तमन्ना का प्रीमियम शो था लखनऊ में। तमन्ना की लगभग पूरी टीम आई थी। महेश भट्ट और पूजा भट्ट का अलग-अलग इंटरव्यू किया। मनोज वाजपेयी ने भी चाहा कि उनका इंटरव्यू हो। मनोज वाजपेयी के कहने पर महेश भट्ट ने मुझ से कहा भी कि मनोज वाजपेयी बहुत बड़ा एक्टर है। इसका इंटरव्यू कर लीजिए। मैंने मनोज वाजपेयी से कहा कि अपने काम के बारे में बताइए। उन्होंने कुछ सीरियल के नाम लिए। नाटकों के नाम लिए। जो मैंने देखे नहीं थे। बैंडिट क्वीन का नाम लिया जिसमें उन्होंने मान सिंह का काम किया। मान सिंह की भूमिका मुझे याद थी। मनोज से मैंने कहा कि कल देखते हैं। बात खत्म हो गई थी। पर बाद में जब सत्या, शूल, अक्स और अलीगढ़ जैसी कई सारी फिल्में देखीं तो बहुत पछताया। बहुत पछताया कि हाय! मनोज वाजपेयी का इंटरव्यू मैंने तब क्यों नहीं किया! यह पछतावा आज तक है। अलीगढ़ मनोज वाजपेयी की सर्वश्रेष्ठ फिल्म है।

लता मंगेशकर से जब मिला तो राजभवन में मिला। राजकीय अतिथि बन कर आई थीं। उनके चेहरे पर देवत्व और सफलता की आभा थी। बात-बेबात वह खिलखिलाती रहीं। आत्मीयता और औपचारिकता की जैसे मिलजुला कोलाज थीं वह। आशा भोसले तो होटल के कमरे में मैक्सी पहन कर बेड पर बैठ कर ऐसे बतियाती रहीं गोया मैं उनके घर का सदस्य होऊँ। औपचारिकता की कोई दीवार नहीं खड़ी की। हर बात पर बेबाक। कुछ भी छुपाना नहीं। उषा मंगेशकर के पास जैसे कुछ बताने के लिए था ही नहीं। उनका इंटरव्यू नोट कर के भी नहीं लिख सका। तो छपता भी क्या। हृदयनाथ मंगेशकर भी इंटरव्यू के दौरान दोस्ताना व्यवहार रखे रहे। कुछ सवालों पर भड़के भी पर आपा नहीं खोया। लता मंगेशकर और सी रामचंद्र के संबंधों के सवाल पर उखड़ गए। आशा भोसले पर कुछ सवालों को लेकर भी वह भड़के। और आपा खो बैठे। गो कि हृदयनाथ मंगेशकर संत स्वभाव के आदमी हैं। इस सबके बावजूद हमारे दोस्त हैं वह अब। हेमलता भी आशा भोसले की ही तरह हँसती-हँसाती इंटरव्यू देती रहीं। रवींद्र जैन द्वारा आर्थिक, मानसिक और दैहिक शोषण की दास्तान बताते-बताते कई बार रो-रो पड़ीं वह। कुमार शानू, श्रीदेवी जैसे लोग अपनी ही दुनिया में रहने वाले हैं। बाहर की दुनिया के बारे में कोई जानकारी नहीं थी। हेमा मालिनी से जब मिला था, वह राजनीति में नहीं थीं। ज्यादातर हीरोइनों के पास सवालों के जवाब नहीं होते। वह अपने हुस्न और सफलता पर ही फोकस चाहती हैं। कुछ और सवाल नहीं। जितेंद्र ने जब बताया कि फिगर मेनटेन करने के लिए तीस साल तक कोई पका अनाज नहीं खाया। रोटी तक नहीं खाई। तो मैं दंग रह गया। जितेंद्र को तो मेरा इंटरव्यू लेना इतना पसंद आया कि वह मुझे दिल्ली ले जाने लगे। बड़ी मुश्किल से उनको न जाने के लिए मना पाया।

जगजीत सिंह से तो कई बार मेरा झगड़ा भी हुआ है। एक बार तो मैं ने उनसे कह दिया कि होंगे आप बहुत बड़े गजल गायक पर मैं भी कोई ऐरा-गैरा नहीं हूँ! उन्होंने मुझे बाँहों में भर लिया। बोले, आप मेरे दोस्त हैं। मेरे कद्रदान हैं। बात खत्म हो गई थी। जब वह लखनऊ आते थे तो मुझे खोजते-फिरते थे। कई बार फोन कर के बता देते थे कि लखनऊ आ रहा हूँ। इंटरव्यू तो मैंने बहुतेरे लोगों के किए हैं। पर दो लोग ऐसे हैं जिनका सबसे ज्यादा इंटरव्यू किया है। एक अटल बिहारी वाजपेयी और दूसरे हैं जगजीत सिंह। सो इंटरव्यू से इतर बहुतेरे किस्से, बहुतेरे लोगों के हैं।

प्रश्न :- बताइये-हिंदी गीतों में फिल्मी गीतों, गीतकारों को शुमार करने लायक कोई भी संभावना नहीं थी जो इस पूरी शब्द-संपदा की उपेक्षा होती रही?

उत्तर :- इसीलिए हिंदी कविता अब अपना अस्तित्व बचाने में संघर्षरत है। कोई प्रकाशक जल्दी कविता संकलन छापने को तैयार नहीं होता। पैसा माँगता है, कविता संग्रह प्रकाशित करने के लिए। बड़े-बड़े कवि पैसा दे कर कविता संग्रह छपवा रहे हैं। कवि ही कवि की कविता सुन रहे हैं। जनता नहीं। जनता तो कविता के नाम पर लतीफा सुनने में व्यस्त और न्यस्त है। लतीफेबाज या फिर गलेबाज ही जनता के पल्ले पड़ गए हैं। तो सिर्फ इसलिए कि हिंदी कवियों ने कविता से उसकी गीतात्मकता छीन ली। लय छीन ली। छंद छीन लिया। पार्टियों का पोस्टर बना दिया कविता को। खास कर वामपंथी कवियों ने कविता का प्राण हर लिया। प्राणहीन कविता कोई क्यों पढ़ेगा। क्यों सुनेगा। कैसे पढ़ेगा और सुनेगा। पार्टी का नारा या पोस्टर कविता तो नहीं हो सकती। यही हो गया। गीत यह लोग लिख नहीं सकते थे। तो गीत को अछूत बना कर घूरे पर फेंक दिया। डस्टबिन में डाल दिया। गीत लिखना और गाना जैसे अपराध घोषित कर दिया वामपंथी कवियों ने। छायावाद को हिंदूवाद बता दिया। यह सब अपराध हुआ। बहुत बड़ा अपराध। अक्षम्य अपराध। महादेवी वर्मा ने लिखा है न कि : मैं नीर भरी दु:ख की बदली / उमड़ी कल थी, मिट आज चली। तो गीत क्या मिटा, कविता मिटने की मोड़ पर बढ़ चली। सोचिए कि आज है ऐसा कोई कवि जिसकी कविता कबीर, तुलसी या धूमिल या दुष्यंत कुमार की कविता की तरह जुबान पर चढ़ जाए और जब जो चाहे तब सुना दे! आलम यह है कि अब कवि को ही अपनी कविता याद नहीं रहती। डायरी या मोबाइल देख कर कविता पढ़ता है। तो कविता सुनने वाले या पढ़ने वाले को कैसे याद रहेगी कोई कविता। कविता, वर्तमान हिंदी कविता बहुत संकट के समय से गुजर रही है। रही सही गैंगवादियों की गुफा में समा गई है।

दरअसल हमारे वामपंथी मित्र दुर्भाग्य से गैंग चलाने के हामीदार हैं। लेखन और लेखक उनकी प्राथमिकता में नहीं हैं। एजेंडा और गैंग ही उनका प्रिय और प्राथमिक विषय है। असहिष्णुता और नफरत के जिले में कैद रहने के अभ्यस्त हैं हमारे वामपंथी मित्र। असहमति का एक सूत भी उन्हें किसी सूरत स्वीकार्य नहीं है। अगर आप उनके गैंग में हैं तो कालजयी रचनाकार हैं, भले भूसा लिख रहे हों। गैंग में अगर नहीं हैं तो आप लेखक तो छोड़िए, मनुष्य भी नहीं हैं। वह आप को जानने से भी इंकार कर देंगे। गैंग से बाहर के किसी व्यक्ति का नाम सुनते ही उन के चेहरे पर घृणा और हिकारत के भाव अनायास आ जाते हैं। ऐसा करने के लिए वह अभ्यस्त हैं। अभिशप्त हैं। उनका सारा सरोकार साहित्य से नहीं, एजेंडे से है। फासिज्म का विरोध करते-करते अब वह नए फासिस्ट हैं। तानाशाह तो खैर हैं ही। इसी लिए समाज से, पाठक से यह लोग अब वंचित हैं। कुंठित हैं। खारिज और खत्म हैं। खुद ही लिखते हैं, खुद ही पढ़ते हैं। और

सर्वदा दु:ख में रहते हैं। फिर चाहते हैं कि पूरी दुनिया दुखी रहे। हिंदी में तो वह इतनी ऐंठ में रहते हैं कि ब्रेख्त और नेरुदा में ही सारी मुक्ति खोजते हैं। खुद नेरुदा या ब्रेख्त की तरह लिख नहीं सकते। उससे आगे बढ़ना ही नहीं चाहते। साहित्य के यह तालिबान हैं। हिप्पोक्रेसी के नायाब नवाब हैं यह लोग।

वामपंथी लेखकों के लिए पार्टी की सीमा रेखा बहुत गहरी है। सीमा रेखा लाँघते ही राहुल सांकृत्यायन, रामविलास शर्मा जैसे कई सारे वामपंथी लेखकों के साथ वामपंथ ने क्या सुलूक किया है, हमारे सामने है। निर्मल वर्मा और नामवर सिंह के साथ भी क्या कुछ हुआ है, हम सब के सामने है। किस्से बहुतेरे हैं वामपंथ के कट्टरपन के। वामपंथी लेखकों ने खुद भी अपने को वामपंथ के कट्टरपन में कैसे तो ढाल लिया है, क्या इसके विवरण भी हम सब को नहीं मालूम? जरा सा असहमत होते ही अगले को भाजपाई, भक्त और संघी घोषित कर देना भी वामपंथी कट्टरपन नहीं तो और क्या है। आप ही बता दें। आप या कोई और यह बात माने या न माने पर सच यह है कि चुनी हुई चुप्पियाँ और चुने हुए विरोध ने आज की तारीख में वामपंथी लेखकों को तेली का बैल बना दिया है। वामपंथी लेखक अब निश्चित परिधि में ही विचरण करते हैं। उसी निश्चित परिधि में बोलते, लिखते और पढ़ते हैं। नतीजतन गिरोह बन कर रह गए हैं। इस निश्चित परिधि से बाहर सोचना, समझना वामपंथी लेखक भूल चुके हैं। ठहरा हुआ जल बन चुके हैं। ठहरे हुए जल की नियति मालूम है न!

प्रश्न :– एक वरिष्ठ पत्रकार के रूप में पिछले एक दशक की भारतीय पत्रकारिता का चेहरा आपको दिखाई कैसा देता है?

उत्तर :– बहुत रुग्ण और दारुण चेहरा है हमारी भारतीय पत्रकारिता का। कोई तीन-चार दशक से लगातार बिगड़ता गया है चेहरा। दलाली और चाटुकार की छवि बहुत गाढ़ी हो गई है। कभी देश की आजादी की लड़ाई का एक हथियार थी यह पत्रकारिता। पर अब आजादी को छीनने में जितनी सहायक पत्रकारिता हुई है, कोई और नहीं। आर्थिक उदारीकरण और आवारा पूँजी ने पत्रकारिता को लक्ष्मी का दासी बना दिया है। सत्ता की मंथरा बना दिया है। आलम यह है कि जब जिसकी सत्ता, तब तिसका अखबार। तब तिस का चैनल। लोग भ्रमवश पत्रकारिता को लोकतंत्र का चौथा खंभा कहते रहते हैं। ऐसा है नहीं लेकिन। वस्तुत : यह पूँजीपतियों का खंभा बन कर अब उपस्थित है। बाकी तलछट दलालों के हाथ में है। जनता की बात आज की पत्रकारिता नहीं करती। सत्ता और पूँजी हित की बात करती है। वैसे भी संविधान में चौथा स्तंभ का कोई जिक्र नहीं है। संविधान में सिर्फ तीन ही स्तंभ वर्णित हैं। विधायिका, न्यायपालिका और कार्यपालिका। पत्रकारिता का संकेतों में भी जिक्र नहीं है। पत्रकारिता क्या है? ऐसे जैसे सत्ता रूपी हाथी पर महावत का अंकुश। तो लोकतंत्र में पत्रकारिता सत्ता पर अंकुश होती है। अवधारणा यही है। लेकिन पत्रकारिता का पतन हो गया है। बुरी तरह पतित हो गई पत्रकारिता। अगर पत्रकारिता अपने शौर्य पर होती, महावत के अंकुश का काम करती सत्ता रूपी हाथी पर तो आज की तारीख में हमारी राजनीति भी इतनी पतित न होती। इतना पतन न होता सत्ता का। अंकुश ढीला हुआ है तो हाथी मदमस्त हो कर मनमानी पर आमादा है। सत्ता हित सर्वोपरि है, जनता हित ठेंगे पर। पत्रकारिता पतित हुई तो राजनीति भी पतित हो गई। पतन हो गया राजनीति का।

अस्सी के दशक में दिल्ली में पत्रकारिता करता था। दिल्ली में तब के दिनों प्रेस के दो खाने थे। इंडियन प्रेस और इंटरनेशनल प्रेस। इंडियन प्रेस मतलब अंग्रेजी के अखबार। इंटरनेशनल प्रेस मतलब विदेशी अखबार और बी बी सी आदि। हिंदी अखबार और दूरदर्शन तब हाशिए पर भी नहीं थे। दिल्ली में हिंदी अखबारों की स्थिति इतनी बुरी थी कि पूछिए मत। बात पंजाबी और अंग्रेजी में करते थे और काम हिंदी में। लोकसभा और राज्य सभा में तो अब हिंदी भी सुनाई देती है, पहले अंग्रेजी का ही बोलबाला था। प्रेस कांफ्रेंस भी ज्यादातर अंग्रेजी में ही होती थी। एक बार इंदिरा गाँधी जो तब प्रधान मंत्री थीं, की प्रेस कांफ्रेंस में मैंने हिंदी में प्रश्न पूछा पर इंदिरा गाँधी अंग्रेजी में ही जवाब देने लगीं। मैं ने एकाधिक बार टोका कि हिंदी में सवाल पूछा है तो जवाब भी हिंदी में दीजिए। कुछ और हिंदी पत्रकार भी हिंदी-हिंदी करने लगे तो इंदिरा जी ने चश्मा उतारा, ठुड्डी पर लगाया और बोलीं, यहाँ इंटरनेशनल प्रेस भी है और वह हिंदी नहीं जानता। कह कर वह फिर अंग्रेजी में स्टार्ट हो गईं। मेरे दफ्तर में बाद में इंदिरा गाँधी के सूचना सलाहकार ने मेरी शिकायत भी की। हिंदी पत्रकारिता की हीनता अभी भी बहुत है दिल्ली, मुंबई आदि में। दक्षिण की तो खैर बात ही क्या करें।

प्रश्न :– आप हिंदी प्रदेशों की हिंदी और रचे जा रहे साहित्य को अन्य भारतीय भाषाओं के बरक्स कैसे अधिक उर्वर कहना चाहेंगे और अधिक प्रभावी भी?

उत्तर :– तुलसीदास ने बहुत कुछ लिखा है। पर चर्चा और जीवन में अमूमन तीन ही रचनाएँ हैं। श्रीराम चरित मानस, हनुमान चालीसा और विनय पत्रिका। क्योंकि सारा साहित्य सर्वदा श्रेष्ठ और जनप्रिय नहीं होता। प्रेमचंद ने तीन सौ से अधिक कहानियाँ लिखी हैं। पर ज्यादा चर्चा उनकी दस-बारह कहानियों की ही होती है। उपन्यास सम्राट कहलाए जाने के बावजूद उनके दो-तीन उपन्यास ही घूम फिर कर चर्चा में हैं। श्रीलाल शुक्ल ने बहुत लिखा है पर रागदरबारी ही लोग जानते और मानते हैं। यही हाल बाकी लेखकों की रचनाओं की

भी है। हमारे यहाँ बहुत सारे ईश्वर और देवी-देवता हैं। कई कोटि। पर लोक में शंकर, राम, कृष्ण, हनुमान, दुर्गा और काली देवी ही ज्यादा हैं। तो किसी लेखक की सारी रचना श्रेष्ठ नहीं हो सकती। होती है कोई एक रचना जो पाठक को क्लिक कर जाती है और लेखक लोकप्रिय हो जाता है।

प्रश्न :- वर्तमान दौर में समाज में पनप रहे असंतोष को आप किस तरह देखते हैं?
उत्तर :- धर्म में कट्टरता और जातियों में वैमनस्यता ही इस असंतोष के बड़े कारण हैं।

प्रश्न :- क्या आप व्यक्ति के मन में पनप रहे असंतोष की परिणिति समाज में किसी प्रकार के अतिवाद के रूप में देखते हैं?
उत्तर :- भोजन और वस्त्र अब सभी के पास है। कहीं कमी नहीं है। इसलिए असंतोष की स्थितियाँ आजकल रोटी, कपड़ा, मकान, भूख और बेरोजगारी के परिणाम से नहीं हैं। आज की तारीख में राजनीतिक और आर्थिक असंतोष ज्यादा हैं। महत्वाकांक्षा और अहंकार का असंतोष बहुत ज्यादा।

प्रश्न :- आपकी दृष्टि में कौन-सा अतिवाद ज़्यादा घातक है, व्यवस्थागत या व्यक्तिगत?
उत्तर :- दोनों ही घातक हैं। बहुत घातक।

प्रश्न :- आप अतिवाद को एक भौतिक अवस्था मानते हैं या मानसिक?
उत्तर :- राक्षसी अवस्था।

प्रश्न :- क्या आप मानते हैं कि अतिवाद विरोध प्रदर्शित करने का एक बेहतर माध्यम है?
उत्तर :- बिल्कुल नहीं। समाज को नष्ट करना, देश में अराजकता फैलाना ही अतिवाद के विरोध प्रदर्शन का एकमात्र लक्ष्य है। अतिवाद से, हिंसा से कोई सकारात्मक रास्ता कभी नहीं निकलता।

प्रश्न :- आपकी नज़र में क्या अतिवाद समस्याओं के समाधान का श्रेष्ठ उपाय हो सकता है?
उत्तर :- बिलकुल नहीं। अतिवाद मतलब विध्वंस। चाहे किसी विचार का अतिवाद हो या किसी व्यवस्था का। विध्वंस कभी भी समस्याओं के समाधान का रास्ता नहीं निकाल सकता। अतिवाद का सब से बड़ा उदाहरण हमारे सामने कश्मीर का था। कभी पंजाब भी इसी अतिवाद का शिकार था। पंजाब भी लगभग सँभल गया। कश्मीर भी। पड़ोस में बांग्लादेश अभी मुँह बाए खड़ा है। इजराइल और फिलिस्तीन के हमास के बीच युद्ध अतिवाद का परिणाम है। रूस और यूक्रेन का युद्ध भी। इराक, सीरिया आदि इसी में बरबाद हैं। पाकिस्तान और अफगानिस्तान इस अतिवाद के कारण ही अब बरबाद और कंगाल देश हैं।

प्रश्न :- ऐसे समाज के स्वास्थ्य पर आप क्या कहना चाहेंगे जिस पर हमेशा भय, आतंक एवं अमानवीयता का साया मँडराता हो?
उत्तर :- निश्चित ही यह दुर्भाग्यपूर्ण है। आतंक और हिंसा ही भय और अमानवीयता का माहौल बनाते हैं। पर अगर दुनिया के बाकी हिस्से से तुलना कीजिएगा तो भारत की स्थिति बहुत संतोषजनक है। बहुत बेहतर है। आतंक पर बहुत हद तक काबू किया जा चुका है। इसलिए भय और अमानवीयता भी लगभग समाप्त है। हम अब भयमुक्त समाज में साँस ले रहे हैं। यह क्या कम है।

प्रश्न :- आप किस किस्म के अतिवाद को राष्ट्र के लिए सबसे बड़ा ख़तरा मानते हैं?
उत्तर :- हर किस्म का अतिवाद किसी भी सभ्य समाज और देश के लिए बड़ा खतरा है। मनुष्यता का दुश्मन है यह अतिवाद। अतिवाद किसी भी किस्म का हो, हर देश और समाज के लिए बड़ा खतरा है। फिलहाल तो इस्लामिक आतंक पूरी दुनिया के लिए सबसे बड़ा खतरा बन कर उपस्थित है।

प्रश्न :- भारतीय जनतंत्र की गति और मति के बारे में आप क्या सोचते हैं?
उत्तर :- भारत में जनतंत्र एक स्वाभाविक स्थिति है। इसकी गति भी ठीक है और मति भी। इतना बड़ा देश है तो थोड़ी बहुत टूट-फूट भी जरूर है। इससे इंकार नहीं है। लेकिन यह बहुत चिंतनीय नहीं है। आहिस्ता-आहिस्ता सब ठीक हो जाएगा। बहुरंगी और बहुसंस्कृति वाला देश है। लेकिन प्रकृति बहता पानी जैसी है। बहता हुआ पानी सब कुछ साफ करता हुआ चलता है। वेद और आयुर्वेद का देश है। सब कुछ स्वाभाविक रूप से भी ठीक होता जाता है। जब राजतंत्र था भारत में तब उस राजतंत्र में भी जनतंत्र की सुगंध भरपूर थी। पौराणिक काल के राजतंत्र में भी जनतंत्र की सुगंध आज तक सुवासित है। आक्रमणकारियों, लुटेरों ने आ कर भारत के जनतंत्र को आघात पहुँचाने की कोशिश की थी पर बहुत हद तक कामयाब नहीं हो सके। उनकी एक निश्चित सीमा थी। और अब तो जनतंत्र पूरमपूर है।

दयानंद पांडेय
2 / 276 विराम खंड,गोमती नगर,
लखनऊ - 226010 (उ.प्र.)
मो. - 9335233424

एक और जंग

- स्वाति तिवारी

जन्म - 17 फरवरी 1960।
शिक्षा - एम.एस.सी., पी-एच.डी.।
रचनाएँ - 8 कहानी संग्रह, तीन उपन्यास।
सम्मान - म.प्र. साहित्य अकादमी का प्रादेशिक एवं अखिल भारतीय सम्मान सहित अनेक सम्मान।

एक डॉक्टर होने के नाते जीवन को बचाने की हर संभव कोशिश के बावजूद मुझे रोज ही न केवल पेशेंट के रिश्तेदारों से निपटना होता है, बल्कि स्वयं से भी भावनात्मक स्तर पर जूझना पड़ता है। कई बार जानते हुए भी कि पेशेंट को बचा पाना नामुमकिन है, पर रिश्तेदारों को यह साफ नहीं बता सकते इसलिए पेशेंट का पैरामीटर बताने लगता हूँ। जैसे कह देता हूँ कि क्लीनिकली तो दवाइयाँ रिस्पांस कर रही हैं। लेकिन, अभी पेशेंट प्रॉपर रिस्पांस नहीं कर रहा। मेरी तरह हर डॉक्टर को पता होता है, कि किसी भी पेशेंट के साथ इमोशनली इन्वॉल्व नहीं होना चाहिए!

उस दिन मेरी ड्यूटी क्रिटिकल केयर वार्ड में थी। यह कोरोना की दूसरी लहर थी, जो भयावह रुख धारण कर चुकी थी। घर छोड़े हम दोनों को ही आज दस दिन हो गए थे। पत्नी भी ड्यूटी पर तैनात है, हम अलग-अलग हॉस्पिटल में हैं। इन दिनों दोनों ही घर नहीं जा रहे थे। घर जाने का तो सवाल ही नहीं उठता था, वह भी एक बच्चा और एक बुजुर्ग वाला घर। दोनों डॉक्टर हों तो स्थिति एक सी ही होती है। पत्नी के लिए नर्सिंग होस्टल में एक रूम हो गया था, जहाँ वह कुछ देर आराम कर सकती थी। लेकिन, मेरे लिए अभी मेरी कार ही मेरा घर था। वही मेरा बेड, मेरा वार्डरोब बनी हुई थी।

कार लेकर मैं हॉस्पिटल के पीछे बने लम्बे घास के मैदान जैसे कैंपस में चला जाता था, जहाँ गार्डन के लिए एक नल और सिंचाई का एक पाइप लगा था। इस जगह का एक फायदा स्नान के लिए ताजे पानी की सुविधा का, कपड़े धोने और रात में गाड़ी धो लेने से कुछ ताजगी मिल जाती थी। एन-95 जैसे मास्क तो छोड़िये, उन दिनों हमारे पास सामान्य मास्क तक पर्याप्त मात्रा में नहीं थे। हमें अपने गाउन 2-3 दिन तक दोबारा इस्तेमाल करने पड़ रहे थे।

थकान शरीर में और माहौल से मन में पसरी रहती। ऐसे माहौल में सोना चाहते हुए भी कई बार सो नहीं पाता था। नींद आएगी कहाँ से! इस महामारी में, इन खतरनाक परिस्थिति में बिना हथियार जैसे हम एक युद्ध लड़ रहे थे।

कोरोना वायरस को लेकर हर रोज़ सरकार की तरफ से होने वाले संवाददाता सम्मेलन में स्वास्थ्य मंत्रालय के अधिकारियों से पीपीई की उपलब्धता पर सवाल पूछे जाते! सच यह हैकि, उनको फील्ड में जाकर हम डॉक्टरों से पूछना चाहिए! पर, इन तमाम बातों से ऊपर उस वक्त दुनिया भर में डॉक्टर जैसे विश्वयुद्ध के सैनिक हो गए थे, कोई बम गिरे या वायरस हर हाल में खुद को डॉक्टर सिद्ध करने का कोई जुनून सा सवार था। कभी अपनी स्थिति पर तरस आता तो कभी डॉक्टर बनने के जुनून पर पछतावा। लेकिन, ज्यादातर अपने पेशे पर गर्व ही हुआ। जाने कितने विचार आते-जाते रहते। सोते वक्त और फिर एक झपकी आई और सो जाता। दिनभर प्लास्टिक के कवच में उमस भरे मायूस भयावह रोते-तड़फते, साँसों के लिए मरीजों को जीवन की जंग लड़ते देखकर थका शरीर मन को कमजोर करने लगा था। आज जैसे ही अपने थर्मस से गर्म दूध और ब्रेड स्लाइस निकालकर खाना शुरू किया कि मोबाइल पर मैसेज! खाकर ही देखूँगा। दो स्लाइस भी पूरी नहीं खाई कि फिर मोबाइल बजा। इस बार मेरे वार्ड के जूनियर रेजिडेंट का फोन था 'सर पेशेंट की कंडीशन क्रिटिकल हो रही है।

'ओके, ऑक्सीजन अरेंज करो, आता हूँ!' थर्मस बंद कर फिर बास्केट में रखा। कार की डिक्की में उतारी हुई किट को झाड़ा, पहनने का मन नहीं था, लेकिन न पहनने का कोई विकल्प भी नहीं था। पेशेंट का चेहरा दिमाग में घूम गया। मासूम सा युवा चेहरा, अभी-अभी डॉक्टरी पूरी की है। डिग्री मिली भी कि नहीं, यह भी नहीं पता, अगर चला गया तो एक प्यारा सा होनहार मेडिकल का कर्णधार डॉक्टर। कितनी बड़ी क्षति होगी! क्या कहूँगा उसकी मंगेतर से जो उसे लेकर आई थी। सर ये जिद्दी है, सुनता नहीं है, समझाया था ब्रेक लो ड्यूटी से, नहीं माना। बीस दिन से अस्पताल में ही रह रहा था। मैं भी इमरजेंसी वार्ड में ही हूँ। जाते-जाते वो अपना मोबाइल नंबर छोड़ गई थी। दराज में एक स्लिप पर लिखा हुआ, क्या करूँ उसे बताऊँ! मेडिकल कॉलेजों से निकले इन दोनों जैसे कितने ही जूनियर डॉक्टरों के लिए ये सीधे आग में कूदने जैसा अनुभव है। इन होनहार कर्णधारों को आगे की पढ़ाई के लिए मौके तलाशने के बजाय इस

साल मेडिकल स्टूडेंट्स ट्रेनिंग की तरह कोविड ड्यूटी की फ्रंटलाइन पर तैनात कर दिए गए। जाओ दुश्मन से भिड़ो? न बचाव के साधन न अनुभव, जैसे किसी सैन्य प्रशिक्षण में बारूद की सुरंग बिछाकर उन्हें कहा जाता है इस पर चलो और बताओ कैसे बचोगे? तैरना नहीं जानते तब भी पानी में फैंक दिए गए बच्चों जैसे, मारो हाथ पैर, तैर गए तो किनारे वरना गहरे समन्दर में।

फोन पर फिर से मैसेज था 'सर जल्दी!' पहले जाकर देख लेता हूँ, सात दिनों से मेरे पास भी न दूसरी फ्रेश किट है, न इसे धो पाया हूँ। एक हफ्ते तक वही सर्जिकल मास्क पहनने के बाद, अब जाकर दूसरे मास्क मिले हैं। मार्केट से भी सब गायब हो रहा था। पसीने से गीले होते शरीर पर जब पसीने के रेले उतरने लगते हैं तो हाथ धोने की याद बाद में आती, हाथ उसे पोंछने के लिए पहले ही चला जाता कभी चहरे पर, कभी गर्दन पर, और कभी नाक पर। जितना भी बचाव हो रहा है वह ईश्वर का ही चमत्कार है। इन विषम परिस्थितियों में इस युवा डॉक्टर का वेंटिलेटर पर जाना मेरे अलावा वार्ड के दूसरे स्टाफ के भी मनोबल को तोड़ने लगा। दिमाग तेजी से कुछ इलाज खोज रहा है। क्या करूँ, कौन सी दवाई? हाथ स्टेयरिंग पर जैसे जाम हो गए थे।

मन अन्दर से पिघलने लगा था। कोई रिश्ता नहीं होने के बावजूद यह लड़का मेरे मन में जैसे घर करता जा रहा था। अभी तो जानता ही कितना हूँ इसे! बस कुछ दिन, कुछ बातें और उसकी लव स्टोरी। वह भी केवल अंदाज से देखी समझी। कल ही तो उसके पिता से फोन पर बात की थी। भर्राए गले से, भारी रुँधी आवाज से, थोड़े घबराए हुए ही थे। बताया था इसने स्कूल के प्राचार्य हैं। एक शिक्षक ने किन हालातों में उन्होंने इसे डॉक्टर बनाया होगा! एक बार अपने गए हुए पिता का चेहरा सामने आया और फिर पेंशन से पाई-पाई बचाने वाली माँ याद आई। घर फोन लगा लेता हूँ। गाड़ी चलाते-चलाते फोन लगा ही लिया। माँ ने ही फोन उठाया, मान ने पूछा 'क्या हुआ नकुल?' माँ जानती हैं, जब मैं अन्दर से बेचैन होता हूँ तब माँ को फोन करता हूँ। बताना चाहता हूँ केस पर रुक जाता हूँ, वह अकेले ही घर मैनेज कर रही हैं। एक बच्ची के साथ, यह समय भय से भरा है, खास कर पेरेंट्स के लिए, सोचकर बात बदल देता हूँ, हाल-चाल के साथ स्टीम लेते रहने की हिदायत भी देता हूँ।

अस्पताल की लिफ्ट बंद है, सीढ़ियों से वार्ड तक पहुँचता हूँ। लगभग भागते हुए ही वार्ड के दरवाजे से अंदर पहुँचता हूँ। दीवार से टिकी उसकी मंगेतर खड़ी दिखाई देती है। देख लेता हूँ, लेकिन कोई पहचान नहीं बताता। अंदर से हिम्मत नहीं है, उससे नजरें मिलाने की। देखते ही समझ गया कि मरीज़ को आईसीयू ले जाना होगा। लेकिन, हमारे यहाँ आईसीयू की सुविधा सही मायने में आईसीयू नहीं थी। यह एक सेकेंडरी लेवल हॉस्पिटल है, यानी कि यह मात्र एक ज़िला अस्पताल जैसा ही है। जिसे फिलहाल 100 बेड कर दिया गया है, पलँग लगा कर। खासतौर पर कोविड के मरीजों के लिए रखे गए हैं। लेकिन, हमारी दिक्कत कोविड मरीज़ों की नहीं है, व्यवस्थाओं से थी जिनके कारण संसाधन जिला अस्पताल जैसे भी नहीं हैं। जो हैं वे सरकारी खरीदी के वे उपकरण हैं, जिन्हें सरकारी खजाने के सदुपयोग के लिए खरीद लिया जाता है। जिनके होने या न होने की वेल्यू पर बात करना इस महामारी में कोई मायने नहीं रखता!

मुझे लगा अब हम केवल धैर्य रखने और मन को स्थिर बनाए रखने के उपायों की स्थिति से बहुत दूर निकल आए हैं। सही मायनों में हमें मेडिकल दवाइयाँ और संसाधन चाहिए, कब तक हम पेरासिटामोल टैबलेट, विटामिन सी और एजिथ्रोमाइसिन 500 से मरीजों को बचाने के प्रयास करेंगे! हमारे पास तो कोई सही इलाज की जानकारी भी नहीं और दवाइयाँ तो अब बेसिक भी उपलब्ध नहीं हैं! इसका साँसों का संकट शुरू हो चुका था और मैं अपने ही अंदर के डॉक्टर से भावनात्मक रूप से लड़ रहा था। स्टोर इंचार्ज को फोन लगाता हूँ दवाइयों के लिए, ऑक्सीजन सिलेंडर के लिए। लेकिन, वह रटा रटाया जवाब देता है 'बहुत सीमित स्टॉक था कब का खत्म हो गया। बाजार से मँगवा लीजिए, पेशेंट के अटेंडेंट से!'

मेरे अंदर वह दृश्य कौंध जाता है, जब स्टोर के अन्दर से बातचीत के अंश बाहर सुनाई दिए थे। और ऑक्सीजन के सिलेंडर की गाड़ी अस्पताल के पिछले गेट पर रुकी थी। इंचार्ज डॉक्टर की आवाज जस की तस सुनाई देती है, 'कुछ दवाइयाँ जो मार्केट में भी कम हो रही हैं उन्हें सुरक्षित कर दीजिए। मंत्री जी के निर्देश हैं, कुछ इंजेक्शन और दवाइयाँ उनके बँगले पर भी रखवानी हैं, चार सिलेंडर भी। किसी खास परिस्थिति के लिए! कुछ अपने ही स्टाफ के वरिष्ठों को भी चाहिए। जरूरत पड़ेगी आगे, जैसी स्थितियाँ बन रही हैं। मैं गुस्से से उबलने लगा- 'साले सब के सब।'

मुझे पता था स्टोर से हटाकर दवाइयाँ कहाँ रखी हो सकती हैं! मैं भागता हूँ बेसमेंट की तरफ, पुराने स्टोर तक जहाँ लोग मुश्किल से पहुँच पाते हैं। सीढ़ियों पर अँधेरा और शव गृह के कारण लोग कम ही जाते हैं। एक साथ चार-चार सीढ़ियाँ लाँघ रहा हूँ। स्टोर कीपर स्टोर की साँकल चढ़ा ही रहा था कि मैं उसे धक्का देकर स्टोर खोल लेता हूँ। सामने ही एक दवाइयों का नया बॉक्स दिखाई देता है। मैं गाली देते हुए बक्सा फाड़ देता हूँ। दवाइयों को अपनी जेब में भरकर फिर भागता हूँ। यह भूलकर कि इस हरकत के बाद मेरी नौकरी और इज्जत दाँव पर लग जाएगी। ऑक्सीजन के कुछ सिलेंडर भी स्टोर में छुपाए गए देख लेता हूँ, वो लड़की सिलेंडर अपने वार्ड से उठा लाई थी। थोड़ी राहत लगी मुझे। अपनी हिम्मत के कारण इंजेक्शन देता हूँ हल्का सा सुधार दिखा उसकी साँसों की आवाजाही में। मैं आँसुओं

की धार से धुँधलाते हुए चेहरे देख रहा था, लेकिन सब एक-दूसरे से नजरें बचाकर नम आँखों को झपका रहे थे। मैं एक विजयी भाव से भरने लगा जैसे कोई गढ़ जीतकर लौटा हूँ।

जेब में भरी दवाई जूनियर रेजिडेंट के हाथ में देता हूँ। दूसरा इंजेक्शन लगाते-लगाते हालत हाथ से बेकाबू होने लगे। उसकी उखड़ी साँसों को मीलों की दूरी तय करते देख रहा हूँ। हे भगवान! अगर तुम्हारा अस्तित्व है, तो इस बच्चे को बचा लो! मन ही मन एक प्रार्थना करता हूँ। लड़की मेरे पास आकर खड़ी हो गई, 'सर इसकी मम्मी पूछ रही हैं, क्या बताऊँ!' मैं गर्दन घुमाकर सिर्फ देखता हूँ।

'वे वीडियो कॉल पर हैं।'

इशारे से समझाता हूँ , 'उन्हें कहो कि दवाइयाँ मिल गईं और दे दी हैं बस!'

'लेकिन सर', 'इस वक्त हम यही बता सकते हैं।'

पहली बार अपनी विवशता ने झकझोर दिया। हम सब लगे थे बीमारों का भगवान बनने में। पर, बेबस, असहाय, अपने ही एक साथी को साँसों के युद्ध में जूझते देख रहे थे। जीवन देने का भ्रम आज टूट रहा था। मनुष्य सर्वशक्तिमान होने का केवल दंभ भरता है, पर है कुछ नहीं। एक अदृश्य वायरस के आगे घुटने के बल खड़े हैं आज सब। विकास की केवल बातें करते हैं, जबकि सच यह है कि डॉक्टरों तक के पास पीपीई किट्स और एन-95 मास्क की अवेयरनेस तो छोड़िए उपलब्धता भी एक खामोश प्रश्न था। जिस पर इस वक्त बोलना भी गुनाह था। मैं अपने अन्दर के तूफान में घिरा था, वो साँसों की झंझावातों में और वो लड़की उसकी मंगेतर अपने सपनों से, प्यार के वादों से, अन्धकार भरे भविष्य से लड़ रही थी। उसकी आखरी हिचकी ने सब शांत कर दिया। अब नए संकट थे। रिपोर्ट पॉजिटिव थी तो! लड़की खिसकते-खिसकते फिर दीवार से चिपक गई बेजान सी। फिर अचानक एक रुलाई के साथ जैसे दीवार तोड़कर बाहर निकलती है और उससे लिपट जाती है, रोकता हूँ उसे! 'यह पोजेटिव पेशेंट था', एक पल में वह था हो गया?

'मर तो गई हूँ सर इसी के साथ। इसके बगैर जी कर भी क्या करूँगी, एक बार गले लगाकर उसे छू तो लेने दीजिए!' वह दहाड़ें मार कर रोने लगती है। उसका फोन विडियो काल पर खुला है, सामने उसके बूढ़े पिता हैं, जो स्तब्ध हैं, जैसे काठ मार गया हो उन्हें। मैं पहली बार किसी पेशेंट के लिए रोना चाहता हूँ, पर मैं तो डॉक्टर हूँ, ड्यूटीपर हूँ, रो नहीं सकता। लड़की रो रही है, जूनियर भी इधर-उधर होकर रोक रहे हैं अन्दर के बहाव को। लड़की उसके परिवार से भी अटेच है इमोश्ली, उसे एक बार उसके घर ले जाना चाहती है, उसी घर जहाँ वह दुल्हन बनकर जाने के सपने बुनती रही होगी। बुदबुदाती है- 'इसकी माँ ने चार महीने से इसको देखा नहीं। यह पी जी की तैयारी में लगा था, बार-बार माँ फोन कराती थी। आ जा एक बार घर, और अब बिना देखे कैसे जियेंगी!'

मैं साँस रोक लेता हूँ, क्या जवाब दूँ। नि:शब्द हूँ, यह कैसी कठिन घड़ी? कैसा कठोर व्यवहार का समय है भी और नहीं भी। एक जीवन चला गया अपने साथ जाने कितनों को। जीते जी मारकर! यह शोक का समय है, यह रोने का समय है, इस लड़की को गले लगाकर सांत्वना का समय है, यह ढाढस देने का समय है। यही तो मनुष्य के मनुष्य होने का समय है। यह अंतर्मन के मरहम का समय है। यह उसके सपनों के काँच की तरह टूटने का समय है।

समझ रहा हूँ। उसका प्यार, उसका जीवन, उसकी दुनिया अंधे कुँए में खो गई। वह मेरे से कठोर व्यवहार की अपेक्षा नहीं करेगी, पर मैं कठोर हो जाता हूँ। एक पल की भी देर किए बिना, डेड बॉडी को वहाँ से काले प्लास्टिक बैग में शिफ्ट करने के आदेश देता हूँ। जल्दी करो! एक डॉक्टर के लिए यह अगले पेशेंट का समय है, जिसे गँवाना नहीं चाहिए। जानता हूँ लड़की उसे देखना, छूना, लिपटना सब चाहती है। वह उसका आखिरी स्पर्श याद रखना चाहती है, आगे जीने के लिए। पर मैं एक डॉक्टर हूँ। यह अनुमति नहीं दे सकता। 'नहीं! तुम एक समझदार डॉक्टर हो, जानती हो न पॉजिटिव केस में पार्थिव शरीर को केवल महानगर पालिका को ही सुपुर्द किए जाने के आदेश हैं। घर ले जाने के नहीं, सूचना दे दो, उसके घर!' यह घर जाएगा तो और मुश्किलें होंगी।

मैं बाहर निकलकर रोना चाहता हूँ। लेकिन, दरवाजे पर एक और क्रिटिकल पेशेंट के आते ही कठोर होकर उसकी जगह खाली करवाता हूँ। तब तक पेशेंट को दूसरे पलँग पर लेता हूँ, लड़की के अन्दर की डॉक्टर अचानक जाग जाती है वह मेरी सहायता करने लगती है। जानता हूँ इस समय हम सब रोना चाहते हैं। लेकिन, जिंदगी सामने आ गई और रोने का समय चला गया। एक जंग खत्म होते-होते एक और जंग हमारे सामने थी। हमारे ही अस्पताल की हेड नर्स सिस्टर डिसूजा जिन्हें अक्सर मैं मदर डिसूजा बुलाता रहा हूँ! सिलेंडर एक तरफ करते हुए उन्हें आवाज देता हूँ, उत्तर की अपेक्षा किए बिना।

46 विला, फेस -2, श्री गोल्डन सिटी,
जाट खेड़ी, भोपाल-462047 (म.प्र.)
मो. -7974534394

मृत्यु की गोद में मेरी सुहानी नींद

- आत्माराम यादव पीव

जन्म - 19 मई 1965।
जन्मस्थान - नर्मदापुरम, (म.प्र.)।
रचनाएँ - चार पुस्तकें प्रकाशित।

जन्म से आज तक 60 वर्ष यानी 21900 दिन गुजर गए जिसमें जिंदगी से खफा होकर मैं जीते जी कई बार मरा हूँ। दुनिया में कोई भी हो अधिकांश के साथ जीवन छल करता है और वे अपने में पूरी तरह टूट कर खुद को मरा हुआ मानते हैं, पर वे मरते नहीं। कारण, मृत्यु तो एक बार ही आती है और खूब झूमती हुई, इठलाती हुई सामने खड़ी अट्टहास करती है, जब मृत्यु आती है तो घर के आँगन में खड़ी होकर हँस-हँस कर सिर्फ एक बार ताना कसती है कि जल्द से कुछ पलों में अपने घर-परिवार के नातेदारों-रिश्तेदारों से ममता की जंजीरों को तोड़ मेरे साथ चलने को तैयार हो जाओ।

मृत्यु का आना यानी एक नागिन के दाँतों के बीच साँसों की डोर का होना है और मरने वाला मृत्यु को देख अपने होशोहवाश खो देता है। वह किसी से भी अपनी व्यथा नहीं कह पाता और अपने दिल की ज्वाला में धधकता हुआ शांत हो जाता है। सदा के लिए एक तस्वीर बनकर दीवार पर टँगने के लिए, ये जो 60 वर्ष की मैं बात कर रहा हूँ, वह कम या ज्यादा हो सकता है जिसमें मौत के आने के बाद शरीर सबसे बंधनमुक्त हो जाता है। मेरे अपने जीवन के 60 वर्ष सुख-दुख में, स्नेह बाँटते प्यार को तरसते, छोटे-बड़े भाइयों सहित परिवारजनों का तिरष्कार, अपमान और अन्याय की चक्की में पिसते हुए, उन्हें रूठने-मनाने में गुजार दिए पर वे रिश्तों को तोड़कर अपनी मस्ती में रहे। मैं जानता हूँ कि वे तीस साल यानी आधी उम्र के 10950 दिन अकड़ में जिए, पर उनकी अकड़ की गाँठ खुलती ही नहीं कि अचानक मृत्यु ने मुझे अपनी गोद की शरण दे दी। बरसों बाद परम शांति महसूस हुई जब मौत की सुहानी गोद में मुझे गहरी मीठी नींद में सुला दिया अब ये आँखें सदा-सदा के लिए बंद हो गई और पलक झपकते ही दुनिया के सारे नाते-रिश्तों के बंधनों से मुक्ति मिल गई।

इधर मेरे मरने की खबर जैसे ही लोगों के पास पहुँची कुछ जागरूक समाजसेवी सक्रिय हो गए और कब प्राणान्त हुए, क्या कर रहे थे, क्या बीमार थे, आखिरी शब्द क्या थे उनका अंतिम संस्कार कब होगा, किस घाट पर होगा आदि जानकारी लेकर उसे सोशल मीडिया पर मेरे फोटो के साथ पोस्ट करना शुरू कर दिया। बड़े दुख की बात है हमारे भाई पत्रकार आत्माराम यादव हमारे बीच नहीं रहे उनका अंतिम संस्कार फलाँ घाट पर इतने बजे किया जाएगा और लोग सामान्य घटना की तरह हमदर्दी जताकर मृतक आत्मा की शांति हेतु संवेदना व्यक्त कर दुख जाहिर करेंगे। जिनके मन में मेरे प्रति भावनात्मक जुड़ाव होगा वे सीधे शव को कंधा देने घर पहुँचेगा जिसकी साक्षी यह देह नहीं किन्तु मेरे शरीर के प्रति मोह न छोड़ पाने वाली सूक्ष्म आत्मा अवश्य दर्शक दीर्घा में खड़ी होगी जो घर से शव ले जाने के साथ आखिरी समय तक की तमाशबीन होगी।

मेरी सूक्ष्म आत्मा मेरी जन्म से मौत तक की साक्षी रही है। वह एक-एक घटना को देखकर मेरा मूल्यांकन मुझसे कराएगी और मेरे सामने हर घटनाक्रम जीवित हो उठेगा कि मैं अपने इस जीवन में, अपनी भुजाओं की पूरी ताकत लगाने के बाद, जी भरकर समाचार, लेख, व्यंग्य आदि लिखते हुए इतना नहीं कमा सका कि बच्चों को घर बनवा सकूँ, मैंने बच्चों को पढ़ाने-लिखाने में अपने सपने न्योछावर किए, बच्चों के सपनों के आगे में हमेशा बौना ही रहा। अब जबकि मौत की गोद में पहुँचा तब मुझे बहुत ख्याल आए कि अब तक मुझसे मेरे भाइयों से प्रेम करने में कहाँ चूक हुई जबकि मेरा हृदय सदैव उनके लिए पूर्ण समर्पित रह उनके साथ अपने सुख-दुख बाँटने के लिए तड़पता रहा था। मेरे बेटे नादान हैं, वे मेरे विषय में जो धारणा रखे मैं उन्हें दोष नहीं दूँगा, पर बेटी के लिए सिर्फ पढ़ाई के अलावा कुछ न कर पाने की मेरे दिल में गहरी वेदना रही है। अगर मैं अपने बच्चों को आसमान कि ऊँचाइयों तक पहुँचाकर अपरिमित धन दे सकता तो शायद वे मुझे योग्य पिता मान लेते। न मानें तो भी वे मेरे दिल के टुकड़े ही रहेंगे, हाँ बेटी जब अपने लक्ष्य पर पहुँच जाए तो वह मेरी मेलआईडी के पोस्ट किए सारे लेखों को पुस्तक का स्वरूप देने के अलावा, लिखी चारों पुस्तकों को सभी तक पहुँचाने हेतु बेटों से ज्यादा सजग है। परिवार में और भी सदस्य है, विशेषकर बड़े घर में बड़ी भाभी, बहू सीता जैसी परीक्षा किसी ने नहीं दी, जो सक्षम हैं वे रिश्तों से बहुत दूर हैं, उनके लिए उनका अपना संसार ही सब कुछ है, बाकी उनके अपने, उनके लिए कुछ नहीं। अरे ये क्या मृत्यु की गोद में भी मोह ममता का बुखार आ गया जबकि यह शरीर मृत्यु के हवाले हो जाने से मृत हो गया है और अब लोग जल्द इस शरीर को यहाँ से हटाने कि तैयारी में जुटने लग गए।

घर के अंत:पुर में रोने की आवाज तेज हो गई है। सभी मेरे मृत शरीर से उमड़ पड़ रहे हैं और ताने दे रहे हैं कि आखिर हमें भी साथ ले जाते, किसके भरोसे छोड़ जा रहे हो। हम आपके बिना जी के क्या करेंगे, हमे भी साथ ले चलो। हे भगवान कितने निर्दयी हो, हमे क्यों नहीं ले गए, इनकी जगह हमें ले जाते तो अच्छा होता वगैरह-वगैरह। ये जितने भी मेरे शव पर

रोने वाले चीख-चीख कर दिखावा कर प्रेम दिखा रहे हैं वे सब दिखावटी हैं। मेरे घर-परिवार के सदस्य जो मोह दिखा रहे हैं, उनका मोह मैं जानता हूँ इसलिए अब इनके द्वारा मेरे शव को श्मशान ले जाने कि तैयारी हो गई है। मैं अपने शव के इर्द-गिर्द देख रहा हूँ, जिस घर में जिस परिवार के साथ मैंने कई साल गुजारे वह घर अब मेरा नहीं रहा। जिस बस्ती में मेरा घर है उस बस्ती से मैं उजड़ गया, यानी अब वह बस्ती मेरे लिए घर नहीं रही थी। मुझे मौत अपने साथ ले गई। जहाँ मौत हो वह बस्ती क्यों कहलाती है। यह मेरी आत्मा सोच रही थी। जहाँ सभी की शान बराबर हो वह शमशान भूमि जहाँ से कभी किसी को लौटा कर नहीं ले जाते, वह अब मेरी हो गई है। जहाँ पर चिता की मृदुल गोद मुझे चिर-विश्राम देगी।

अब जबकि आप सभी जान गए कि मेरा अवसान हो गया तब एक प्रश्न उनसे जरूर करूँगा कि मैं जब जीवित रहा तब कभी भी आपने मेरी कुशल नहीं पूछी, जिस भाई भतीजों को चाहा वे घर से घर लगा होने के बाद घर के सामने से ऐसे बिना बोले निकलते थे मानो मैंने उनका सर्वस्व छीन लिया है। मैंने अपने जीवन काल में जिसे कभी जाना नहीं, पहचाना नहीं, जिससे मेरी दोस्ती नहीं वह भी तब मेरे विषय में इस प्रकार दुष्प्रचार करता रहा, जैसे सच में मैंने उसके घर का चीर हरण किया हो। आखिर मुझे सद्मार्ग पर चलने के लिए जीते जी यह संत्रास क्यों झेलना पड़ा। यह अलग बात है कि इसी प्रकार के लोग मृत्यु के पश्चात् मेरा सम्मान करने की प्रतिस्पर्धा करेंगे, जिसे मैं देख नहीं पाऊँगा। मेरी आँखें मुँदने के बाद मेरी मृत्यु पर मुझे अंतिम क्रिया हेतु आज शाम से पहले ही ले जाने का निमंत्रण भी दिया जा चुका है अर्थात् पंचायती हाँका करा दिया गया है जिससे लोग घर पर जुटने लगे हैं। जो भी मेरी मौत की खबर सुनता, कहता विश्वास ही नहीं हो रहा कि आखिर अचानक यह कैसे हो गया।

मरने से पहले मैं एक सामान्य आम आदमी रहा हूँ जिसके प्राणों में क्या चलता रहा। इसे कोई समझ नहीं सका। मेरे मन को, मेरे हृदय को जब मेरे भाई नहीं समझ सके तो फिर दुनियादारी के किसी और रिश्ते से क्या उम्मीद करता। मैंने सभी के गंभीर से गंभीर कष्टों को झेला है, जब जीवन भर गल्तियाँ करके मेरे भाई गल्तियों को स्वीकारने की ताकत नहीं जुटा सके तब उन्हें एहसास कराने हेतु में दिल की गहराइयों तक तड़पकर क्षमा कर देता। मेरी इन कमजोरियों को मेरे भाइयों ने अपने लाभ के लिए इस्तेमाल किया। कई रातों में जागते हुये लेखन, चिंतन, मनन और साधना करते मुझे लगा जैसे विधाता मेरे विचारों में इस प्रलय का सामना करने का बल दे रहा है और मैं अपने भाइयों के लिए किसी बल की ढाल से सुरक्षा नहीं चाहता था। मैंने माता और पिता का एकांतवास देखा है, जिन्होंने अपने खून-पसीने से सींचा। वे बेटे उनके नहीं हो सके तो मैं उनके सामने किस खेत की मूली था। आश्चर्य होता है कि मेरे इन भाइयों को क्या चौदह भुवन का राज्य मिल गया था या तीनों लोकों के वे राजा हो गए थे जिनके समक्ष माँ और पिता तिरस्कृत हो जाए और उनकी ममता का मूल्य उनसे जिंदगी भर की दूरी बनाकर दे और अपना स्वार्थ निकालने के लिए ही उन्हें याद किया जाए। ये सारी बातें मेरी आत्मा के सामने आ जा रही थी, जब घर से मेरे शव को शमशानघाट लेकर जाया जा रहा था और मैं जीते जी राम नाम सत्य है, यह सत्य से दूर रह किन्तु मेरे शव को सुनाने के लिए लोग रास्ते भर कहते जा रहे थे, सब शमशान घाट का वह चबूतरा आ गया। जहाँ मेरे शव को एक मिनिट रोककर, मृत्युकर चुकाकर कंधे बदले जाकर चिता पर लिटाया गया।

युगों से निरंतर यही चला आ रहा है कि जिसकी आयु पूरी हो जाए उसे मरना है, यही कारण है कि इस धरती पर कोई भी वीर-महावीर, अवतार तक नहीं रुक सका और पानी के बुलबुले की तरह मिटाकर वह चला गया। तब यदि मैं मर गया तो कोई अजूबा नहीं हुआ। जग में जिसने जन्म लिया है, उसे मरना पड़ा है, आज मैं मर गया तो इसमें आश्चर्य की कौन सी बात है आखिर कभी तो मरना था। जगत के लोगों ने मेरे साथ कैसा व्यवहार किया या मैंने अपने प्राणों में उठी उमंगों को कुचलकर क्षितिज की ऊँचाइयों तक क्यों नहीं पहुँच सका, यह मेरे प्रारब्ध के किसी श्राप या बद्दुआ के कारण हो सकता है, वरना इस जीवन में सभी से वरदान ही मिला था जो कुछ कमाए बिना लोगों से माँगकर हँसी-खुशी जीवन निकल गया।

हाँ अब शमशान में मेरी चिता को अग्नि देने के बाद मेरी कपालक्रिया तक बैठकर या जब भी मेरी याद आए तब मेरी कथनी-करनी से लेकर मेरी उपेक्षा, मान, निंदा स्तुति का मुरब्बा तैयार कर अपने-अपने हिसाब से मसाला मिलाकर अपनी श्वासों के कारागार में मुझे बंदी बना सकते हो या मेरे जीवन भर आँसुओं पर पत्थर बन मुझ अभागे को कोस कर अपनी भड़ास निकल सकते हो। पर ऐसी बहदुरी करने का साहस न कर सभी लोग खाक हो चुके मेरे शव को लकड़ी दे परिक्रमा कर वहीं शोकसभा आयोजित करके मेरे परिजनों को मेरे न रहने का दुख सहन करने की ताकत परमात्मा दे। ये कोरे शब्द किसी नशेलची के किए गए नशे की खुरक की तरह बोलकर चल दोगे। कोरे अर्थात् खाली, शून्य तिक्त । ये शून्य तिक्त शब्द अर्थहीन हैं, क्योंकि इन्हें सिर्फ आपके होंठों ने छुआ है। ये हृदय की गहराइयों से निकले शब्द नहीं हैं।

मेरा शरीर शमशान में खाक हो चुकने के बाद मेरे जीवन के जुड़े मेरे प्रसंगों को याद कर लोगों को सुनकर मुझे श्रद्धांजलि अर्पित करेंगे। जिसे मेरे जीते जी संपर्क में जो अच्छाई या बुराई मुझमें दिखी वह दुख से साथ याद कर मेरी याद को जिंदा रखने के लिए अपने-अपने प्रयास करेगा और अधिकारियों से माँग कर ज्ञापन सौंपेगा। फोटो के साथ समाचार पत्रों में छपवाएँगे। मेरी आत्मा मेरे मरने की सभी शोक सभाएँ सुनती, किन्तु मेरे स्वजन जिनकी दी गई व्यथा की आग में दिनरात घुल-घुल कर मेरी मौत हुई, यह बात की मेरी आत्मा अकेली साक्षी रही ह। वह गवाही देने तो आएगी नहीं, हाँ पंद्रह दिन एक महीने बाद मेरा जिक्र ही समाप्त हो गया। जैसे मेरे पैदा होने से पहले दुनिया चल रही थी, मेरे मरने के बाद भी वैसे ही दुनिया चलती रहेगी।

श्री जगन्नाथ धाम काली मंदिर के पीछे,
ग्वालटोली, नर्मदापुरम (म.प्र.)
मो.- 9993376616

हैसियत

– रामेश्वर वाढेकर 'संघर्षशील'

जन्म – 20 मई 1991।
जन्मस्थान – माजलगाँव (महा.)।
शिक्षा – एम.ए., एम.फिल., पीएच.डी.।
रचनाएँ – पत्रपत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित।

बारिश जोरों से हो रही थी। सभी तरफ पानी ही पानी था। उसी समय गोदावरी में बाढ़ आई। नज़दीक बड़ा बाँध होने से पानी गाँव में घुसा था। गाँव पानी में पूरी तरह डूब गया था। पानी दिन-ब-दिन बढ़ रहा था। गाँव के लोगों की धड़कनें बढ़ रहीथीं। अनाजभी खराब हुआ था। भुखमरी समस्या बनी हुई थी। पानी बड़ने के कारण दूसरे गाँव से संपर्क टूटा था। गाँव की बिजली बंद हुई थी। मज़दूर लोग परेशान थे। अमीर लोग गाँव छोड़ कर सुरक्षित जगह पर जा रहे थे किन्तु गरीब लोग वहीं थे। वे गरीब लोग कुछ दिन के पश्चात् स्कूल में रहने लगे थे। लेकिन स्कूल लग रही थी। स्कूल के आधे हिस्से में पढ़ाई का कार्य जारी था। कुछ अध्यापकों के रहने की व्यवस्था वहीं थी।

रात के दो बजे थे। माँ सोई नहीं थी। यानी उसे नींद ही नहीं आ रही थी। वह छत की तरफ एकटक देख रही थी। चिंता में दिख रही थी। मैंने माँ का उदास चेहरा देखकर तुरंत पूछा- 'माँ, उदास क्यों हो? क्या हुआ?'

'कुछ नहीं रमेश बेटा। सोच रही हूँ कि तेरी ज़िंदगी कैसी होगी? तुझे बहुत पढ़ाना है किन्तु मैं पढ़ाऊँगी कैसे? यह प्रश्न मुझे निरंतर सताते हैं।'

'तुम भी न ऐसा क्यों सोचती हो? हमारी बस्ती में प्रशांत, हीरा भी तो सामान्य परिवार से हैं। वे भी तो पढ़ रहे हैं। वे मेरे अच्छे दोस्त हैं। उनके विचारों और मेरे विचारों में साम्य है। उनके साथ मैं पढ़ूँगा। माँ, अब चिंता करना छोड़ दो। और सो जाओ।'

सुबह-सुबह मैं उठा। मेरी आदत थी। मैं घूमने के लिए निकला। मैं प्रति दिन घूमता था, शरीर और मन अच्छा रहे इसलिए। रास्ते पर मुझे हीरा दिखाई दिया। वह मेरा बहुत करीबी दोस्त था। हम दोनों घूमने के लिए निकल पड़े। वार्तालाप करते-करते गाँव से तीन किलोमीटर दूर आ गए। मेरे मन में कई प्रश्न थे। वे माँ से संभाषण करने के पश्चात् उपस्थित हुए थे। मैं बहुत उदास था। मैंने थोड़ी देर बाद चिंता भरे स्वर में हीरा से कहा, 'हमें बहुत पढ़ना हैं माँ-बाप के सपनों की खातिर। पढ़ाई के लिए सिर्फ़ पैसा ही सब कुछ नहीं होता। हिम्मत होनी जरूरी है। वह हमारे पास हैं। आर्थिक स्थिति बिकट है तब भी हम कुछ काम करके पढ़ाई जारी रखेंगे। माँ-बाप का संघर्ष व्यर्थ नहीं जाने देंगे।'

'रमेश, हमारी नौवीं कक्षा तक की पढ़ाई आसानी से पूर्ण हुई, क्योंकि अध्यापक अच्छे थे। दसवीं कक्षा के लिए बोर्ड परीक्षा है। परीक्षा केंद्र भी दूर है, इसलिए हमें अभी से तैयारी करनी पड़ेगी।'

'हीरा, हमारी दसवीं कक्षा की पढ़ाई सच में पूर्ण होगी?'

'रमेश, कुछ समय पहले तू ही मुझे हिम्मत दे रहा था। अब ऐसी बातें क्यों कर रहा है? सुल सर हमारे आदर्श हैं। पढ़ाई जरूर पूर्ण होगी। हार मत मान। हमें सिर्फ़ पढ़ाई पर ध्यान देना है। जल्दी चल, सुल सर इसी रास्ते से जाते हैं।'

हम तेज रफ़्तार से निकले थे। क्योंकि हम सुले सर से बहुत डरते थे। मन में आदर युक्त डर था। किन्तु जो नहीं होना था वही हुआ। सुले सर सामने से आते हुए दिखाई दिए। उन्होंने नज़दीक आते ही गंभीर आवाज में कहा, 'रमेश, पढ़ाई पर ध्यान दो। परीक्षा करीब आई है।'

'जी, गुरु जी।'

'रमेश, कोई दिक्कत है तो जरूर बताना।'

'हाँ, गुरु जी। इतने में सुले सर को गाँव के बुजुर्ग व्यक्ति दिखाई दिए। वे उनके तरफ निकल गए।'

हम भी निकल पड़े। रास्ते से चलते-चलते चर्चा चल रही थी हमारी। इतने में मैंने अचानक चिंता भरे स्वर में कहा, 'हीरा, दसवीं की परीक्षा नज़दीक है। परीक्षा केंद्र दूर है। पेपर भी ज़्यादा हैं। इतने दिनों का खर्चा! साथ ही बाढ़ की वजह से निर्माण हुई बिकट परिस्थिति। कैसे जाएँगे परीक्षा के लिए?'

'रमेश, बाढ़ की समस्या ज़्यादा दिन नहीं रहेगी। तकरीबन तीन महा से हम उसी समस्या से संघर्ष कर रहें हैं। साथ ही पैसों का जुगाड़ भी हो जाएगा। इसके बारे में ज़्यादा मत सोच। रास्ता निकलेगा।'
'हीरा, हम परीक्षा के कुछ दिन पहले कोई न कोई काम करेंगे। जिससे कुछ पैसा मिल जाएगा।'

'रमेश, जो तुझे सही लगे। अब चल, माँ राह देख रही होगी।' दिन गुजर गए, परिस्थिति बदलती गई। गाँव में भरा गोदावरी का पानी निकल गया। स्कूल में रहने वाले लोग अपने-अपने घर की तरफ दौड़ने लगे। सभी का बहुत नुक्सान हुआ था। वे घर रहते हुए भी बेघर हो गए थे। कलेक्टर के अधिपत्य में गाँव का सर्वे हुआ। किन्तु जरूरतमंद व्यक्ति को मद नहीं मिली। इसमें भी सिफारिश चली। गरीब लोगों पर अन्याय हुआ। तब भी गरीब लोग हारे नहीं। ज़िंदगी से संघर्ष करते रहे। और उन्होंने फिर से घर बसाए।

परीक्षा कल थी। एडमीशन कार्ड लाने हेतु जाना था। मैं स्कूल की तरफ

निकल चुका था। उतने में मुझे हीरा दूसरे के खेत में काम करते हुए दिखाई दिया। मैंने दूर से ही आवाज दी, 'हीरा, कल पेपर है। एडमीशन कार्ड नहीं लाना है।'

'रमेश, मैं भूल ही गया था एडमीशन कार्ड लाना। थोड़ी देर रुक। अभी चलते हैं।'

'हीरा, जल्दी चल। सुले सर इसी रास्ते से बाइक से जाते हैं। उन्हें पता चला कि हमने अभी तक एडमीशन कार्ड नहीं लिया है तो वे बहुत डाँटेंगे। इतने में उनकी बाइक नज़दीक आकर रुक गई। उन्होंने कठोर आवाज में कहा, 'रमेश, कहाँ घूम रहे हो? कल पेपर है, एडमीशन कार्ड नहीं लेना है।'

'गुरु जी, एडमीशन कार्ड लेने के लिए ही जा रहा हूँ।'

'तुम्हारी आँखें इतनी लाल क्यों हैं? रात को ज़्यादा पढ़ाई की है।'

'हाँ, गुरु जी।'

'परीक्षा केंद्र पर जाने के लिए पैसे हैं न?'

'हाँ, हैं गुरु जी। नहीं होते तो आपसे ही माँगने वाला था। सर, अब हम निकलते हैं।'

स्कूल की तरफ हम रफ्तार से निकले। तब भी हमारी आपस में चर्चा शुरू थी। स्कूल नज़दीक ही था। इतने में हीरा ने मुझे पूछा, 'रमेश, आपने सुले सर से झूठ क्यों बोला?'

'हीरा, मैंने क्या झूठ बोला?'

'वही, रात भर पढ़ाई।'

'हीरा, मैं किसी के लिए बोझ नहीं बनना चाहता।'

'रमेश, चल, चल बस कर। कल पेपर है।'

हमारे सभी पेपर अच्छी तरह से हो गए। अब हम रिजल्ट की राह देख रहे थे। समय किस तरह से बीता पता नहीं चला। वह दिन भी आया। दसवीं का रिजल्ट घोषित हुआ। मेरे दिल की धड़कनें बढ़ने लगी थीं। मैं उत्तीर्ण होऊँगा क्या? यह चिंता सता रही थी। इतने में मोहल्ले के बच्चों का शोर सुनाई दिया कि हीरा अच्छे प्रतिशत लेकर उत्तीर्ण हुआ। मैं भी उत्तीर्ण हुआ। लेकिन जो नहीं होना था वही हुआ। हमारा करीबी दोस्त प्रशांत पास नहीं हुआ। उसे परिस्थिति ने तो साथ नहीं दिया और वक्त ने भी साथ छोड़ दिया। उसे हमने बहुत समझाया किन्तु वह हादसे से बाहर नहीं निकला। वह बहुत दुःखी रहता था। ज़िंदगी में मैं असफल हो गया, ऐसा उसे लग रहा था। इतना समझाने के बावजूद भी। उसने पढ़ाई छोड़ दी।

हीरा के माँ-बाप बहुत खुश थे। क्योंकि हीरा अच्छे अंक लेकर उत्तीर्ण हुआ था। आगे तुझे किस क्षेत्र में जाना है? माँ-बाप बार-बार पूछ रहे थे। हीरा शांत था, कुछ नहीं बोल रहा था। उनकी सब चर्चा मैं सुन रहा था। क्योंकि मेरा घर पास था। थोड़ी देर बाद मैं घर से बाहर आया और आवाज दी, 'हीरा, बाहर आ। घूमकर आते हैं। खाना हज़म हो जाएगा।'

'रमेश, अभी आया। दो मिनट रुक। मैं लकड़ी लेता हूँ। रात का समय है। बाहर लावारिस कुत्ते भी ज़्यादा हैं।'

'हीरा, एक बात पूछूँ।'

'हाँ, पूछो न, रमेश।'

'हीरा, तू मेरा साथ देगा न?'

'जरूर दूँगा, रमेश।'

'हीरा, अब किस शाखा में एडमीशन लेना है?'

'किसी न किसी शाखा में लेंगे, रमेश।'

'हीरा, पढ़ने के लिए बहुत पैसे लगते हैं। इसके संदर्भ में भी सोचना पड़ेगा।'

'रमेश, हम कला शाखा में जाएँगे।'

'कला शाखा में क्यों हीरा?'

'रमेश, वहाँ ज़्यादा खर्चा नहीं लगता है।'

'हीरा, उस पर नौकरी मिलेगी?'

'रमेश, पर्मानेंट नौकरी का तो नहीं बता सकता किन्तु कुछ न कुछ काम जरूर मिलेगा।'

'हीरा, हमें जल्दी से जल्दी नौकरी करनी है। इसलिए हम कोई व्यावसायिक कोर्स करें तो।'

'रमेश, कौन सा व्यावसायिक कोर्स?'

'हीरा, एम.सी.व्ही.सी.कोर्स (व्यावसायिक कोर्स) कैसा रहेगा?'

'रमेश, वही कोर्स करेंगे। अब घर चल। बहुत समय हुआ है।' कालांतर से मैंने और हीरा ने एडमीशन लिया। हँसते-खेलते दिन बीत गए, पता तक नहीं चला। ग्यारहवीं, बारहवीं तक की शिक्षा पूर्ण हुई। फिर वही प्रश्न आगे कौन-सी पढ़ाई करनी है? पढ़ाई करने के लिए पैसे तो लगते वाले थे। सिर्फ़ फर्क इतना था कि शिक्षा क्षेत्र के अनुसार कम ज्यादा पैसे देने पड़ते थे।

मैं आगे पढ़ पाऊँगा क्या? यह सवाल मुझे बहुत परेशान कर रहा था। परिवार को मैं संकट में नहीं डालना चाहता था। कुछ दिनों से चिंता मुझे बहुत खा रही थी। हीरा के पिता जी से मेरी मुलाकात हुई। उनसे चर्चा होने बाद मैंने आगे पढ़ने की ठान ली। वार्तालाप करते-करते हम घर की तरफ निकल पड़े। घर के बाहर ही खड़ा हीरा दिखाई दिया। मैंने हीरा से उत्साहपूर्ण भाव से कहा, 'मैं बी.ए. में एडमीशन ले रहा हूँ। तू हीरा।'

'मैं भी वहीं लूँगा, रमेश। हीरा ने हँसकर कहा।'

'हीरा, इसमें खर्चा भी कम है। पढ़ाई के साथ-साथ हम कुछ काम भी कर सकते हैं। इसी से खर्चा निकलेगा।'

'रमेश, तुझे जो अच्छा लगेगा वही करेंगे।' समय के साथ हालात बदल गए। और हमारी स्नातक की पढ़ाई पूर्ण हुई। पढ़कर क्या बनना है? कुछ

तय नहीं था। सिर्फ़ पढ़ाई जारी थी। बहुत दिन के पश्चात् यानी तकरीबन पाँच माह गुजरने के पश्चात् एक दिन रमेश का फोन आया। वह दुःख भरे स्वर में कहने लगा, 'हीरा, हमारी पढ़ाई करने की हैसियत नहीं है। हमें जो पढ़ना है वह हम पढ़ ही नहीं पाए और आगे भी पढ़ नहीं पाएँगे, पैसों के कारण।'

'रमेश, हैसियत पैसों से नहीं, ज्ञान से तय होती है।'

'हीरा, यह सरासर झूठ है। यह सच होता तो हम रुचि के अनुसार पढ़ पाते।'

'रमेश, समाज के कई बच्चे हैं जो पढ़ाई नहीं कर पा रहे हैं। हम कुछ न कुछ तो पढ़ रहे हैं।'

'हीरा, आगे की शिक्षा संदर्भ में क्या सोचा है? अब तक तो हुआ आगे?'

'रमेश, हम हार नहीं मानेंगे। शिक्षा अर्जित करेंगे। खर्चा कितना भी क्यों न हो।'

'हीरा, मैंने सुना है कि विश्वविद्यालय में पढ़ाई बहुत अच्छी तरह से होती है। अनेक रचनाकारों से वार्तालाप होता है। सही ज़िंदगी वहीं समझ आती है। हमारे कॉलेज के कुछ लड़के हैं वहाँ। उनके सहारे हम वहाँ रहेंगे। मैं जाकर आता हूँ विश्वविद्यालय में। खुद का, परिवार का ख्याल रखना हीरा। बहुत सी चर्चा हुई। अब मैं फोन रखता हूँ।' कई साथी विश्वविद्यालय में पढ़ाई के लिए दाखिल हुए। हमें विश्वविद्यालय का माहौल बहुत बढ़िया लगा। अपने-अपने रुचि के अनुसार सभी ने एडमीशन लिए। हीरा और मैंने पैसों के हिसाब से एम.ए. में एडमीशन लिया। क्योंकि वहाँ ज़्यादा खर्चा नहीं था।

सभी साथी पढ़ाई में व्यस्त रहते थे। किसी को कोई दिक्कत होती थी तो सभी मदद करते थे। पढ़ाई में किस तरह समय बीत रहा था समझ में नहीं आता था। हीरा पुराना ही साथी था किन्तु विश्वविद्यालय में विवेक, औचित्य, संजय, सूरज, दीपक, सुमन, ज्योत्सना इत्यादि साथी मिले। इनमें से विवेक और ज्योत्सना मेरे बहुत करीबी साथी थे। सुख-दुःख मैं उन्हें बताता था। आज मैं जो कुछ भी हूँ उन्हीं के वजह से। हम सब मिलजुलकर रहते थे। एक दूसरे से सुख-दुःख बाँटते थे। खून के रिश्ते से भी गहरे रिश्ते बने थे हमारे। शिक्षा पूर्ण होने के पश्चात् सब अलग-अलग हो जाएँगे तो अवस्था क्या होगी सभी की? यही चिंता सभी को सताती थी। सभी ने अलग-अलग विषय में उपाधियाँ हासिल की। नेट, सेट जैसी परीक्षा उत्तीर्ण हुए। क्योंकि अनेक साथियों का सपना प्राध्यापक बनना था। उन्हीं के कारणवश मेरी शिक्षा जारी थी। उसी समय हमारे समूह में 'सुजाता' नामक लड़की शामिल हुई। क्योंकि उसे हमारे सभी साथियों के विचार अच्छे लगे। वह बहुत शांत स्वभाव की लड़की थी। उसका हर एक शब्द बहुत कीमती है ऐसा उसके बोलने से लगता था। वह किसी से भी अनावश्यक बातें नहीं करती थी। कई माह गुजरने के पश्चात् वह बातें करने लगी। वह भी कम ही। जिस दिन मैंने उसे देखा उसी दिन से मैं उसे चाहने लगा था। मैं दिल दे बैठा था। यानी मैं प्रेम करने लगा था। मैं उसके साथ जीवन बिताना चाहता था। उसे जीवन साथी बनाना चाहता था। किन्तु प्रेम का इजहार कैसे करूँ? समझ नहीं आ रहा था। डर भी बहुत लग रहा था, उसके अनेक कारण थे। एक दिन मैंने हिम्मत करके ज्योत्सना बहन से कहा, 'मुझे आपसे कुछ महत्त्वपूर्ण बातें कहनी हैं। समय है आपके पास।'

'हाँ, कहो रमेश।'

'मैं सुजाता को चाहने लगा हूँ। उससे प्रेम करने लगा हूँ। सुंदरता देखकर नहीं, स्वभाव देखकर कह रहा हूँ। किन्तु मुझमें बोलने की हिम्मत नहीं है।'

'सुजाता तुझसे प्रेम करती है।'

'पता नहीं।'

'कुछ दिनों के बाद मैं सुजाता को पूछूँगी। मुझे कुछ काम की वजह से बाहर जाना है, चलती हूँ मैं।'

मैं सिर्फ़ सुजाता के बारे में सोचता था। पढ़ाई में मन नहीं लग रहा था। मैं बेचैन था। सिर्फ़ प्रेम हासिल करना मेरा लक्ष्य बन गया था। अब करियर के बारे में भी सोचना छोड़ दिया था मैंने। मैं नशे में था प्रेम के। इसके अतिरिक्त मुझे कुछ भी सूझ नहीं रहा था। कुछ माह गुजरने के पश्चात् एक दिन ज्योत्सना मुझसे बाज़ार में मिली। मुझे नज़दीक बुलाया। और नाराज स्वर में कहने लगी, 'रमेश, वह स्पष्ट रूप से कुछ भी नहीं बोली। शायद वह तुमसे प्रेम नहीं करती।'

'किन्तु ज्योत्सना, मैं उसे बहुत चाहता हूँ।'

'रमेश, तुम्हारे मन में जो कुछ है, उसे स्पष्ट बताओ। न व्यक्त होने से अच्छा है, कभी भी व्यक्त होना। अब मैं निकलती हूँ।'

'ज्योत्सना, मैं जो दिल में है सब उसे बताऊँगा।'

मैं दिन-ब-दिन ज़्यादा सोच में डूब रहा था। परिणाम स्वरूप निरंतर दुःखी रहने लगा था। अकेले में रहना मुझे अच्छा लग रहा था। कई प्रश्न मन में उपस्थित हो रहे थे। सुजाता ने मेरे प्रेम को नहीं स्वीकारा तो मैं कैसे जिऊँगा? यह चिंता मुझे बहुत सता रही थी। अब मुझसे बर्दाश्त नहीं हो रहा था। मैंने तय किया था कि जो दिल में है सब उसके सामने बयाँ करना है। आगे जो होगा उसे स्वीकार करने की हिम्मत मैंने खुद में निर्माण की थी। मैं जिस दिन की राह देख रहा था वह दिन आया। दो-तीन माह के पश्चात् विश्वविद्यालय में मुझे सुजाता दिखाई दी। मैंने घबराते हुए कहा, 'सुजाता, मुझे आपसे बहुत दिन से एक बात कहनी है किन्तु मैं कह नहीं पा रहा हूँ। लेकिन आज मैं किसी भी हालत में बोलने वाला हूँ। अभी आपके पास समय है?'

'हाँ, समय है रमेश। बोलो।'

'मैं तुमसे?'

'तुमसे क्या? स्पष्ट बोलिए। डरिए मत। मैं बुरा नहीं मानूँगी। जो मन में है बोल दीजिए।'

'मैं तुमसे प्रेम करता हूँ।'

'किन्तु मैं नहीं करती।'

'आखिर क्यों? मेरे पास कुछ भी नहीं इसलिए।'

'ऐसा कुछ नहीं है।'

'मैं तुम्हें दिल से चाहता हूँ। हाँ, मेरे पास नौकरी, प्रॉपर्टी नहीं है। तब भी मैं तुम्हें ज़िंदगी भर खुश रखूँगा। मुझ पर विश्वास करो।'

'आप भी मुझे अच्छे लगते हो। मैं भी तुमसे प्रेम करती हूँ। लेकिन?'

'लेकिन क्या? बोलिए आप।'

'आप की जाति। आप सवर्ण जाति से हैं, मैं निम्न जाति से हूँ। समाज, परिवार नहीं स्वीकार करेगा मुझे।'

'मैंने प्रेम जाति देखकर तो नहीं किया था।'

'मेरे कहने का मतलब यह नहीं था। जाने दीजिए विषय को मत बढ़ाइए। समय आने पर मार्ग निकालेंगे। अभी आप पढ़ाई पर ध्यान दीजिए। मुझे अब शहर में पुस्तकें खरीदने जाना है। मैं चलती हूँ।'

मैं छात्रावास के तरफ निकल पड़ा, अभी भी चिंता में ही था। सिर्फ़ प्रश्न बदले थे चिंता वही थी। इतने में विवेक बाइक से जाते हुए दिखाई दिया। मैंने जोर से आवाज दी, 'विवेक, कुछ काम से जा रहे हो।'

'नहीं रमेश। बहुत दिन हुए आप दिखे नहीं। दिखे भी तो बातचीत नहीं हुई व्यस्तता की वजह से। चलो, बैठते हैं कुछ देर के लिए गार्डन में।'

'विवेक, ज़िंदगी में पर्मानंट नौकरी बहुत मायने रखती है यार। इसके बिना कोई महत्व नहीं देता है। वर्तमान में कई लोग पढ़े लिखे हैं किन्तु ज़्यादातर लोग बेरोजगार हैं। एम.पी.एस.सी. हो या यू.पी.एस.सी. या कोई दूसरी नौकरी, सभी में भ्रष्टाचार हो रहा है। परीक्षा के पहले पेपर आउट हो रहे हैं। पैसे देकर नौकरियाँ हासिल की जा रही हैं। गरीब बच्चे पढ़ाई तो करते हैं, लेकिन पैसे कहाँ से लाएँगे? यह व्यवस्था बदलनी चाहिए। हमारा ही उदाहरण लीजिए, हमारे पास योग्यता है किन्तु नौकरी नहीं। क्योंकि हमारे पास पैसा और बड़े लोगों से पहचान नहीं है। ज्ञान है तो उसे कोई महत्व नहीं देता।'

'रमेश, छोड़ न यार।'

'विवेक, क्यों छोड़ूँ? बहुत से सहायक प्राध्यापक के साक्षात्कार कैसे लिए जाते हैं? उसमें क्या पूछते हैं? पता है न तुझे।'

'रमेश, परिवर्तन जरूर होगा। सब्र कर।'

'विवेक, परिवर्तन कब होगा? हमरी जैसी कई पीढ़ियाँ बर्बाद होने के बाद। अरे, बहुत दुःख होता है, योग्यता के बावजूद भी नौकरी नहीं है। प्रत्येक माँ-बाप के सपने होते हैं बच्चों से। उन्हें तो नहीं कह सकते कि नौकरी के लिए पैसे चाहिए। क्योंकि उन्होंने अनपढ़ होकर भी हमें पढ़ाया। वे कई बार हमारी खातिर भूखे पेट सोए हैं। उन्हें कभी दुःख नहीं देना है। मैं उन्हें सुख नहीं दे सकता तो दुःख क्यों दूँ? मेरी तो दसवीं कक्षा में ही हैसियत की। व्यवस्था ने मेरी ही नहीं, मेरे जैसे कई बच्चों की हैसियत तय हुई। वर्तमान में भी कई बच्चे विज्ञान, संगणक शास्त्र, वाणिज्य या ऐसे ही कुछ महत्त्वपूर्ण शाखा में जाना चाहते हैं किन्तु हैसियत बता देती है कि आप उधर नहीं जा सकते। क्योंकि आपके पास इतना बोझ उठाने की ताक़त नहीं है। बोझ ज्ञान का नहीं, पैसों का। मेरी तो कल भी हैसियत तय हुई और आज भी हो रही है। विवेक, बहुत से गंभीर विषय पर चर्चा हुई। अब निकलते हैं छात्रावास की ओर।'

चार-पाँच माह गुजर चुके थे। सुजाता से मेरी मुलाकात नहीं हुई थी। उसे देखने हेतु आँखें तरस रहीं थीं। मन में उदासी छाई हुई थी। चिंता तो थी ही। एक दिन अचानक सुजाता ग्रंथालय में दिखाई दी। मैं कुछ देर सिर्फ़ एकटक उसे देखता ही रहा। वह आँखों के सामने निरंतर खड़ी रहे, यह लग रहा था। मैं मन ही मन बहुत खुश हुआ। जैसे मैंने कोई जंग जीती हो। कुछ क्षण बाद मैंने उसे इशारों से बाहर बुलाया। वह बाहर आने के बाद मैं थोड़ी देर ठहरा। उसे आँखों में समाया। कुछ समय बितने के पश्चात् उत्साहपूर्ण भाव से कहा, 'सुजाता, हमें शादी करनी चाहिए।'

'रमेश, आप भी न मुझे और समय चाहिए। मुझे परिवार के सदस्य को समझाना पड़ेगा। मुझे काम है, मैं चलती हूँ।'

मैं उसी जगह पर शांत खड़ा था। वह जाने के बाद भी। मुझे कुछ भी समझ नहीं आ रहा था। अब चिंता पहले से ज़्यादा बड़ी थी। कुछ समय बाद मैं ग्रंथालय में पढ़ने हेतु निकल पड़ा। मेरा मन नहीं लग रहा था। मैं दिन भर कुछ नहीं कर पाया। मैं रात को रेल्वे स्टेशन पर मित्र को लाने हेतु बाइक पर निकल पड़ा। मैं वहाँ समय के पहले पहुँचा। एक कुर्सी पर बैठ गया। वहाँ सुजाता भी आई हुई थी, कुछ काम से। मुझे देखकर वह मेरे पास आई। कुछ क्षण रुकी और दुःखी स्वर में नरवस होकर कहने लगी, 'रमेश, मुझे आप से महत्त्वपूर्ण बात करनी है।'

'सुजाता, बताओ।'

'मैं आपसे शादी नहीं कर सकती। मेरे परिवार वाले जो फैसला लेंगे वही मुझे मंजूर है।'

'मैं कैसे रहूँ आपके बिना? आपके परिवार के सदस्यों के विचार में परिवर्तन करो न। वे शिक्षित हैं। जाति, धर्म को वे नहीं मानेंगे।'

'मैंने उनके विचार में परिवर्तन करने की कोशिश की किन्तु वे खुद के विचार पर कायम हैं।'

'माँ से एक बार फिर से बोलकर देखिए।'

'माँ को बी.पी. है। माँ को कुछ हुआ तो?'

'आप माँ से फोन लगाकर दीजिए। मैं उनसे बात करता हूँ।'

'हैलो? नमस्ते काकी।'

'हाँ, नमस्ते। आप कौन? आपका नाम।'

'मैं रमेश। सुजाता का मित्र।'

'हाँ, पता है। आप कहाँ से हो।'

'महाराष्ट्र से।'

'अभी क्या करते हो?'

'पीएच.डी. कर रहा हूँ। नेट, सेट उत्तीर्ण हूँ।'

'यानी बेरोजगार हो। आप किस जाति से हैं?'

'आप शिक्षित होकर भी ऐसे प्रश्न पूछ रही हैं यह आप को शोभा नहीं देता।'

'बेटा, मुझे समाज में रहना है। साथ ही दूसरी बेटी की शादी भी करनी है।'

'मैं सोच में पड़ा। कुछ देर चुप रहा। जोर से साँस ली और कह दिया कि मैं सवर्णजाति से हूँ। और तुरंत फोन रख दिया। वहाँ से निकल पड़ा। मित्र को लेकर छात्रावास आया।' मैं मानसिक रुग्ण बनते जा रहा था। मेरी ज़िंदगी खत्म हुई, ऐसा लग रहा था। मैं ज़िंदगी से निराश हूँ। मुझे जीवन की बजाय मृत्यु अच्छी लग रही थी। मैं माँ-बाप के सपने भूल गया था। मुझे सुजाता से बोले बगैर चैन नहीं था। मैंने उसे फोन किया। उधर से आवाज आई, 'रमेश, मुझे भूल जाओ। आपको मुझसे भी अच्छी लड़की मिलेगी।'

'मैं सिर्फ़ शांत रहा। कुछ भी बोल नहीं पाया। कुछ समय के पश्चात् फोन बंद हुआ। शरीर, मन अच्छा रहे इसलिए मैं हर दिन सुबह-सुबह घूमता था। आज भी घूमने के लिए निकला। किन्तु अब शरीर एवं मन रोगी बन चुके थे। मैं बहुत डिप्रेशन में आ गया था। सुबह-सुबह मुझे विवेक दिखाई दिया। वह भी व्यायाम कर रहा था। हम दोनों घूमने हेतु निकल पड़े। कुछ समय पश्चात् मैंने नरवस आवाज में कहा, 'विवेक, मेरी सुजाता से शादी नहीं हो सकती।'

'क्यों? क्या हुआ?'

'विवेक, मेरे पास क्या है? पैसा, नौकरी, अच्छा घर इनमें से कुछ भी नहीं।'

'रमेश, प्रेम में यह मायने नहीं रखता।'

'विवेक, सही में वही मायने रखता है। सुजाता गंभीर विषय पर खामोश रहती थी, उसकी खामोशी सब कुछ कह जाती थी। क्योंकि वह जिस लड़के से शादी कर रही है उसके पास नौकरी, पैसा, बड़ा घर, मोटरगाड़ी, आराम की जिंदगी इत्यादि है। और महत्त्वपूर्ण बात लड़का बिरादरी का है। मेरे पास उनमें से कुछ भी नहीं है। है तो सिर्फ़ ज़िंदगी भर संघर्ष।'

'रमेश, अतीत को भूल जा। मुझे पहले जैसा आनंदविभोर रमेश चाहिए। तुझे खुश रहना है माँ-बाप की खातिर। उसका अंतिम निर्णय क्या है? पूछ ले। बातचीत में समय जल्दी गुजरा। कुछ समझ में भी नहीं आया। अब निकलते हैं।' दोपहर के बारह बजे थे। धूप बहुत थी। मैं अकेला रास्ते से जा रहा था। सुनसान था रस्ता। इतने में स्कूटर पर जाती हुई सुजाता दिखाई दी। शायद वह पीएच.डी. विभाग में ही जा रही थी। उसने मुझे देखकर भी अनदेखा किया। मैंने जोर से आवाज दी। वह रुकी। किन्तु गुस्से में दिखी। मैंने निःस्वार्थ भाव से कहा, 'सुजाता, तुम खुश रह सकती हो तो बिंदास शादी करो। तुम्हारी खुशी में मेरी खुशी है। बस, तुम खुश रहो। तुम्हारी खुशी की खातिर मैं तुम्हें भूलने की कोशिश करूँगा। कोशिश नहीं, भूलूँगा ही। इतना कहकर मैं वहाँ से निकल पड़ा। पहले जैसा अकेला ही।'

कई दिन पश्चात् सुजाता विश्वविद्यालय में आने लगी। मुझे देखकर जानबूझकर दूसरे रास्ते से जाने लगी। उसे लग रहा था कि मैं उसके विवाहित जीवन में दरार बनूँगा। वह मुझे घृणा की नज़र से देख रही थी। उसने एक दिन इतना तक कह दिया कि मुझसे बात मत करो। मैं खुश रहना चाहती हूँ। आप मेरी बर्बादी का कारण मत बनो। यह सुनकर बहुत दुःख हुआ मुझे। सब साथी छुट्टी के दिनों में अपने अपने गाँव गए थे। मैं वहीं था छात्रावास में। सोच में डूबा हुआ। मुझे बहुत बुरा लग रहा था। अकेलापन महसूस हो रहा था। दिल में बहुत वेदना थी। मुझे दुःख किसी से साझा करना था। यानी दुःख बाँटना था। जिससे दिल का बोझ हल्का हो सके। मैंने तुरंत विवेक को फोन किया। उधर से प्रेम भरी आवाज आई, 'रमेश, बोल।'

'विवेक, क्या कर रहा है?'

'कुछ नहीं, बैठा हूँ रमेश। तुमने सुजाता से अंतिम निर्णय पूछा क्या?'

'विवेक, दुनिया मतलबी है। समय-समय पर बदलती है। माँ-बाप का प्रेम ही सच्चा प्रेम होता है। सुख और दुःख में साथ देता है। कभी बदलता नहीं! बाकी प्रेम समय के साथ बदलता है। समाज अपने हिसाब से हैसियत तय करता है इंसान की। मेरी भी शिक्षा, नौकरी और यहाँ तक कि प्रेम में भी हैसियत तय की समाज ने। माँ हर बार कहती थी कि दुनिया में हर कोई अपने हिसाब से हैसियत रखता है। लेकिन वह सब गलत है। मनुष्य की हैसियत सही में तब समझ में आती है जब वह खुद की नजर में गिरता है।'

'हाँ, सही है रमेश। माँ सही कहती है। समाज क्यों हमारी हैसियत तय करे, किन्तु हम खुद की नज़र में नहीं गिरे हैं तो हमारी हैसियत है।'

'विवेक, मैं भूल जाऊँगा बीते हुए कल को। वह खुश है इसके अलावा मुझे कुछ नहीं चाहिए। किसी को हासिल करना प्रेम नहीं होता। मैंने उसके शरीर से प्रेम नहीं किया था। उनके स्वभाव, मन से प्रेम किया था। प्रेम में त्याग, समर्पण मायने रखता है। मैं भी वही करूँगा। लेकिन अफ़सोस इस बात का है कि वह शिव, महात्मा फुले, साहू, बाबा आंबेडकर आदि के विचारों को मानती थी, किन्तु आचरण में क्यों नहीं ला सकी?'

'रमेश, अब भूतकाल को भूलना यार! तू अब ज़िंदगी की नई शुरुआत कर। तू अपने जीवन में खुश रह और उसे भी रहने दो। तुम्हारे प्रेम का उसे अहसास ज़िंदगी भर रहेगा। इसी में तुम्हारे प्रेम की जीत है। अब तुझे माँ-बाप के लिए जीना है। वही तुम्हारा सपना था।'

'हाँ, विवेक मैं माँ-बाप के लिए जिऊँगा। ज़िंदगी में हार नहीं मानूँगा। खुद में काबिलियत बनाऊँगा। इस भ्रष्ट व्यवस्था से संघर्ष करता रहूँगा। सिर्फ़ माँ-बाप की खातिर। विवेक, माँ का फोन आ रहा है, मैं फोन रखता हूँ। तू भी खुद का, परिवार का ख्याल रखना। मिलते हैं जल्दी से . . .

डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर
मराठवाड़ा विश्वविद्यालय,
औरंगाबाद-431004 (महाराष्ट्र)

मैं ठीक हूँ न

मूल : रूमी लस्कर बोरा
अनु. : विजय कुमार यादव

विजय कुमार यादव

जन्म – 31 अगस्त 1960।
जन्म स्थान – गरीफा (पश्चिम बंगाल)।
शिक्षा – बीएससी.,एम.ए.।
रचनाएँ – पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित।
विशेष – अनुवाद में विशेष कार्य।

रूमी लस्कर बोरा

जन्म – 1 मार्च 1970।
जन्मस्थान – नागौन (असम)।
रचनाएँ – 24 पुस्तकें प्रकाशित।
सम्मान – असम साहित्य सभा सहित अनेक संस्थाओं द्वारा सम्मानित।

मुंबई जाने वाली 'दादर एक्सप्रेस' किसी कारणवश आज दो घंटे देर से रवाना होगी। अभी-अभी यह घोषणा हुई है। यह भी एक बड़ा उबाऊ समय होता है। विशेषकर ट्रेन से कहीं जाना रहने पर निर्दिष्ट समय से आधा घंटा पहले ही स्टेशन पहुँच जाने का नियम है। यदि ट्रेन समय से रवाना हुई तो बहुत अच्छा। लेकिन यदि किसी कारण विलंब हुआ तो एक उबाऊ यंत्रणा सहनी पड़ती है। बीच-बीच में रेल की पटरियों के बीच से आ रही मल-मूत्र की दुर्गंध से मुझे उबकाई आने लगती है। लेकिन कोई उपाय नहीं है। इस तरफ आने पर घर से निकलते समय भोजन करने की इच्छा नहीं होती है। लेकिन बाद में भूख से पेट में मरोड़ होने लगती है। यह जानने के बाद कि ट्रेन दो घंटे देर से छूटेगी, मेरी भूख और बढ़ गई।

एक विशेष रिसर्च के काम से पापा यानी मेरे पिताजी मुंबई जाएँगे। हो सकता है कि उन्हें वहाँ एक-डेढ़ माह रहना पड़ जाए। इसके पहले पिताजी से मेरा इतना लंबा विच्छेद नहीं हुआ था। उन्हें विदा करते वक्त मेरा मन और भी खराब हो जाएगा, इसलिए पिताजी ने ही मुझे स्टेशन आने से मना किया था। हालाँकि मैं जानती हूँ कि मुझसे ज्यादा पिताजी को ही को बुरा लगेगा। फिर भी मेरी जिद के आगे पिताजी की एक न चली और उन्होंने मुझे अपने संग स्टेशन जाने की अनुमति दे दी। हाँ, यह भी ठीक है कि पिताजी को एक बात का पता नहीं है कि यूनिवर्सिटी में पढ़ाई कर रहे अपने सहपाठी पलाश के प्रति मेरे मन में कुछ-कुछ हो रहा है। पलाश के साथ मेरी घनिष्टता देखकर दीपंकर आजकल मुझसे कन्नी काट रहा है, अर्थात् मुझसे उसकी दूरी कुछ बढ़ गई है। मैं पलाश को पसंद करती हूँ। पलाश भी मुझे पसंद करता है। लेकिन आज तक हमने 'प्रेम करती हूँ या प्रेम करता हूँ' जैसे वाक्य का परस्पर आदान-प्रदान नहीं किया है। लेकिन मैं यह जानती हूँ कि अगर मैं पलाश को कहूँ कि आज ब्रह्मपुत्र के किनारे आना तो वह निश्चित रूप से समय से पहले ही आकर खड़ा मिलेगा। यदि उससे कहूँ-'चिड़ियों के झुंड की तरह उड़कर बहुत दूर जाने का मन कर रहा है।' तो वह भी तुरंत कहेगा, 'ओ, रियली? मेरा मन भी उड़ने को कर रहा है। और वह भी तुम्हारी जैसी बांधवी के संग। ओह कितना मजा आएगा! जानती हो, अलेक्जेंडर सेल्किर्क की तरह कहने का मन करता है-हैड आइ विंग्स ऑफ डव।' इन बातों को एक ही साँस में कहकर मुस्कुराते हुए मुझे देखता है। उसे इस तरह देखते ही जैसे कृष्णचूढ़ा के रंग आकर मेरे गालों पर चिपक जाते हैं। आज भी सुबह बात करते हुए मैंने पलाश से कहा था-'पिताजी को छोड़ने स्टेशन जाऊँगी।' यह सुनते ही उसने उत्साहित होकर कहा-'ऐसा है क्या? मैं भी जा सकता हूँ।'

मैंने यह नहीं पूछा-'क्यों?' इस तरह पूछने पर पलाश कहेगा-'ऐसे ही।' वैसे मैं भी पलाश के बहुत से 'क्यों' के उत्तर 'ऐसे ही' कहकर देती हूँ, लेकिन हम दोनों यह भली-भाँति जानते हैं कि इन 'क्यों' और 'ऐसे ही' के बीच हमारे प्रेम का गूढ़ार्थ छिपा हुआ है। 'ओक. . . ओक. . .'। इस्स... मुझे उल्टी आ रही है। हवा के झोंके के साथ रेल की पटरियों के बीच से आ रही मल-मूत्र की दुर्गंध जैसे मेरे नाक-मुँह में समा गई।

थू. . . थू. . . थू -'बेटी, न हो तो तुम मम्मा के साथ चली जाओ। इस तरह रहने पर तुम्हें दिक्कत होगी।' मेरी हालत देख पिताजी बोले। मैं तत्काल अपने को सँभालते हुए बोली-'नहीं, पिताजी। कोई दिक्कत नहीं हुई है मुझे।' यह कहकर उबकाई को जबर्दस्ती दबाने की कोशिश की। भूख भी लगी थी। पलाश आया या नहीं, यह देखने के लिए इधर-उधर नजर दौड़ाई। कहीं नहीं दिखा। फोन करूँ क्या? नहीं, पिताजी की गिद्ध-दृष्टि मुझ पर टिकी हुई है। इसलिए इस समय फोन करना ठीक नहीं होगा। दूसरे लोगों के साथ फोन पर जिस तरह बात करती हूँ, पलाश के साथ फोन पर बात करते समय मेरे चेहरे के भाव शायद बदल जाते हैं। तुरंत पकड़ी जाऊँगी।

'पापा, एक कप चाय मिल जाती तो' मन की असहजता को कम करने के लिए कहा। पिताजी ने तुरंत स्टेशन के भीतर की चाय-कॉफी की दुकान पर ऑर्डर दिया-
'तीन कप कॉफी और तीन पीस केक देना।'

मन की घिन को किंचित भूलकर एक पीस केक के साथ कॉफी का कप पकड़ा ही था कि मेरे कंधे पर झूलते हरे दुपट्टे को किसी ने खींचा। पलटकर देखा कि प्यारे चेहरे वाली एक लड़की खड़ी है। अयत्न और अभाव के कारण खराब हो रहे उसके लाल बाल बिखरे हुए हैं। उसके होंठ और हाथ-पाँव पपड़िया गए हैं। पहनावे के नाम पर उसने अपनी कमर पर पैबंद लगा एक कपड़ा लपेटा हुआ है। मैंने उसकी संपूर्ण देह का मुआयना किया। युवती होने के चिह्न स्पष्ट दिख रहे थे। ऐसे समय में उसे ढकना निहायत जरूरी था। लेकिन अभावग्रस्त लोगों के लिए लज्जा का कोई अर्थ नहीं होता। उसकी देह से यौवन फूट पड़ने को आतुर है, लेकिन वह उसे वस्त्र और अलंकार से सजा नहीं पा रही है। किन्तु यौवन भी उसकी उन्मुक्त देह का उपहास नहीं करना चाहता। अपने समयानुसार तो वह आएगा ही।

एक पल के लिए उसके ऊपर तेज गुस्सा आ गया था। इतने लोग स्टेशन पर घूम-फिर रहे हैं और उसे मेरा ही दुपट्टा खींचने को मिला। मेरा शरीर तो इस आनंद से सिहर उठा था कि पलाश ने आकर मजाक-मजाक में मेरा दुपट्टा खींचा है। लेकिन पलाश की जगह उस लड़की को देखकर मेरे आनंद और उत्साह पर ठंडा पानी पड़ जाने के कारण भी गुस्सा आ गया था। इसका कारण यह था उस समय मेरा मन पलाश को ही खोज रहा था।

'ऐ लड़की! क्या कर रही है?'

उसे डाँटने के बाद एक पाँव पीछे हटते ही उसकी आँखों की करुण याचना मेरी दृष्टि में निबद्ध हो गई।
'बाइदेउ (दीदी), तीन दिन से खाने को कुछ नहीं मिला है। बाइदेउ कुछ खाने को दीजिए। भगवान आपका मंगल करेगा।'

प्राय: सभी भिखारी ऐसा ही कहते हैं। 'भगवान भला करेगा' का आशीर्वाद देते हैं। उस भगवान ने ही उन्हें भिखारी बनाया है, यह भी नहीं सोचते। लड़की के कँपकँपाते हुए होंठ, भय और भूख से सिकुड़े पेट, प्रार्थना करती आँखों की ओर ताक कर मेरा मन द्रवित हो उठा था। वैसे भी उसके छू देने से मुँह में डालने वाले केक में जैसे रेल लाइन से आती दुर्गंध समा गई थी। मैंने कॉफी का कप और केक का टुकड़ा उसकी ओर बढ़ा दिया। बड़ी उत्सुकता से मेरे हाथों से लगभग झपटकर थोड़ी दूर पर नंग-धड़ंग बैठे पाँच और सात वर्षीय छोटे बच्चों के साथ जा बैठी। शायद उसके भाई-बहन होंगे। केक के एक टुकड़े से उसकी या उसके भाई-बहनों की कितनी भूख मिटती, खुदा ही जाने। मुझे बहुत बुरा लगा। धत् तेरे की। खाने का कुछ और सामान खरीदकर उन्हें देना चाहिए था। खाने का मन नहीं करने पर घर की बहुत-सी चीजों को डस्टबिन में फेंक देती हूँ। लेकिन उन डस्टबिनों में फेंका गया खाना भी इन अभागों को नसीब नहीं होता। यह लड़की गंदी जगहों पर खाने लायक सामान खोजती फिरती है। लड़की द्वारा मेरा दुपट्टा खींचकर कुछ खाने की चीज माँगने की घटना से पहले मैंने देखा था कि उसकी ही तरह के कुछ लड़के-लड़कियों को जो ट्रेन की खिड़कियों से बाहर फेंके गए बादाम और बिस्कुट के पैकेट में बची चीजों को खा रहे हैं। यह देख मेरा मन घिना गया था।
'बेटी, जब दो घंटे देर होगी ही तो चलो हम बाहर जाकर एक घंटे के भीतर कुछ खा-पी लें।' मन-प्राण से, चक्षुओं से पलाश की प्रतीक्षा करते रहने का कोई उपाय न देखकर पिताजी की बातों पर सहमति देते हुए कहा, 'हाँ पापा, तो चलो चलते हैं।'

हम अर्थात् पिताजी, माँ और मैं पार्किंग प्लेस में रखी गई गाड़ी की ओर बढ़े।

'क्या खाओगी? आते समय तो कुछ भी नहीं खाया था। हाँ, एक बात और। ट्रेन शाम पाँच बजे छूटेगी। तुम लोगों को उतनी देर तक रहने की जरूरत नहीं है। वैसे भी गुवाहाटी की परिस्थिति देख-सुन ही रही हो। कुछ खा-पीकर गाड़ी से मुझे स्टेशन छोड़कर तुम लोग घर चली जाओ। समझ लिया न बेटी?'

'मेरे रवाना होने तक तुम लोगों के यहाँ रहने पर काफी देर हो जाएगी। दिन-दहाड़े क्या कुछ नहीं हो रहा है यहाँ। बहुत जरूरी न होने पर मैं तुम लोगों को इस तरह छोड़कर नहीं जाता। उस दिन बेलतला में चाय जनजाति की लड़की को निवस्त्र करने की घटना पर विभिन्न पक्षों के विभिन्न मत हैं। कहाँ क्या हो जाए, कुछ नहीं कहा जा सकता।' गाड़ी के ड्राइवर रामलाल को सुनाते हुए पिताजी बोल उठे-'चलो, थोड़ी दूर निकलकर कुछ खा आएँ।'

वह आँख-मुँह पर हाथ फेरकर अपनी सीट पर बैठ गया।

कहाँ जाओगी, क्या खाओगी? ज्यादा दूर नहीं जाएँगे। पास ही कहीं पिताजी के प्रश्नों के समाप्त होने से पहले ही मैं बोल पड़ी-'ठीक है पापा, कुछ भी खा लेंगे। चलो।'

असल में मैं पलाश की उत्कंठा से प्रतीक्षा कर रही थी और उसे न देखकर धीरे-धीरे मेरा मन निस्तेज-सा हो गया था। छि:, पलाश नहीं आया तो न आए। ऐसा सोचकर मैं क्यों मरी जा रही हूँ? यह सोचकर मन को दिलासा दी।

हम स्टेशन से बाहर निकले। बस थोड़ी दूर ही गए होंगे कि तभी-तभी स्टेशन से भयंकर विस्फोट की आवाज आई। झनझनाती हुई कोई चीज हमारी गाड़ी के ऊपर भी गिरी। आशंकित होकर पिताजी

ने रामलाल से गाड़ी को तेज चलाने को कहा। माँ भय से आतंकित होकर चिल्ला उठीं। पिताजी ने मेरा सिर पकड़कर नीचे करते हुए कहा–'बेटी, सिर नीचे कर लो।'

मैंने पिताजी की एक न सुनी। गाड़ी के पीछे वाले शीशे से बाहर छोड़ आए स्टेशन की तरफ देखा। आर्तनाद, यंत्रणाकातर चीत्कार। बीच-बीच में लोगों की भगदड़। कुंडली मारे ऊपर उठता धुँआ। जगह-जगह भस्मीभूत होकर बिखरे सामान और घायल मनुष्य।

ओह! ओह! मुझे कैसा-कैसा लग रहा था। थोड़ी देर पहले जिस लड़की को केक का टुकड़ा दिया था, वह स्टेशन के बाहर तो नहीं गई थी। क्या वह अक्षत बची है? और उस समय पलाश आया था क्या? यदि आया हो? यदि आया हो तो? सामने से कभी न देखा हुआ ऐसा भयंकर दृश्य और इन आनुषंगिक भावनाओं से अधीर होकर मेरा मन और मस्तिष्क कुछ सोच न पाने की अवस्था में पहुँच गए। मेरे हाथ-पैर ठंडे पड़ते जा रहे थे। ललाट पर पसीना चुहचुहा आया था। पापा-पापा बोलना चाहकर भी कुछ न बोल पाई।

पिताजी, माँ तथा दो डॉक्टर और एक नर्स उत्सुकतापूर्वक मुझे घेरे हुए खड़े हैं। यह क्या? मैं अस्पताल में हूँ? सफेद चादर से ढके बेड, हरे पर्दे तथा आसपास रखे गए उपकरणों और लोगों को देखकर ही अनुमान किया था। नहीं, अस्पताल में नहीं, बल्कि किसी प्राइवेट नर्सिंग होम में हूँ। किन्तु यहाँ कैसे आ पहुँची मैं? क्या हुआ था मुझे? मेरी कौतूहल भरी दृष्टि को शायद पिताजी, माँ और डॉक्टर लोग भी देख रहे थे।

डॉक्टर बोले–'अब कैसी हो यंग गर्ल? जस्ट रिलैक्स। टेंशन मत लो।'

माँ की ओर देखकर डॉक्टर बोले–'नाउ शी इज ओके। डरने की कोई बात नहीं है।'

मेरी आँखें पलाश को खोजती हुई चारों ओर घूम रही हैं। पलाश आया था क्या? अफरातफरी में मेरा मोबाइल न जाने कहाँ गिर गया, माँ और पिताजी को पता ही नहीं चला। वह लड़की जिंदा है न? किसी भी उपाय से पलाश की खबर पाने के लिए मैं अधीर हो उठी हूँ।

मेरे भीतर ही भीतर एक आतंक पल रहा है। डॉक्टर के कहे मुताबिक क्या मैं सचमुच ओके हूँ?

शायद शारीरिक रूप से। लेकिन मानसिक रूप से?

'मैं ठीक हूँ न?'

रूमी लस्कर बोरा,
मकान नं. 30. निबिड़ालय, प्रोटेक्ट पर्ल के निकट,
सिक्समाइल, त्रिवेणीपथ, सुरुजनगर,
गुवाहाटी 781022 (असम)
मो. 8638308794

विजय कुमार यादव,
फ्लैट नं. 3डी, तृतीय तल, सुरभि अपार्टमेंट,
4/2 बनर्जीपाड़ा रोड, तालपुकुर,
बैरकपुर, कोलकाता 700123, (प. बं.)
मो. 9619888793

शुजालपुर जिले में मध्य प्रदेश राष्ट्र भाषा प्रचार समिति की इकाई द्वारा प्रतिभा प्रोत्साहन प्रतियोगिता का आयोजन

जिंदगी

– यतीन्द्रनाथ राही

जन्म – 3 दिसंबर 1926।
शिक्षा – एम.ए., बी. एड.।
रचनाएँ – इक्कीस पुस्तकें प्रकाशित।
सम्मान – राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय सम्मानों से सम्मानित।

जिंदगी
क्षणभर ठहरती शाम
मृत्यु के पथ पर
तनिक विश्राम
डाल पर चिपका पका पत्ता
मुट्ठियों से सरक जाती रेत
तुहिन कण के
मोतियों का खेत
या कि जैसे
तितलियों के पंख
एक खुशबू
जो अभी आई
अभी चल दी हवा के संग

जिंदगी
बस एक मुट्ठी धूप
एक बित्ती छाँव
एक चुटकी मुस्कुराहट
एक अंजुरी दर्द
लौटता है कल्पशत में
जिंदगी का पर्व

एक पल इस एक क्षण का
अर्थ हम जाने नहीं
ग्रंथ तो बाँचे
मगर हम तत्व पहचाने नहीं
बुन लिए हैं शून्य में
कुछ मकड़ियों के जाल
रेत की बुनियाद पर
सूखे हुए कुछ ताल

उलझते हैं
डूबते हैं
तिर नहीं पाते
एक पल भी
हम खुशी से भर नहीं पाते
जिंदगी को जिंदगी सा
जी नहीं पाते।

सीपी में उतरता समुंदर

मंदिर की घंटियाँ
जब भीतर बज उठें
तब समझो
देवता तुम्हारे द्वार पर
दस्तक दे रहा है
जब
साँसों में
अगरबत्तियाँ महकें
स्पंदनों में
कलियाँ चटकें
प्राणों में
चंदन सियरा उठे
तब समझो
पग ध्वनि
आँगन को नंदित कर रही है।
और जब
रोम-रोम से
बाँसुरी बज उठे
कीर्तन बंद हो जाएँ
हवाएँ स्तब्ध
लहरें निस्पंद
तब समझो
समुंदर
तुम्हारी सीपी में
उतर रहा है।

तुम

जब तुम्हारी आँखें देख सकें
रूप के आवरण में छिपा
अरूप
कान, जब सुनने लगें
संगीत के भीतर का शून्य
जीभ चखने लगे
स्वाद में अंतर्निहित
महास्वाद

गंध, लाने लगे
किसी महागंध का
संदेश
तुम्हारे स्पर्शों में जब
रोमांचित हो उठे
भीतर का अनंत

तब समझो
तुम
तुम हो।

ए-34 रजत विहार, होशंगाबाद रोड,
भोपाल – 452026 (म.प्र.)
मो. – 7725004444

मेरा गाँव

- वी.एन. सिंह

जन्म - 18 फरवरी 1938।
जन्मस्थान - कानपुर (उ.प्र.)।
शिक्षा - एम.ए.,पीएच.डी।
रचनाएँ - पचास पुस्तकें प्रकाशित।
सम्मान - शिखर सम्मान सहित अनेक सम्मानों से सम्मानित।

बहुत वर्षों बाद
पुराने रिश्तों की पड़ताल करने
गाँव गया
मिट्टी के चबूतरे
गोबर से लिपे होते थे
फूस की छप्पर
बैठक के ऊपर टँगी होती थी
बाब हुक्का गुड़गुड़ाते मिलते थे।

बदली तस्वीर सामने आ गई
अब बैठक में पत्थर लग गए
लोटे में गुड़ का जो शरबत
बहू लाती थी
अब कप में चाय मिलती है
प्लेट में बिस्कुट और दालमोठ
बाबा गुड़ के सेव भी मँगा लेते
कहते छोटी बहू ने बनाए हैं

किसी-किसी घर से
टी.वी. की आवाज आती है
पोशाकें बदल गईं
पैंट-शर्ट पहने दिखते हैं लोग
पढ़ने वाली लड़कियाँ
सलवार सूट में दिखतीं
शहर गाँव में पहुँच गया
गाँव सिकुड़ रहे थे,
शहर पंख फैलाए फैल रहा था

मुझे रामू काका की याद आई
दिखायी नहीं दिए
गाँव की मौसी भी
शायद विदा हो गईं
भूले-भटके कोई बुजुर्ग
उनकी कहानी सुनाते

पहचानी शक्लें
औपचारिकता में ढल गईं
मिलने वालों की भाषा बदल गयी
शहरी लहजे में बात करने लगे
व्यवहार बदल गए
सोचता हूँ मेरा गाँव कहाँ गया
गाँव के रिश्ते कहाँ गए
खेतिहर मोहब्बत की सुगंध कहाँ गई
सोंधी मिट्टी की खुशबू
जो बरसात में मिलती थी
वह जमीं कहाँ गयी
वह हरे-भरे-घने पेड़
कहाँ गए
सड़कें गाँव का सीना चीरते हुए
निकल रही हैं
मोटर साइकिल और कारें भी
गाँव में दाखिल हो गए

समय ने गाँव की संस्कृति को
शहरी बना दिया
मैं बहुत मायूस होकर
बनौटी शहर में लौट आया

आदिवासी

अक्सर मेरे चिंतन में
आदिवासी समाज घुमड़ता है
हजारों वर्षों से घने जंगलों में
हिंसक पशुओं के मध्य
जीवन यापन करते आए हैं

मेरी कल्पना के वे काले
गगनचुम्बी पहाड़
घने वृक्षों से लदे-लटके
रात में साँय-साँय करते
जंगली पशुओं की डरावनी आवाजें
रात को डरावनी बना देतीं
वनवासी पेड़ों पर मचान बनाकर
रात की कालिमा को काटते
कहीं-कहीं झोपड़ी भी दिख जाती
शिकार के लिए
झुंड बनाकर निकलते

जंगल को अपनी संपत्ति समझते
जी-जान से इसकी रखवाली करते
समय बदला,
विकास की किरण वहाँ भी पहुँचीं
आदिवासी कुटीर उद्योग
बाजार में दिखने लगे

पर जंगल के ठेकेदारों ने
महाजनी संस्कृति के मालिक
यह वनवासियों को बँधुआ श्रमिक बनाते
सोचता हूँ इन्हें इनसे
कब निजात मिलेगी
चैन से दो वक्त की रोटी कब मिलेगी
कब आदिवासी महिलाओं की अस्मिता
जंगली अँधेरी दुनिया से बाहर निकलेगी
कब सभ्य दिखने वाले
मुखौटे से अपने को सुरक्षित समझेगी
कब इन्हें, स्वतंत्र देश का एहसास होगा।

111/98 फ्लैट 22,
अशोक नगर, कानपुर-208012 (उ.प्र.)
मो.-9935308449

सूरज, चमको न

- सुशांत सुप्रिय

जन्म - 8 मार्च 1968।
जन्मस्थान - पटना (बिहार)
रचनाएँ - उन्नीस पुस्तकें प्रकाशित।
सम्मान - कथाबिंब सहित अनेक सम्मान।
विशेष - अनुवाद पर विशेष कार्य।

सूरज चमको न
अंधकार भरे दिलों में
चमको न सूरज
उदासी भरे बिलों में

सूरज चमको न
डबडबाई आँखों पर
चमको न सूरज
गीली पाँखों पर

सूरज चमको न
बीमार शहर पर
चमको न सूरज
आर्द्र पहर पर

सूरज चमको न
अफ़ग़ानिस्तान की अंतहीन रात पर
चमको न सूरज
बुझे सीरिया और ईराक़ पर

जगमगाते पल के लिए
अरुणाई भरे कल के लिए
सूरज चमको न
आज

डर

तुम डरते हो
तेज़ाबी बारिश से
ओज़ोन-छिद्र से

मैं डरता हूँ
विश्वासघात के सर्प-दंशों से
बदनीयती के रिश्तों से
तुम डरते हो
रासायनिक हथियारों से
परमाणु बमों से

मैं डरता हूँ
मूल्यों के स्खलन से
स्वतंत्रता के हनन से
तुम डरते हो
एड्स से
कैंसर से
मृत्यु से

मैं डरता हूँ
उन पलों से
जब जीवित होते हुए भी
मेरे भीतर कहीं कुछ
मर जाता है

सच्चा प्यार

ओ प्रिये
मैंने कहा
मैं तुमसे
सच्चा प्यार करता हूँ
तुम बोलीं -
सबूत दो

तो सुनो प्रिये
तुम मेरा
'लाइ-डिटेक्टर टेस्ट' ले लो
फिर तुम जान जाओगी
कि तुम्हारे प्रति
मेरा प्यार सच्चा है

या फिर
तुम्हारे वियोग में
मैंने जो आँसू बहाए हैं
उन्हें तुम
प्रयोगशाला की टेस्ट-ट्यूबों में
भर कर
इलेक्ट्रॉन माइक्रोस्कोप के नीचे
उनका परीक्षण कर लो
मेरे उन आँसुओं में तुम्हें
तुम्हारे प्रति मेरे सच्चे प्यार के
असंख्य अणु तैरते मिलेंगे

इस कंक्रीट-जंगल में
जहाँ टेस्ट-ट्यूब बच्चों का
युग पल रहा है
मैं तुम्हें अपने प्यार के
सच्चा होने का
और कौन-सा सबूत दूँ?

**ए-5001, गौड़ ग्रीन सिटी, वैभव खंड,
इंदिरापुरम, ग़ाज़ियाबाद-201014 (उ. प्र.)
मो.- 8512070086**

प्रणय निवेदन

- नम्रता सरन 'सोना'

जन्म - 25 मई 1970।
जन्मस्थान - इंदौर (म.प्र.)।
शिक्षा - एम.कॉम., एमफिल.।
रचनाएँ - छः पुस्तकें प्रकाशित।
सम्मान - राष्ट्रभाषा भूषण सम्मान सहित अनेक सम्मान।

प्रीत हृदय पर अमिट अंकित
अनुबंध नहीं ये सम्बन्ध है
विश्वास का तोरण प्रिये
दिल में लगा के रखना,

नित नया रंग भरे जीवन में
प्रेम रंग कभी कम न हो
एहसासों की रंगोली से
आँचल रँगा के रखना,

कभी न टूटे कसमें प्रियवर
अटूट, दिलों का बंधन है
महकते वादों की अमिट
सुर्ख मेहँदी रचा के रखना,

आभास हृदय के भावों का
कोमल मृदुल स्पर्श देगा
प्रेम मधु की वर्षा से
तन-मन भिगा के रखना,

मधु से भी मधुकर होगा
प्रणय सम्बन्ध चिरकाल तक
मीठी मुस्कान की अधरों पर
लाली लगा के रखना।

जो बीत गई वो बात गई

बदली दुख की छँट रही
फिर सुनहरी धूप खिली
लिखूँगी मैं आज उजाला
क्यों बात करूँ अँधेरों की
जो बीत गई वो बात गई

कब रुके पलकों पे आँसू
आँखों से जो बह निकले
दिन ढला और साँझ ढली
पलक झपकते रात गई
जो बीत गई वो बात गई

मुठ्ठी अपनी बाँध के रख
लक्ष्य अपना ठान के रख
सपनों का कद ऊँचा कर
देख सामने नव भोर भई
जो बीत गई वो बात गई

हाँ जीवन एक चुनौती है
जो लड़ा नहीं वो जिया नहीं
तुझे मिला है मौका उठ जा
और बना ले इक राह नई
जो बीत गई वो बात गई।

प्रेम का सोपान

सान्निध्य स्पर्श
न कोई शब्द,
बस एक शून्य,
जो भीतर तक
बिंध गया हृदय को।
एक उसी शान्त
शून्य में
निमग्न अन्तर्मन
अनंतिम तृप्ति पा गया।
आबद्ध उसी शून्य से
मुखरित हृदय में,
प्रस्फुटित प्रेमांकुर
होते देख रही,
नि:शब्द यही शून्य
प्रेम का सोपान है।

क्षितिजोत्सव

क्यों रहा रजनी से
प्रश्न यह बारम्बार
सहचरी तुम स्वप्नों की
खड़ी नयनों के द्वार।।

मेघ विद्युत अलंकारित
सम विभ्रम मायाजाल
पंकित हृदय तेरा नहीं
मुकुल कलित सुवास।।

धर कर के उर में हिमकर
तुषारापात अवनि पर
दहक रही अन्तर ज्वाला
ज्यों घृत पड़े अग्नि पर।।

निशा बिम्ब शनैः-शनैः
मुखरित मुकुल खिलाय
कालरात्रि कनक किरण
ज्यों-ज्यों बढ़ती जाए।।

जलधि तरंगिणी निहार चितवन
शशि मुख दर्पण पाए
नतमस्तक मेघ वेग वायु जल भी
क्षितिज उत्सव मनाएँ।।

LIG-89, कोटरा सुल्तानाबाद,
में फ्लावर स्कूल के पीछे,
भोपाल-462003.(म.प्र.)
मो. - 9425006890.

सुख के दिन

- मनोज जैन 'मधुर'

जन्म - 25 दिसंबर 1975।
जन्मस्थान - शिवपुरी (म.प्र.)।
शिक्षा - स्नातकोत्तर।
रचनाएँ - एक पुस्तक प्रकाशित
सम्मान - क्षेत्रीय सम्मान।

सुख के दिन छोटे-छोटे से,
दुख के बड़े-बड़े।

सबके अपने-अपने सुख हैं,
अपने-अपने दुखड़े।
फीकी हँसी, हँसा करते हैं,
सुन्दर-सुन्दर मुखड़े।

रंक बना देते राजा को,
दुर्दिन खड़े-खड़े।
सुख के दिन छोटे-छोटे से,
दुख के बड़े-बड़े।

सबकी नियति अलग होती है
दिशा दशा सब मन की।
कोई यहाँ कुबेर किसी को,
चिन्ता है बस धन की।

समझा केवल वही वक्त की,
जिस पर मार पड़े।
सुख के दिन छोटे-छोटे से,
दुख के बड़े-बड़े।

हाँ यह तय है चक्र समय का,
है परिवर्तनकारी।
सबने भोगा सुख-दुख अपना
चाहे हो अवतारी।

अंत नहीं होता कष्टों का,
जी हाँ बिना लड़े।
सुख के दिन छोटे-छोटे से,
दुख के बड़े-बड़े।

एक अघोषित युद्ध

अंतर्मन में चले निरन्तर,
एक अघोषित युद्ध।
धता बताए प्रगतिशीलता,
चुप हो जाती जड़ता।
पारे जैसा मन है अपना,
चरम बिंदु पर चढ़ता।

साम्य भाव हम रखें कैसे,
बन न सके हम बुद्ध।

धँसे द्वंद्व में गहरे जाकर,
क्या योगी क्या भोगी।
अपना चिंतन छोड़ पराया,
लगता है उपयोगी।

प्रश्न खड़ा है परिणामों को,
कैसे रखें विशुद्ध

कौन सगा है कौन पराया,
क्या रिश्ते क्या नाते?
समय सरकता पल-पल क्षण-
क्षण, हँसते, रोते, गाते।

चिंतन उठता ऊपर-नीचे,
पथ करता अवरुद्ध।

जीवन चलता अपनी लय में,
अपने रंग बदलता।
पूर्व दिशा से सूरज निकले,
पश्चिम में जा ढलता।

भावदशा आनन्दमयी हो!
कब हो जाए क्रुद्ध?

106, विट्ठल नगर, गुफा मन्दिर रोड,
भोपाल-462010 (म.प्र.)
9301337806

दस प्रतिनिधि कहानियाँ : उर्मिला शिरीष

- सुषमा मुनीन्द्र

सुपरिचित रचनाकार उर्मिला शिरीष ने एक अलग अंदाज में लिखी गई कहानियों से हिंदी साहित्य को समृद्ध किया है। उनकी चिंतन प्रक्रिया, दार्शनिक दृष्टिकोण, जागरूक दृष्टि, कलात्मक अभिव्यक्ति, भाषायी कौशल, मनोवैज्ञानिक पकड़, बौद्धिक विमर्श, सामाजिक सरोकार, व्यंजना, मूल कथा की पूर्व पीठिका सब कुछ इस तरह व्यवस्थित रहता है कि कहानियों में स्वाभाविक गति और विकास क्रम के साथ सिलसिले बनते चले जाते हैं। विषय वस्तु, प्रसंग, परिवेश, चरित्र, आचरण, व्यावहार की तहें यूँ खुलती हैं कि यथार्थ का भीतरी सच मुखर और स्पष्ट होता जाता है। उर्मिला शिरीष चूँकि व्यक्ति, परिवार, समाज पर आस्था रखती हैं इसलिये कहानियों के केन्द्र में स्त्री या पुरुष नहीं व्यक्ति होता है। कहानियों के पात्र छोटे हों या बड़े, पुरुष हों या स्त्री सशक्त और स्वाभाविक होते हैं।

उर्मिला शिरीष

पुस्तक : दस प्रतिनिधि कहानियाँ
लेखक : उर्मिला शिरीष
प्रकाशक : किताब घर प्रकाशन जीवन विहार अपार्टमेन्ट्स 4855-56/24 द्वितीय तल, फ्लैट नं. 7 अंसारी रोड, दरियागंज

उर्मिला शिरीष का यह समीक्ष्य कहानी संग्रह किताब घर प्रकाशन की महत्त्वपूर्ण श्रृंखला 'दस प्रतिनिधि कहानियाँ' की कड़ी है। इस श्रृंखला के माध्यम से महत्त्वपूर्ण रचनाकारों की महत्त्वपूर्ण कहानियाँ पाठकों तक पहुँच रही हैं। संग्रह में दस कहानियाँ हैं जो अपने समय और समाज की वास्तविकता, विरोधाभास, विसंगति, विद्रूपता, वक्रोक्ति को खूबी के साथ व्यक्त करती हैं। संग्रह की कहानियों में चीख, निर्वासन, बाँधो न नाव उस ठाँव बंधु, उसका अपना रास्ता बहुत चर्चित रही हैं। 'चीख' का केन्द्रीय विषय बलात्कार है। बलात्कार हिंसा का सबसे क्रूर तरीका है। यह शारीरिक, मानसिक, पारिवारिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक प्रत्येक स्तर पर स्त्री को नि:शेष कर देता है। विडम्बना है बलात्कारी अक्सर पकड़े नहीं जाते जबकि बलात्कार पीड़िता इस तरह कलंक ढोती है जैसे यह हिंसा का नहीं उसकी दुश्चरित्रता का मामला है। उसकी 'उसे लगा यकायक ही वह किसी फेंकी गई वस्तु के समान हो गई है जिसे कोई भी स्वीकारने के पहले जाँचेगा, परखेगा, धोएगा, पोंछेगा। (पृ. 48)।'

जैसी स्थिति हो जाती है। परिजनों के परिचय बदल जाते हैं। वे पीड़िता के माँ, पिता, भाई, बहन के तौर पर चिन्हित होने लगते हैं। रिश्तों। में दूरियाँ आ जाती हैं। वातावरण में भय, अधीरता, यातना, झिझक, आक्रोश, लाचारी, प्रतिशोध जैसी नकारात्मकता भर जाती है। बलात्कार को इज्जत चली गई से जोड़ कर देखा जाता है इसलिये अक्सर रिपोर्ट नहीं लिखाई जाती कि चर्चा प्रसारित होने से पीड़िता के विवाह में अड़चन आ सकती है। इसलिये अधिकतर मामले दर्ज नहीं हो पाते। होते हैं तो पीड़िता के साथ अस्पताल, अदालत में जो व्यवहार होता है उससे पीड़िता को लगता है बलात्कार वास्तविकता में एक बार हुआ है पर चेतना में बार-बार हो रहा है। वह टूट जाती है। 'चीख' की पीड़िता में साहस और आत्म सम्मान है। 'मैंने कोई गलती या अपराध नहीं किया जिसके लिये मैं जिंदगी भर आत्मग्लानि में घुलूँ। मम्मी मैं हर स्थिति का सामना करूँगी। मेरा कोई साथ दे या न दे (52)।'

कह कर वह द्वैत और द्वन्द से उबरने का प्रयास करते हुये शिक्षा को जारी रखती है।

यही आत्म सम्मान 'बाँधो न नाव इस ठाँव बंधु' की रूपा में है। कथा नायक का रूपा से मानवीय और नैतिक संबंध है जिसे परिवार प्रमुखत: पत्नी चरित्रहीनता मानती है। बाल विधवा रूपा को ससुराल और मायके (मायका कथानायक का पैतृक गाँव है) में आक्षेप और उपेक्षा मिलती है। शहर में सपरिवार रह रहा कथानायक गाँव के अपने पैतृक घर में रूपा के रहने का प्रबंध कर देता है कि घर की देख-रेख करते हुये वह अपना जीवन यापन कर लेगी। कथानायक के परिवार वाले सशंकित हैं। रूपा चालीस साल से अधिक समय से घर में रह रही है इसलिये कब्जा कर लेगी। कथानायक की मृत्यु पर रूपा गाँव से शहर आकर घर की चाबी कथानायक के बड़े पुत्र को सौंप अपना कर्तव्य पूर्ण कर चली जाती है कि जिसने मदद की वह नहीं रहा तो

उस घर में मेरा हक खत्म हो गया। यह कहानी नैतिकता के ऊँचे स्तर को छूती है। 'सिगरेट' की बैंक में कार्यरत प्रिया भी अपने कर्तव्य को प्रमुखता देती है यद्यपि उसे छोटी सी शाबासी भी नहीं मिलती। उसका हार्ट पेशेन्ट पति चानी उन पतियों में एक है जो पत्नी का भावनात्मक शोषण 'तुम्हीं ने तो दिया है सब कुछ। तुम्हारे लिये अलग से क्या सोचता? तुम तो मेरा ही हिस्सा हो (32)।'

जैसी चतुराई से करते हैं। अपने माता-पिता, भाई-बहन की जरूरतें, शौक पूरा करने वाला चानी प्रिया की छोटी सी इच्छाई को भी महत्वा नहीं देता। चानी को सिगरेट की लत है लेकिन सोचना नहीं चाहता प्रिया सिगरेट की तरह जलते हुये धीरे-धीरे राख होती जा रही है प्रिया जानती है, ठगी जा रही है, छली जा रही है लेकिन घर बचा रहे इसलिये सहती जा रही है।

'उसका अपना रास्ता' की वृंदा भी छली गई है लेकिन यह रास्तो उसने खुद चुना है। यह बहुत महत्त्वपूर्ण कहानी है जो कई पाठ की माँग करती है। तथ्यों की जाँच-परख कर लेखिका ने वृंदा के चरित्र को बारीकी से बुना है। वृंदा वह लड़की है जिसकी महत्वाकांक्षा बहुत बड़ी है लेकिन वह अपने संस्कार छोड़ कर महानगरों का खुलापन नहीं अपनाना चाहती। ग्लैमर वर्ल्ड में संस्कारों का अर्थ नहीं है। वृंदा कॉलेज के स्तर से लेकर मनोज के मार्ग दर्शन में दिल्ली जाकर मिस इंडिया काम्पटीशन तक पहुँचती है। नाम-दाम कमाना चाहती है। मनोज के साथ सह जीवन में रहती है। सोचती थी मेहनत और प्रतिभा से प्रतियोगिता जीत लेगी पर ग्लैमर वर्ल्ड का छल, फरेब, खुलापन देखकर उसे लगता है बाजार तंत्र का एक पुर्जा बन कर रह गई। वह गर्भवती है लेकिन मनोज उसे छोड़कर चला जाता है। वह महानगर संस्कृति के दोहरेपन पर अचम्भित है अपनी गल्तियों, बेवकूफियों पर लज्जित है लेकिन उसमें संस्कार बचे हुए हैं। वह गर्भपात न कराकर बच्चे को जन्म दे सिंगल मदर बनने का निर्णय लेती है। यह कहानी उन युवाओं के लिये सबक है जो चकाचौंध के पीछे का तिमिर न देखकर कपट जाल में उलझ जाते हैं।

कहानी 'दीवार के पीछे' का प्रेमी युगल भी कपट जाल को नहीं समझ पाता। यह अलग तेवर में लिखी गई करुण प्रेम कथा है। हिंदू प्रेमी और मुस्लिम प्रेमिका प्रेम को मंजिल तक पहुँचाने के लिये घर से भागे हुए हैं। वे ऐसे स्थान पर जाना चाहते हैं जहाँ सुरक्षित रहें लेकिन असामाजिक तत्व के कुचक्र में डाल दिये जाते हैं। उन्हें असहनीय यातना दी जाती है। वे बम के द्वारा देश को क्षति पहुँचाने से स्पष्ट इंकार कर देते हैं फिर भी देश द्रोही साबित कर दिये जाते हैं 'दूसरे दिन के अखबार में खबर छपी थी शहर को एक बड़ी घटना से बचा लिया गया है। दो संदिग्ध आतंकवादी पकड़े गये जिनमें एक लड़की थी और एक लड़का। लड़की शायद मानव बम हो सकती है। इसकी उच्चस्तरीय जाँच हो रही है (179)। 'घर से भागे प्रेमी क्या लवजिहाद या ऑनर किलिंग की भेंट चढ़ जाते हैं? या कुचक्र में फँस जाते हैं? या अपने प्रेम को पा लेते हैं? यह प्रश्न आकुल-व्याकुल करता है।

कहानी 'बिवाइयाँ' और 'ए देश तुझे हुआ क्या है?' भी आकुल-व्याकुल करती हैं। 'औरत ने पाँवों में पड़े लच्छों को टटोला। लच्छे मोटे-मोटे थे। सुंदर थे। अब भी चाँदी की चमक बरकरार थी। भाई ने दिलवाये थे। पूरे गाँव की महिलाओं ने इन लच्छों की प्रशंसा की थी। तभी से वह ऊँची साड़ी पहनती थी कि लच्छों की सुंदरता और चमक दिखाई दे (162)।'

बिवाइयाँ' के किसान की पत्नी को जिन लच्छों का दर्प था वे लच्छे सर्राफा बाजार की एक दुकान, जहाँ गहने गिरवी रख कर मनमाना सूद वसूला जाता है, में बीज के लिये गिरवी रखे जा रहे हैं। लच्छों के माध्यम से यह कहानी किसानों के अभाव, अनिश्चय को सरलता से जाहिर कर देती है। 'ऐ देश बता तुझे हुआ क्या है?' में कोरोना की विभीषिका, लॉक डाउन की स्तब्धता, कोरोना मरीज का मृत्यु भय, परिजनों का असमंजस, अस्पताल की अफरा-तफरी जिस बारीकी से चित्रित हैं, वह वक्त याद आ जाता है जब हम सबने यह त्रासदी देखी थी।

उर्मिला शिरीष वस्तुत: अपने चौगिर्द पैनी नजर रखती हैं। स्थिति-परिस्थिति-मन: स्थिति का आकलन करती हैं। सूझबूझ से ऐसे पात्र तैयार करती हैं जो ताकतवर होते हैं और लम्बे समय तक याद रहते हैं। संग्रह में कहानियों का चयन बहुत सोच-समझ कर किया गया है।

द्वारा श्री एम. के. मिश्र
जीवन बिहार अपार्टमेंटस
द्वितीय तल, फ्लैट नं.-7,
महेश्वरी स्वीट्स के पीछे,
रीवा रोड, सतना-485001 (म.प्र.)
मो.-8269895950

मौन से संवाद

- मोहन तिवारी आनंद

मौन से संवाद राजेन्द्र राजन का पांगी जनजीवन पर आधारित पहला उपन्यास है। मौन से संवाद पांगी घाटी के कबायली समाज के जीवन स्तर पर लिखा गया सफल उपन्यास है। एक सौ छत्तीस पृष्ठों के इस उपन्यास को 18 खण्डों में विभक्त किया गया है।

उपन्यास के बारे में मान्यता है कि जो स्थान काव्य शास्त्र में महाकाव्य का है, गद्य में वही स्थान उपन्यास का माना जाता है। उपन्यास की परिभाषा विद्वानों ने कई प्रकार से दी है। मुंशी प्रेमचन्द ने कहा है- 'मैं उपन्यास को मानव-चरित्र का चित्र मात्र समझता हूँ। मानव-चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है। उपन्यासकार की सबसे बड़ी विभूति ऐसे चरित्रों की सृष्टि है जो अपने सद्व्यवहार और सद्विचार से पाठक को मोहित कर लें। साहित्यकार का काम केवल पाठक का मन बहलाना नहीं है। यह तो भाटों और मदारियों, विदूषकों और मसखरों का काम है। साहित्यकार का पद इससे कहीं ऊँचा है। वह हमारा पथ प्रदर्शक होता है, वह हमारे मनुष्यत्व को जगाता है, हम में सद्भावों का संचार करता है।

पुस्तक : मौन से संवाद
लेखक : राजेन्द्र राजन
प्रकाशक : विजय बुक्स, 1/10753 सुभाष पार्क, गली नं. 3, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032
मूल्य : 225/-

साहित्यिक क्षितिज की मान्यता है कि वही साहित्य चिरायु हो सकता है जो मनुष्य की मौलिक प्रवृत्तियों पर अवलंबित हो। ईर्ष्या और प्रेम, क्रोध और लोभ, भक्ति और विराग, दु:ख और लज्जा मनुष्य की मौलिक प्रवृत्तियाँ हैं, इन्हीं की छटा दिखलाना साहित्य और साहित्यकार का परम उद्देश्य है। उपन्यासकार को इसका प्रयत्न अवश्य करना चाहिए कि उसके विचार परोक्ष रूप से व्यक्त हों, उपन्यास की स्वाभाविकता में उस विचार का समावेश होना चाहिए।

आधुनिक उपन्यासों के शिल्प और भाषा शैली पर जब विचार करते हैं तो हम पाते हैं कि अब हिन्दी में हजारों की संख्या में उन शब्दों ने स्थान पा लिया है जो तात्कालिक समस्याओं से उत्पन्न हुए हैं। कम्प्यूटरीकरण के कारण वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दावली भी उपन्यासों में प्रविष्ट हुई है। उर्दू और अंग्रेजी, अरबी एवं फारसी के शब्द काफी लम्बे समय से उपन्यासों में शामिल थे किन्तु आजकल हिंग्लिश शब्दों की भी भरमार देखने में आ रहीं है। सिनेमा के बढ़ते प्रभाव से भी उपन्यासों का शब्दकोष बहुत प्रभावित हुआ है किन्तु खासतौर पर आधुनिक उपन्यासों के शिल्प, कथावस्तु एवं कथोपकथन दृश्य और संवाद में जो बदलाव आया है वह विशेष उल्लेखनीय है। विगत 25-30 वर्ष के हिन्दी उपन्यास की प्रवृतियाँ इस बात को प्रमाणित कर रहीं हैं कि हिन्दी उपन्यास में बड़ी सक्रियता रही है। उपन्यासकार समाज का सजग प्रहरी बनकर उभरा है। वस्तु और शिल्प में बड़ी विविधता आयी है। इस सुविधा में जैविक संरचना, पारंपरिक संस्कार और परिवेश की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है।

हिन्दी के उपन्यासकारों ने सामूहिक अनुभव और मूल्य प्रणाली से वैयक्तिक अनुभव और मूल्य प्रणाली की दिशा में यात्रा की है। पूँजीवादी, बाजारवादी और उपभोक्तावादी अर्थव्यवस्था, महानगरीय परिवेश और सामाजिक गतिशीलता ने अब उपन्यासकार को वर्ग प्रतिनिधिकता से अलग करके स्वायत्त व्यक्ति इकाई बना दिया है। फलत: व्यक्तिश: उपन्यासकारों का अनुभव क्षेत्र सीमित और विशिष्ट होता गया है। स्त्री विमर्श और दलित विमर्श जैसी परिकल्पनाएँ इसी बदलाव का परिणाम हैं। विगत 25-30 वर्षों में हिन्दी में उपन्यास वस्तु और शिल्प के स्तर पर अत्याधिक प्रयोग शीलता आयी है। नई पीढ़ी के उपन्यासकारों के लिए मौलिकता बीज मंत्र हो गई है अत: उपन्यास आजकल बहुत लोकप्रिय हो गया है।

मौन से संवाद उपन्यास पांगी घाटी जैसे दुर्गम एवं कठिनतम पर्वतीय क्षेत्र में रहने वाले अति पिछड़े स्तर पर जीवनयापन करने वाले मनुष्यों के जीवन संघर्ष की व्यथा-कथा है। इस उपन्यास के पात्रों की भूमिका उनके कार्यों का विभाजन और उनके कर्तव्यों के उत्तरदायित्वों के निर्वाह का इतना सटीक चित्रण उपन्यासकार ने किया है कि इस उपन्यास के दृश्य दृष्टव्य एवं संवाद बोलती हुई कहानी के रूप में परलक्षित हो रहे हैं। उपन्यास के प्रमुख पात्र शम्पा एवं शरद जिन्होंने सर्वसुविधायुक्त महानगरीय जीवनयापन के सुखद पलों को छोड़कर इस दुर्गम-बर्फीले, पहाड़ी कठिनाइयों भरे क्षेत्र में फिल्मांकन करने का दुष्कर लक्ष्य चुना है। शम्पा एवं शरद लिविंग रिलेशन वाले प्रेम सूत्र में बँधा अपना सुख सम्पन्न जीवनयापन छोड़कर दर-दर भटक रहे हैं, तरह-तरह की दुख-तकलीफें भोग रहे हैं किन्तु अपने लक्ष्यपूर्ति के अभियान को सफलता का अमलीजामा पहनाने के लिए दृढ़ संकल्पित हैं।

उपन्यासकार ने जिन स्थितियों परिथितियों में इस कहानी को मूर्तरूप देने का प्रयत्न किया है सामान्यत: लेखक इस तरह की कल्पना भी नहीं कर पाते हैं किन्तु 'राजन' ने अपने जीवन के कुछ समय में इन परिस्थितियों के साथ तदात्म स्थापित कर जिया है। शम्पा और शरद के इस अभियान में जिन चमन, चंदू, और नरमू आदि की भूमिका का चित्रण किया है उनके किरदार इतने सटीक उकेरे गये हैं कि इस उपन्यास के दृश्य काल्पनिक न होकर यर्थाथ की पृष्ठभूमि से सने अनुभव होते हैं। आजादी की अर्धशती गुजरने के बाद दुनिया का महानतम् लोकतंत्र जो विश्व में अपने यश की डींगें फेंकता है, उस राष्ट्र की आधी से अधिक आवादी मूलभूत जीवनोपयोगी सुविधाओं से वंचित, अभावों से भरे कठिनतम संघर्ष भरे जीवन को जीने में मजबूर है किन्तु बड़े साहस और हौसले के साथ कर्तव्य के प्रति निष्ठावान होकर। इस उपन्यास के जितने भी पात्र हैं वे सब के सब

कठिन समस्याओं से जूझते हुए परिश्रम करते हैं, दूसरों के सहयोग के लिए समर्पित हैं किसी भी तरह के कष्ट भोगने के लिए तैयार हैं किन्तु अपनी मूल चेतना अतिथि देवो भव: की भावना को साकार करने में रत हैं। उनमें समर्पण की भावना है तथा कथित सभ्य कहे जाने वाले लोगों जैसे स्वार्थपरिता के लिहाफ में लिपटे हुए तो कतई नहीं। मौन से संवाद के मुख्य पात्र श्म्पा और शरद के अतिरिक्त अन्य सहयोगी पात्र भी अपनी-अपनी भूमिका का निर्वाह कितनी लगन और निष्ठा के साथ करते हैं यह दृश्यांकन ही उपन्यासकार की सफलता का मूल है।

मौन से संवाद उपन्यास के संवाद एवं कथानक व्यंजना से परिपूर्ण रचे हुए हैं। शासन और प्रशासन किस तरह भ्रष्टाचार में आकंठ लिप्त रहकर व्यवस्था को मटियामेट किए हुए हैं विकास के नाम पर अकूत धनराशि का अपव्यय कर निजी खजाने पुख्ता करने में जुटे हैं। इन एक-एक का कच्चा-चिट्ठा उकेरने में सफल हुआ है उपन्यासकार राजेन्द्र राजन। शासकीय क्रिया प्रक्रियाओं में व्याप्त भ्रष्टाचार की उधेड़बुन करते हुए कहता है-'कर्मचारियों के इस दुर्गम घाटी क्षेत्र में स्थानान्तरण होने पर कर्मचारी तिकड़म भिड़ाकर अपना स्थानान्तरण राजनीतिक नेताओं का आश्रय तथा फर्जी चिकित्सा प्रमाण पत्र के आधार पर कैसे अपनी मनचाही जगह पर कराने में सफलता अर्जित कर लेते हैं, का बहुत ही उत्कृष्ट चित्रण किया गया है। चमन के माध्यम से उपन्यासकार उल्लेखित करता है कि स्टेट पालिटीशियन ने प्रशासनिक व्यवस्था को तहस-नहस कर रखा है। इसी वजह से पांगी वैली में सरकारी कर्मचारियों के ज्यादातर पद सालों साल खाली पड़े रहते हैं। ट्रायबल एरिया के नाम पर मिलने वाली सहूलियतों और सुविधाओं ने अकर्मव्यताओं को जन्म दिया है।

उपन्यासकार ने नगरीकरण, भूमण्डलीकरण और बाजारबाद के प्रभाव के फलस्वरूप मानव मूल्यों के संरक्षण में यहाँ के लोग कितने लगनशील हैं, को बड़ी बारीकी से व्यंजित किया गया है। उपन्यासकार का मानस बहुत अधिक संवेदनशील है, वह शम्पा-शरद के माध्यम से कहता है-'इस्पात की तरह कठोर चट्टानों को काटकर सड़क बनाना बहुत कठिन एवं चुनौतीपूर्ण कार्य है जिसे मजदूर उपनी कठिन मेहनत और परिश्रम से अमलीजामा पहनाते हैं। मजदूरों की समस्या के सम्बंध में उपन्यासकार कहता है-'मजदूर चाहे सड़क निर्माण में जुटा हो या मिल में खून-पसीना बहा रहा हो वह हमेशा ही हाशिए पर सिमटा रहता है उनकी दशा में कतई सुधार न हुआ है और न ही होने वाला है।'

पांगी घाटी में प्रचलित प्रजा प्रथा का उल्लेख करते हुए उपन्यासकार ने उल्लेखित किया है कि जब आधुनिक भारत की पंचायत राज्य अवधारणा का नामोनिशान भी नहीं था तब इस दुरूह घाटी में जर, जोरू, जमीन, पेड़, पहाड़ पानी से जुड़े मसले, जन्म-मृत्यु, विवाह आदि से जुड़े मसलों में प्रजा प्रथा का दखल था किन्तु पिपलू राम के प्रकरण में सजा का जो नाइन्साफी भरा तुगलकी फरमान वर्तमान की पंचायत प्रणाली से कतई भिन्न नहीं दिखता। इस से उजागर होता है कि अतीत और वर्तमान में आम जनता पर थोपे जाने वाले अनीतिपूर्ण निर्णय हर समय और हर जगह समान ही रहे हैं और आज भी हैं। इस तरह सम्पूर्ण राष्ट्र में व्याप्त सामंती प्रथा आज भी जनतंत्रीय भावनाओं से कोसों दूर है।

उपन्यासकार राजेन्द्र राजन ने आवागमन की व्यवस्था पर काफी विस्तार दिया है-'यदि गंभीर मरीजों को उपचार के लिए पांगी वेली से चण्डीगढ़ या कुल्लू रिफर किया गया, बच्चों को पढ़ाई के लिए बाहर जाना, बच्चों की शादी-विवाह के लिए, अथवा अन्य कोई अति आवश्यक कार्य से पांगी वेली से बाहर तो हेलीकॉप्टर की सुविधा नहीं मिल पाती है। **(पृ.-111, 112, 113, 114,)**

शम्पा-शरद के गाइड रोजवेज इंस्पेक्टर चमन का उल्लेख बहुत उत्तम बन पड़ा है, उन्हें अपनी बेटी के विवाह की रस्मों हेतु अपने घर जाना है किन्तु इस दुर्गम बर्फीले-पहाड़ी मार्ग से जाते वक्त उनकी मौत का हो जाना दिल दहला देता है। **(पृ.-118)** किन्तु चमन की मौत बंद कमरे में ठंड से बचने के लिए कोयले की अँगीठी के धुँए से दम घुटने से हुई जो यह प्रदर्शित करती है कि बड़े-बड़े तीरंदाज भी चूक जाते हैं जैसे चमन जिसका सारा जीवन इन्हीं परिस्थितियों के बीच बीत रहा था। **(पृ.-128)**

कुल मिलाकर गहन विपरीत परिस्थितियों के बीच कुछ कर गुजरने की चाहत लिए दो युवा उत्साही शम्पा- शरद के प्रेम एवं उत्साह से मिश्रित संघर्ष से परिपूर्ण मौन से संवाद नामक यह उपन्यास -राजेन्द्र राजन को एक उपन्यासकार के रूप में स्थापित करने सफल दृष्टिगत हुआ है। कई स्थानों पर टंकण एवं प्रिटिंग की गल्तियाँ भी देखने में आई हैं जैसे-ताजायज-इसे नाजायज होना था आदि (123)। उपन्यासकार राजेन्द्र राजन ने शम्पा-शरद के मध्य प्रेम एवं शारीरिक सम्बंधों का विवराणात्मक उल्लेख करते वक्त हद से बढ़कर अधिक अश्लीलता वर्णित की गई है, अगर थोड़ी मर्यादा की सीमा रेखा का ध्यान रखा जाता तो सामाजिक दृष्टिकोण से उचित होता।

(पृ. क्र -18, 19, 20, 91, 124, 125, 126)

इसी तरह इस उपन्यास में हिंग्लिश भाषा शैली का बहुतायत में प्रयोग देखने में आता है जो जबरियाँ ठूँसी हुई लगती है, यदि वहाँ के निवासियों तथा कर्मचारियों से संवाद स्थानीय बोली के देशज शब्दाबली के प्रयोग किये गये होते तो उपन्यास में भाषाई मिठास का आनंद पाठकों को मिल पाता। इस उपन्यास में घटनाक्रमों और प्रसंगों की कई जगह पुनरावृत्ति देखने में आई जो अनावश्यक लगती है- जैसे -1. 'अरे वाह! मान गये शम्पा बेटी तुम्हें तो ये सिनेमा-टी.वी. की दुनिया को छोड़कर पॉलिटिक्स ज्वाइन कर लेनी चाहिए,' चमन ने तालियाँ पीटते हुए कहा। **(पृ.-72)**

2. 'चंदू काका! तुम तो सुन्दर लाल बहुगुणा की तरह भाषण दे रहे हो। रेस्ट हाउस में चौकीदार की ड्यूटी बजाने की बजाय लीडर बनो। लोग तुम्हें सिर-आँखों पर बिठा लेंगे।' **(पृ.-87)**

3. कर्मचारियों के स्थानान्तरण और पोस्टिंग के विषय में-'पॉलिटिकल गाडफादर के जरिए झूठी दलीलें, झूठे मेडीकल सरटीफिकेट और बहाने बनाकर ट्रांस्फर रुकवा लेना) **(पृ.-39,1320189)**

राष्ट्रीय अध्यक्ष
तुलसी साहित्य अकादमी,
भोपाल-462003 (म.प्र.)
मो.-9827244327

नौकरी धूप सेंकने की

- विवेक रंजन श्रीवास्तव

धूप से शरीर में विटामिन-डी बनता है। नेशनल लाइब्रेरी ऑफ मेडिसिन की मानें, तो विटामिन डी प्राप्त करने के लिए सुबह 11 से 2 बजे के बीच धूप सबसे अधिक लाभकारी होती है। यह दिमाग को स्वस्थ बनाती है और इम्यून सिस्टम को मजबूत करती है। आयुर्वेद के अनुसार, शरीर में पाचन का कार्य जठराग्नि द्वारा किया जाता है, जिसका मुख्य स्रोत सूर्य है। दोपहर में सूर्य अपने चरम पर होता है और उस समय तुलनात्मक रूप से जठराग्नि भी सक्रिय होती है। इस समय का भोजन अच्छी तरह से पचता है। सरकारी कर्मचारी जीवन में जो कुछ करते हैं, वह सरकार के लिए ही करते हैं। इस तरह से यदि तन मन स्वस्थ रखने के लिए वे नौकरी के समय में धूप सेंकते हैं तो वह भी सरकारी काम ही हुआ और इसमें किसी को कोई एतराज नहीं होना चाहिये। सुदर्शन सोनी सरकारी अमले के आला अधिकारी रहे हैं और उन्होंने धूप सेंकने की नौकरी को बहुत पास से, सरकारी तंत्र के भीतर से समझा है। व्यंग्य उनके खून में प्रवाहमान है, वे पाँच व्यंग्य संग्रह साहित्य जगत को दे चुके हैं , व्यंग्य केंद्रित संस्था व्यंग्य भोजपाल चलाते हैं। वह सब जो उन्होंने जीवन भर अनुभव किया समय-समय पर व्यंग्य लेखों के रूप में स्वभावत: निसृत होता रहा। लेखकीय में उन्होंने स्वयं लिखा है इस संग्रह की मेरी 51 प्रतिनिधि रचनाएँ हैं जो मुझे काफी प्रिय हैं। किसी भी रचना का सर्वोत्तम समीक्षक लेखक स्वयं ही होता है, इसलिये सुदर्शन सोनी की इस लेखकीय अभिव्यक्ति को 'नौकरी धूप सेंकने की' व्यंग्य संग्रह का यू एस पी कहा जाना चाहिए। सुप्रसिद्ध व्यंग्यकार आलोक पुराणिक ने किताब की भूमिका में लिखा है 'सरकारी कर्मचारी धूप सेंक रहे हैं, दफ्तर ठप हैं, पर सरकार चल रही है, पब्लिक परेशान है। सरकार चलाने वाले चालू हैं, वे काम के वक्त धूप सेंकते हैं।'

पुस्तक : नौकरी धूप सेंकने की
लेखक : सुदर्शन सोनी, भोपाल
प्रकाशक : आईसेक्ट पब्लीकेशन, भोपाल
पृष्ठ -224, मूल्य - 250 रु.

मैंने नौकरी धूप सेंकने की को पहले ई बुक के स्वरूप में पढ़ा, फिर लगा कि इसे तो फुरसत से आड़े-टेढ़े लेटकर पढ़ने में मजा आयेगा तो किताब के रूप में लाकर पढ़ा। पढ़ता गया, रुचि बढ़ती गई और देर रात तक सारे व्यंग्य पढ़ ही डाले। लुप्त राष्ट्रीय आयटम बनाम नये राष्ट्रीय प्रतीक, व्यवस्था का मैक्रोस्कोप, भ्रष्टाचार का नख-शिख वर्णन, साधने की कला, गरीबी तेरा उपकार हम नहीं भूल पाएँगे, मेवा निवृत्ति, बाढ़ के फायदे, मीटिंग अधिकारी, नौकरी धूप सेंकने की, सरकार के मार्ग, डिजिटाईजेशन और बड़े बाबू, एक अदद नाले के अधिकार क्षेत्र का विमर्श आदि अनुभूत सारकारी तंत्र की मारक रचनायें हैं। टीकाकरण से पहले कोचिंगकरण से लेखक की व्यंग्य कल्पना की बानगी उद्धृत है-'कुछ ऐसे भी लोग होंगे जो अजन्मे बच्चे की कोचिंग की व्यवस्था कर लेंगे।' लिखते रहने के लिए पढ़ते रहना जरूरी होता है, सुदर्शन जी पढ़ाकू हैं, और मौके पर अपने पड़े का प्रयोग व्यंग्य की धार बनाने में करते हैं, आओ नरेगा-नरेगा खेलें, में वे लिखते हैं।' ये ऐसा ही प्रश्न है जैसे फ्रांस की राजकुमारी ने फ्रांसीसी क्रांति के समय कहा कि रोटी नहीं है तो ये केक क्यों नहीं खाते? 'सर्वोच्च प्राथमिकता' सरकारी फाइलों की अनिवार्य टेग लाइन होती है, उस पर वे तीक्ष्ण प्रहार करते हुये लिखते हैं कि सर्वोच्च प्राथमिकता रहना तो चाहती है, सुशासन, रोजगार, समृद्धि, विकास के साथ पर व्यवस्था पूछे तो। व्यंग्य लेखों की भाषा को अलंकारिक या क्लिष्ट बनाकर सुदर्शन आम पाठक से दूर नहीं जाना चाहते, यही उनका अभिव्यक्ति कौशल है।

अगले जनम हमें मिडिल क्लास न कीजो, अनेक पतियों को एक नेक सलाह, हर नुक्कड़ पर एक पान व एक दाँतों की दुकान, महँगाई का शुक्ल पक्ष, अखबार का भविष्यफल, आक्रोश जोन, पतियों का एक्सचेंज ऑफर, पत्नी के सात मूलभूत अधिकार, शर्म का शर्मसार होना वगैरह वे व्यंग्य हैं जो आफिस आते-जाते उनकी पैनी दृष्टि से गुजरी सामाजिक विसंगतियों को लक्ष्य कर रचे गए हैं। वे पहले अगले जनम मोहे कुत्ता कीजो व्यंग्य संग्रह लिख चुके हैं। डोडो का पॉटी संस्कार, जनरेशन गैप इन कुत्तापालन इससंग्रह में उनकी पसंद के व्यंग्य हैं। अपनी साहित्यिक जमात पर भी उनके कटाक्ष कई लेखों में मिलते हैं उदाहरण स्वरूप एक पुरस्कार समारोह की झलकियाँ, ये भी गौरवान्वित हुए, साहित्य की नगदी फसलें, श्रोता प्रोत्साहन योजना, वर्गीकरण साहित्यकारों का : एक तुच्छ प्रयास, सम्मानों की धुंध, आदि व्यंग्य अपने शीर्षक से ही अपनी कथा वस्तु का किंचित प्राकट्य कर रहे हैं।

एक वोटर के हसीन सपने में वे फ्री बीज पर गहरा कटाक्ष करते हुए लिखते हैं 'अब हमें कोई कार्य करने की जरूरत नहीं है वोट देना ही सबसे बड़ा कर्म है हमारे पास।' संग्रह की प्रत्येक रचना लक्ष्यभेदी है। किताब पैसा वसूल है। पढ़ें और आनंद लें। किताब का अंतिम व्यंग्य है मीटिंग अधिकारी और अंतिम वाक्य है कि जब सत्कार अधिकारी हो सकता है तो मीटिंग अधिकारी क्यों नहीं हो सकता? ऐसा हो तो बाकी लोग मीटिंग की चिंता से मुक्त होकर काम कर सकेंगे। काश इसे व्यंग्य नहीं अभिधा में ही समझा जाये, और वास्तव में काम हों केवल मीटिंग नहीं।

ए-233 ओल्ड मिनाल रेजीडेंसी ,
जे के रोड, भोपाल- 462023 (म.प्र.)
मो. 7000375798

साथ हैं कवितायें

– विजय अग्रवाल

कविताएँ अपने बारे में खुद बताती हैं कि मैं क्या हूँ। लेकिन यदि आप कविताओं के साथ-साथ कविताओं के रचयिता को भी जानते हों, तो उन कविताओं के बयान को ज्यादा अच्छी तरह से समझकर, उनकी अधिक गहराई में उतरकर, उनके साथ अधिक न्याय कर सकने की स्थिति में आ जाते हैं। विनीता वर्मा के काव्य संकलन 'साथ हैं कवितायें' की समीक्षा लिखते समय मैं स्वयं को इसी स्थिति में पा रहा हूँ।

नई कविताएँ मेरे पल्ले बिल्कुल भी नहीं पड़ती थीं। इसलिए वे मुझे अच्छी भी नहीं लगती थीं। लेकिन यदि बाद में समझ में आने लगीं, और अच्छी भी लगने लगीं तो उसका पूरा श्रेय विनीता और विनीता की कविताओं को जाता है। मैं ये बातें यहाँ इसलिए लिख रहा हूँ क्योंकि इन दोनों का संबंध इस संकलन की कविताओं से है। पहला तो यह कि उन्होंने सन् 1975 से ही कवितायें लिखनी शुरू कर दी थीं। उम्र के उस दौर की जो समझ और सहजता होती है, वह उनकी बाद तक की कविताओं में दिखाई देती है। इसलिए उनकी कविताओं को समझने के लिए दिमाग को शीर्षासन नहीं करना पड़ता।

दूसरी बात यह कि प्रगतिशीलता का स्वर इनकी कविताओं का प्रमुख स्वर है। यह केवल प्रमुख स्वर हीनहीं है, बल्कि लगभग हर कविता का आत्म-तत्व है; यहाँ तक कि उन कविताओं का भी, जिनसे आप इस तरह की उम्मीद नहीं करते।

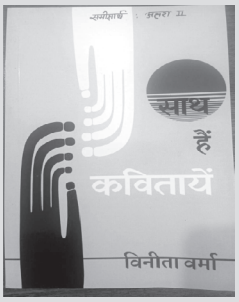

पुस्तक – साथ हैं कवितायें
लेखक – विनीता वर्मा
प्रकाशक – एम.आई.जी.-121, फस्ट फ्लोर, पीएनटी रोड, शारदा विद्या मंदिर के पास, फाउंडेशन स्कूल, कोटरा सुल्तानाबाद, भोपाल-462003 (म.प्र.)

जब आप 'इक भीना रूमाल' पढ़ना शुरू करते हैं, तब स्वाभाविक तौर पर मन में रूमानियत का एक छोटा सा टुकड़ उतर आता है। लेकिन जैसे ही आप कविता के दूसरे चरण में पहुँचते हैं, यह पढ़कर यकायक ठिठक जाते हैं कि' **आज वह रुमाल मेरे पास नहीं/किसी अनाम रणबाँकुरे के/जख्म पर बँधकर/न जाने कहाँ/कब का चिन्दी-चिन्दी हो गया।**'

विनीता ने अपना यह संकलन अपने माता-पिता की स्मृति को समर्पित किया है। 'माँ' के प्रति उनकी भावनायें अप्रत्यक्ष रूप से 'दिनचर्या' 'माओं की दुआएँ' तथा 'हर स्त्री अंतत: माँ है।', जैसी कविताओं में अत्यंत मार्मिकता के साथ उभरी हैं। यहाँ भी माँ के ममत्व पर माँ के संघर्ष की विजय दिखाई देती है। कुल 82 कविताओं में से एक कविता उन्होंने पिता पर 'नीम का पेड़' शीर्षक से रची है। यहाँ भी उनकी संवेदना के केन्द्र में पीपल और बरगद न होकर नीम है। ये शब्द गौर करने लायक हैं, कि नीम के पेड़ की तरह थे पिता/ऊँचे पूरे/खुरदरे कसैले/ पर हरे-भरे छायादार।

इसी की निरंतरता में मैं विनीता की उन मोहक कविताओं का उल्लेख करना चाहूँगा, जो संस्मरणात्मक हैं। जाहिर है कि जीवन के अनुभव के पलों की अनुपस्थिति में एक तो ऐसी कविता लिखी नहीं जा सकतीं और यदि लिखी भी गईं, तो उनमें जीवन की धड़कनों को महसूस नहीं किया जा सकता। मैं कवियत्री की इन कविताओं को उनके द्वारा शोषण, अत्याचार, अन्याय, गुलामी और भूख जैसे विषयों पर लिखी गई कविताओं से भी ऊँचे दर्जे की कविताएँ मानता हूँ। इसके दो कारण हैं। पहला यह कि इनका स्वर नया है, अपेक्षाकृत उन कविताओं के। दूसरा यह कि संवेदना और मार्मिकता की चाशनी में पगी होने के कारण ये पाठकों के गहरे उतरकर कहीं बैठ जाती हैं।

इस तरह की कविताओं के किरदार हैं– सब्जी वाला, दादी, बस ड्रायवर रामसिंह, चैतुआ, पार्वती, मिस मित्तल, माई डियर और कुरावर के स्कूल में पढ़ने वाले गाँव के गरीब और सरल बच्चे। उदाहरण के बिना यहाँ बात बनेगी नहीं। इसलिए बस ड्रायवर रामसिंह पर लिखी कविता 'रामसिंह का सफर' की इन पंक्तियों को देखना सही होगा –

घर आते-आते हमेशा लगता है रामसिंह को /
बस और पचास सवारियों का/टनों भार
पिछलें दस घंटों से /उसके हाथ के नीचे नहीं /कंधों पर है।

मैं यहाँ बताना चाहूँगा कि कवियत्री ने कई वर्षों तक अध्यापन के लिए भोपाल से कुरावर की बस से यात्रायें की हैं। इसी कुरावर प्रसंग-एक के अन्तर्गत लिखी गईं ये पंक्तियाँएक गहरे संवेदनात्मक रिश्ते के बिना सादे कागज पर अपनी जगह नहीं बना सकतीं –

मेरे गाँव के लड़के/पसीना-पसीना हो उठते हैं
स्कूल और इम्तिहान के नाम से/पर जेठ की भर दोपहर में
इत्मीनान से चलाते हैं बक्खर।

लोगों से विनीता का यह जुड़ाव केवल भावना और वैचारिक स्तर पर ही नही हैं। लोकजीवन से लिये गये शब्दों और मुहावरों ने उन संवेदनाओं में एक नई चमक और चिकनाहट पैदा कर दी है। सबसे बड़ी बात यहकि इस तरह की भाषा शैली उनकी कविताओं में स्वमेव ही उतरती चली जाती है। इससे उनकी प्रभावशीलता काफी तीव्र हो उठती है। ऐसे कुछ शब्द हैं-निराई, उछाह, पाखियों, बतियाना, चुभलाना, गरियाना, अबेरना, जोड़-तंगोड़, मजूर, भंभोड़, चिरोरी आदि।

कई कविताओं में विनीता ने जिस तरह की अद्भुत पंक्तियों को रचा है, उनकी चर्चा न करना कविताओं के साथ अन्याय करना होगा –

जहाँ/गीतों के शब्द पसीने से अँखुआते हैं(आह्वान)
खौफनाक लम्हों से जूझती जिंदगी ही तो जिंदादम है (यातना शिविर है जिंदगी)
इसे ध्यान से देखो/इसकी कुरूपता कठोरता की जाईहै (मुहावरों का सच)
आदमी को प्यार करने वाले वन आकाश की तरफ नहीं/धरती के चारों ओर बढ़ते हैं(आदमी को प्यार करने वाले वन)
जरा गौर से देखो तो दिखेगा/कुदरती मौत ही मौत है/शेष सभी हत्यायें हैं(मौत और हत्यायें)
चट्टानें/पहाड़ों के मस्तिष्क की मणि हैं। (चट्टानों के दिल)

चिड़िया और लड़कियाँ विनीता जी के सबसे प्रिय पात्र हैं, उनकी अपनी कविताओं की तरह ही। इस संकलन की शुरुआत ही चिड़िया पर लिखी गई कविता से होती है, और अंत होता है 'अंतिम दहाड़' से – **गिरता है शिलाखंड/तलहटी में/घायल शेर की/अंतिम दहाड़ की तरह।** चिड़िया की आसमान में उड़ान और तलहटी तथा चिड़िया और घायल शेर का यह विरोधी युग्म पूरे संकलन के विस्तार का परिचय प्रस्तुत कर देता है।

अंत में मैं लड़की पर लिखी गई कविता की इन पंक्तियों को लिखने से स्वयं को रोक नहीं पा रहा हूँ-**जब हर रास्ते को लौटना है / उसी के पास /**
तो क्या मतलब है कहीं जाने का (वह लड़की)

जाहिर है कि ये कवितायें पाठकों को अपने साथ कुछ वक्त बिताने के लिए आमंत्रित करती हैं। विनीता वर्मा को बहुत-बहुत बधाई।

डी – 28, आकृति गार्डन्स, नेहरू नगर,
भोपाल – 462003 (म.प्र.)

देव तुम्हारे लिए

– मुजफ्फर इक़बाल सिद्दीकी

2024 के शुरू में ही एक नया कविता संग्रह आईसेक्ट पब्लिकेशन से छप कर आया है। यह एक प्रेम कविता संग्रह ही नहीं बल्कि प्रेम शास्त्र है। जिसका शीर्षक है 'देव तुम्हारे लिए' है। अब अगर आप इसके शीर्षक पर गौर करेंगे तो आपके अंदर एक जिज्ञासा जन्म लेगी कि ये जो देव शब्द है न। इसकी सीमा केवल प्रेमी, आशिक, सरताज तक ही नहीं रुकती। ये और भी आगे जाती है। इसके प्यारा का दायरा और भी आगे बढ़ता है। ये महक प्रेमी–प्रेमिका तक ही महदूद नहीं रहता बल्कि आलौकिक प्रेम की अनुभूति देता है।

हम शीर्षक से आगे बढ़ कर इसके आवरण को गौर से देखते हैं। बहुत ही खूबसूरत है। एक चौकोर आकृति के प्रत्येक कोने पर एक गोल आकृति है जिसमें विभिन्न आयु वर्ग के लोग हैं। उनके बीचों–बीच एक जोड़ा काला और नीला चश्मा लगाए जोड़ा दिखाई दे रहा है। हमें समर्पण के अंतर्गत, फिर दो पत्थर के टुकड़ों को जोड़कर, दो मानवीय आकृतियाँ दिखाई देती हैं और उसके नीचे लिखा है –

'उसका मुझे देखकर और हँसीं हो जाना।
और इससे ज्यादा इश्क का क्या सबूत है।'

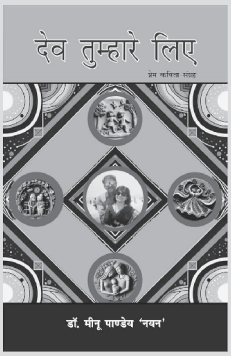

पुस्तक : देव तुम्हारे लिए
लेखक : मीनू पाण्डेय 'नयन'
प्रकाशक : आईसेक्ट पब्लिकेशन,

इन आकृतियों के ऊपर आसमान में सप्त ऋषि के भी दर्शन होते हैं हमारी जिज्ञासा अब और बढ़ जाती है। अब अगले पृष्ठ पर फिर वही आकृतियाँ हैं और लिखा है –

'मुझे नहीं पता / इश्क या इबादत में क्या फर्क है।
लेकिन इससे फर्क नहीं पड़ता / कि फर्क है भी या नहीं है
दोनों ही एक प्रार्थना है / है रूह से रूहानियत का सफर . . .

लिखती हैं कि 'मानव जीवन में नेह के पावन–पवित्र रिश्ते जब बनते हैं और जो अनुभूति हिय को होती है। बस, वही अनुभूति और उत्पन्न भावनाओं को काव्य रूप में प्रस्तुत किया गया है।' अब ये सब पढ़कर हमें भी अहसास होने लगा है कि जिस डगर पर हम चल रहे हैं, वहाँ वाकई बहुत सुंदर दृष्य तो होंगे ही, कहीं न कहीं दिल वालों की बस्ती भी होगी जहाँ प्यार भरे नगमे गूँज रहे होंगे। इस कविता संग्रह में 160 कविताएँ हैं। पहली कविता का शीर्षक है 'देव तुम्हारे लिए' यह इस संग्रह प्रतिनिधित्व भी करती है। आप लिखती हैं –

'याद तुम्हारी राम है, प्रीत है परशुराम।
तुम संग गुजरे पल का अमृत, जैसे चारों धाम।'

बहुत ही सुन्दर भावनाओं की अभिव्यक्ति है। इसी की अंतिम पंक्तियाँ कुछ इस प्रकार हैं –

'बना लिया तुम्हें देव जब, फिर काहे की फिक्र
देव से देवी न जुदा, साथ रहेगा जिक्र।'

प्रेमी–प्रेमिका, जब प्यार करते हैं तो अपनी सांस्कृतिक विरासत को नहीं भूलते। उसी में समाहित होकर देव–देवी की कल्पना करते हैं। अंतिम लम्बी कविता है– 'समयातीत' कवयित्री जानती है कि समय का पहिया तो एक दिन घूमेगा। आज मिलन है तो कल बिछोह भी है। तब वह यह कविता लिखती हैं। यह कविता नहीं बल्कि प्रेम पाती है जिसके द्वारा वह अपनी कोमल भावनाओं को अभिव्यक्त करती हैं और कहती हैं।

सुनो देव, / तुम चले आना, मुझ से मिलने
जब तुम्हारा मन करे / जब बसंत हो . . .

डॉक्टर विकास दवे जी की बात से मैं पूर्णत: सहमत हूँ कि 'प्रेम एक ऐसा उदात्त भाव है जो कि इस सृष्टि की निर्मिति के साथ ही जगती में प्रकट हुआ और संभवत: सृष्टि समाप्त हो जाएगी किन्तु प्रेम कभी समाप्त नहीं होगा।' आपने और भी बहुत कुछ लिखा है मैंने तो अपने मतलब की बात समझ ली। आगे संतोष चौबे जी लिखते हैं कि– 'प्रेम एक पहेली भी है जिसे लेखिका सुलझाना चाहती है और वे खुद नहीं समझ पातीं कि प्रेम में अपनी अनगढ़ता के बावजूद अन्तत: उन्हें प्रेम ही स्वीकार्य क्यों है?'

इस सवाल का जवाब हम ढूँढ़ने की कोशिश करते हैं। डॉ. मीनू पाण्डे अर्थ ये कि हर हाल में आना जरूर। लेखिका ने ये बात बड़ी सादगी से कह दी। वैसे आज के जमाने में यही बात बड़ी शिद्दत के साथ कुछ इस तरह भी कही जाती है जिसे आपने और हमने भी सुना है। दिल को तेरी मौजूदगी का अहसास, यूँ चाहिए तू चाहिए, बस तू चाहिए। कविताएँ पढ़कर ऐसा लगता है कि इनके प्रेम में बड़ी शालीनता है। बड़ा ही धैर्य है। इसकी वजह ये भी हो सकती है कि आखिरकार धैर्य ही तो त्याग, तपस्या और समर्पण की पहली सीढ़ी है। प्रेम, अलौकिक प्रेम है। यहीं से आध्यात्मिक हो जाता है। खोने और पाने के मायने बदल जाते हैं।

डॉ. मीनू जी भी यही तो लिखती हैं –

'उल्फत–उल्फत आन बसी है, अब मन के हर कौन में
मिलान बिछोह से फर्क कहाँ, अब पड़ता दिल के कोने में . . .

यहाँ कुछ और ही दृष्टिकोण है। इस काव्य संग्रह की अधिकांश कविताओं में नेह शब्द को अलग–अलग तरीके से परिभाषित किया है। अलग–अलग कविताओं की कुछ पंक्तियाँ –

दिखता नहीं कोई और रह गुजर है।
देव तुम्हारे नेह का ऐसा असर है। (नेह का ये असर, पृ.–30)

तुम कभी विचलित न होना, एक पल भी नेह में
प्रेम का हर रूप अंगीकार करना है अभी।
(मैं तुम्हें धारण करूँगी पृ.–37)

देव सा ये रूप तेरा, देव सा कोमल हृदय है।
देवता हो नेह के तुम, ये मेरी ही अर्चना है।
(मेरी अद्भुत व्यंजना, पृ.–52)

दिव्यतम–सा ये रूप तेरा, नयन का श्रृंगार है अब
इस निलय ने जो किया है, नेह का उपहार है सब।
(क्यों, सुनो न प्राण मेरे, पृ.–61)

राधिका का नेह जो, कान्हा के मन का ख्वाब है।
रुक्मणि के संग जीवन, आनंद की किताब है।
(काम लगीं अपनी व्यथाएँ पृ.–77)

तुमने मुझसे नेह लगा कर क्या–क्या अनुपम कर डाला
मेरे मन मंदिर में आकर चख डाला अमि का प्याला।
(तुमने मुझसे नेह लगा कर पृ.–80)

है तुम्हारे नेह का अनुपम रसायन
मदिरता और मधुरता का अनोखा संगम।
(है तुम्हारे नेह का अनुपम रसायन, पृ.–94)

इस संग्रह में यह नेह के धागे कच्चे धागे ही नहीं हैं। बल्कि ये बहुत मजबूत बंधन है और इस बंधन का तुलनात्मक विवेचन करने से पता चलता है कि यह या तो सीधे तौर पर देवी–देवताओं से जाकर मिलता है या फिर देव तुल्य आत्माओं से –

◆ तुम ही मेरे नारायण मैं लक्ष्मी का रूप
अपना कर तुमने दिया ओजस्वी सा स्वरूप।

◆ राह निहारे राधिका तनिक सुनो तो श्याम
याद हमको किया करो चाहे सौ हों काम

◆ तुमको अपने जीवन की पावन गंगोत्री बनाऊँ
ओजस रूपी गंग हो तुम, तुम्हें जीवन में लाऊँ।

◆ मैं ने स्वयं को राधा माना, राधा बनकर दिखलाऊँगी।
प्रगति पथ पर रोड़ा बनकर, देव लाभ न आऊँगी।

◆ कान्हा तेरा प्रेम है मेरे मन का श्रृंगार
कभी तो दो पल साथ रहो त्याग कर संसार।

लेखिका के अंदर एक बहुत हँसीं–ओ–जमील शायरा भी रहती है जो बहुत रूमानी है। ये ग़ज़लों से बात करती है। इनके शिकवे भी हैं शिकायतें भी–

◆ देव जब बेजुबान होते हैं। / जिन्दगी इम्तिहान होती है।
देवी चाहती है मन की बात कहे / वो मगर जांगिस्तान होते हैं।

◆ किस जमाने की बात करते हो / किस फसाने की बात करते हो।
तुमसे काँटों की चुभन तक सही नहीं जाती / इश्क में जाँ लुटाने की बात करते हो।

◆ बड़ी मुद्दतों से यही जुस्तजू थी / हो एक चाँद मेरा, यही आरजू थी।

◆ देखो कितनी नई बयानी लिख रहा है / जिन्दगी की नई वो कहानी लिख रहा है।

◆ तुम हो आज हासिल ये खुश किस्मत है मेरी / तुम्हारे अंदाज ऐ बयाँ की रह–रह के याद आती है।

◆ चलो अब जिन्दगी और भी है / तेरी मेरी कहानी और भी है।
तुझी से सुबह शाम भी तुझी से / मेरे इश्क की रवानी और भी है।

◆ फलसफे इश्क के हम कैसे कहें / दूर तुमसे हम इस तरह कैसे रहें
तुम को शायद यकीं नहीं मुझ पर / पर नामुमकिन कि अजनबी बन के रहें।

डॉ. मीनू पाण्डे अंग्रेजी की प्रोफेसर हैं। इस बात का सबूत भी इस काव्य संग्रह में देखने को मिलता है और लेखिका ने बाकायदा डिलीट शीर्षक के नाम से कविता भी लिखी है। इसके आलावा माइक्रो सेकंड, इग्नोर, रेवेर्सल प्रोसेसेज, डिच, मोबाइल की दुकान बन जाऊँ में तो सारी टर्मिनलॉजी इस्तेमाल की है। ई–मेल, लिंक्ड इन, लाइव रील सब कुछ।

कविताओं गीत और ग़ज़लों में मौसमों का, प्रकृति का और दिलकश नजारों की भी खूब उपमाएँ दी हैं। इनकी व्यंजन बहुत सुन्दर है। इन कविताओं में काव्य रास है। आनंद की अनुभूति है, रमणीयता है तो संवेदना के तत्व भी पाए जाते हैं। लेखिका की कुछ कविताएँ साहित्य के कैनवास पर चित्रात्मक दृश्य प्रस्तुत करती हैं। जिससे कविता को पढ़ना और समझना सरल हो जाता है। मेरी और से हार्दिक बधाई शुभकामनाएँ। मेरी दुआ है कि कवयित्री कलम बस यूँ ही चलती रहे।

178, नवीन नगर, ऐशबाग,
हिंद कान्वेंट स्कूल के पास,
भोपाल–462010 (म.प्र.)
मो. –9977589093

मलय

जन्म - 19 नवंबर 1929
प्रयाण - 09 जनवरी 2024

धड़कन की धुन में

हम में न दिखने वाला
बाहर भीतर से जुड़कर
चुप्पा गरजने वाला
एक बड़ा समुद्र है
जहाँ सुख को घेरकर
डुबो दिया जाता है
दु:ख के हज़ारों जहाज़
तैरते हुए भी
छाती पर लंगर ठोककर
खड़े रहते हैं
अपनी धमधमाती धाक को
फहराते हुए

शायद यह किनारा है
जहाँ साथ-साथ में हम जी-तोड़ ठहाकों से
बड़ी-बड़ी चौड़ी लहरों से
उछल पड़ते हैं
उनसे, हाथों की मुट्ठियों में पकड़कर
खींच लाने को एक-एक साँस

फिर यह गई-गुज़री-ज़िंदगी ही रही
जो एक-एक साँस बढ़ती चली है,
लेकिन अक्सर अपने से ही
अपनी साँसों के बीच से ही
पैदा होता है
कोई बेपरवाह
उन्नत सिर वाला
जो दो टूक प्रवेश करते ही
उजेला हो जाता है
मौत को बार-बार धमकाता है

उठता ही चला जाता है
दूर-दूर तक इतना
कि आँखें पीछा नहीं कर पातीं केवल,
उसको धड़कन की धुन में उतारा जा सकता है
और दु:ख के पहाड़-से
जहाज़ों को भी
धकियाकर जिया जा सकता है
और धक्कों से घायल-घायल
रहने के बावजूद
आने वाले कल को पुकारकर और कहकर
कुछ किया जा सकता है

पानी है बहुत आत्मीय

पानी
अपनी तरलता में गहरा है
अपनी सिधाई में जाता है
झुकता मुड़ता
नीचे की ओर
जाकर नीचे रह लेता है
अंधे कुओं तक में

पर पानी
अपने ठंडे क्रोध में
सनाका हो जाता है
ठंडे आसमान पर चढ़ जाता है
तो हिमालय के सिर पर बैठकर
सूरज के लिए भी
चुनौती हो जाता है
पर पानी

पानी है
बहुत आत्मीय
बहुत करोड़ों करोड़ों प्यासों का अपना
रगों में ख़ून का साथी हो बहता है।
पृथ्वी-व्यापी जड़ों से होकर
बादल की खोपड़ी तक में
वही होता है-
और अपने
सहज स्वभाव के रंगों से
हमको नहलाता है
सूरज को भी
तो आईना दिखाता है
तब तक़रीबन पानी
समय की घंटियाँ बजाता है
और शब्दों की
सकेलती दहार में कूदकर
नदी हो जाने की
हाँक लगाता है
पानी बहा जा रहा है
पिया जा रहा है
जिया जा रहा है
ख़ुद जी पाने की लड़ाई में तत्पर है पानी
चट्टानी अँधेरी पकड़ से
लड़ते हुए उगकर
समूची पृथ्वी पर
अपनी तरह तौर से
लहरने में तत्पर है पानी
पानी कभी ख़त्म कर देने के लिए
ज़मीन में सोखा जा रहा है
तो भाप में उड़ा जा रहा है
उठते सिरों को लतियाता हुआ

अब पानी खौलती गंजी से भी
आँखों के ढक्कन
या पलकों से चू नहीं रहा है
अब आग का आईना देख रहा है
भले ही भूख-प्यास से सूख भी रहा है

हवा दूर है
आती हुई दूर है
हिमालय की तरह
उठी आ रही दिमागों में
आने वाले समय की सूचना में
हमारी रगें
बिजली की तरह कौंधती हैं
अभी हवा बाहर चलती है
बहुत जलती है
पर भीतर ख़ून में रमा हुआ पानी
आकाशी झकोरों से हाथियों पर
दौड़कर आने की तैयारी में लगा है
जगा है शायद अब पानी।

बैंक ऑफ़ बड़ौदा
Bank of Baroda

त्योहारी सीजन में पाएं ज्यादा कमाई की सौगात

bob उत्सव जमा योजना के साथ

7.95%* प्रतिवर्ष तक

400 दिन के लिए

अति वरिष्ठ नागरिकों के लिए 0.60% तथा अवधि-पूर्व अदेय जमाओं के लिए 0.05% सहित

*नियम व शर्तें लागू.

अपने मोबाइल नंबर पर अपना सीकेवाईसी नंबर / सीकेवाईसी कार्ड प्राप्त करने के लिए, सेंट्रल रजिस्ट्री का टोल फ्री नंबर: 7799022129 डायल करें।

टोल फ्री नंबर पर कॉल करें (24x7): 1800 5700 / 1800 5000 | www.bankofbaroda.in | हमें फॉलो करें

प्रेषक, प्रकाशक, मुद्रक कैलाशचन्द्र पंत, भोपाल द्वारा, स्वत्वाधिकारी मध्य प्रदेश राष्ट्र भाषा प्रचार समिति, हिन्दी भवन, श्यामला हिल्स, भोपाल से प्रकाशित एवं श्रेया ऑफसेट, 4 लाजपत भवन, जोन-1, एम.पी.नगर, भोपाल से मुद्रित।